कंकर

हसराज रहबर

दिनमान प्रकाशन

दिल्ली—6

© लेखक
प्रकाशक : दिनमान प्रकाशन
3014, चर्खेवालान, दिल्ली-6
मूल्य : 75.00
वि० प्र० प्रथम संस्करण : 1990
मुद्रक : जितेन्द्र प्रिंटर्स, बाबरपुर रोड
शाहदरा, दिल्ली—32

1

उत्तराधिकारी

वर्षा होने के पश्चात आसमान निखर गया था। लाहौर के एक उप-नगर मे एक बडी इमारत के दो मकानों पर दो झडे सूर्य की किरणो से सर-गोशियां कर रहे थे। इन झडो मे एक तिरगा और दूसरा लाल था। तिरगे पर चर्खा और लाल पर हथौडे और दराती का निशान बना हुआ था। इन दोनो मकानो के बीच खुला आगन था, जिसमे बड शहतूत, शीशम और कई सट्टो के पेड उगे थे। उनकी टहनियां और पत्ते मेह मे घुलने के बाद बहुत ही मनोहर और आकर्षक दिखाई देते थे। इन पेडो के बीच एक नौजवान गीली धरती पर उकडू बैठा था। उसने रेत की अगुली-दो-अगुली ऊची दीवारें खडी करके अपने गिर्द एक अहाता सा बना लिया था। इस अहाते मे सामने की ओर दो द्वार खुलते थे—एक छोटा और दूसरा बडा। बडे द्वार पर उसने एक मेहराब लगाई थी और अब उस पर बेल-बूटे बना कर मुस्करा रहा था, शायद उसे अपनी कला पर गर्व था, शायद कोई अनूठा विचार उसे गुदगुदा रहा था। छोटे द्वार पर न बेल बूटे थे और न किसी प्रकार की सजावट की गई थी। उसे यो ही छोड दिया था। इस बीच म दो और नौजवान साईकिलो पर आये और उसके निकट पहुचकर रुके। वह नौजवान उन्हे देखकर उठा और फौजी ढग से सैल्यूट मारकर मुस्करा दिया।

"कामरेड गनी! यह क्या बना रहे हो?" एक नौजवान ने पृथ्वी की ओर सकेत करते हुए पूछा।

"यह जेल है और यह दो उसके दरवाजे। बड़ा अमीरों के लिए और छोटा गरीबों के लिए।" गनी ने उत्तर दिया और वह बराबर मुस्कराता रहा। सच तो यह है कि मुस्कराहट उसके होंठों से कभी अलग न होती थी।

"अशोक जी! कामरेड गनी हर वक्त जेल ही के स्वप्न देखता है। जैसे वह जेल ही में पैदा हुआ हो और जेल ही में जान देगा। उसे और कुछ सूझता ही नहीं।" उस नौजवान ने अपने साथ आये दूसरे नौजवान से कहा।

"नहीं, और भी सूझता है।" अशोक ने दोनों साथियों पर हर्ष-युक्त निगाह डाली और धरती पर बने नक्शे की ओर संकेत किया, "देखिये, उसने जाने-अनजाने समाज को यहां भी वर्गों में विभाजित किया है। जिससे पता चलता है कि उसने हमारी लड़ाई के बुनियादी उसूल को भली-भांति समझ लिया है।" अशोक ने गनी के कंधे पर हाथ रखा और उसे हौले से हिलाकर वाक्य पूरा किया।

अशोक के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर गनी का चेहरा उल्लास से खिल उठा। होंठों पर जो मुस्कराहट सतत खेलती रहती थी, कानों तक फैल गई।

"आगे क्या बनाया है? यह भी बताओ।" अशोक ने फिर नक्शे की ओर संकेत किया।

"यह लीडर है और यह जेल का दारोगा.......लीडर.......जेल में दाखिल हो रहा है और दारोगा.........उसे झुककर सलाम कर रहा है।"

दोनों व्यक्ति खिलखिलाकर हंस पड़े और गनी ने भी हंसी में उनका साथ दिया।

इतने में चार-पांच आदमी और आ गये और तीन-चार पास के कमरों से निकल आये। अशोक ने सबको जेल का नक्शा दिखाकर गनी की बात दोहराई तो एक जोरदार कहकहा बुलंद हुआ। हवा थरथरा उठी और वृक्षों की टहनियां हिलने लगीं, जैसे वे भी अपनी मूक भाषा में इस अनूठी

मूंछ की दाद दे रही हों।

"और हमारा क्या हाल होता है जेलों में, कामरेड गनी ?"

"हमारा !" गनी ने गर्दन हिलाई और गिनकर बताना शुरू किया "हमसे चक्की पिसवाते हैं।" उसने अंगुली पर गिना जैसे कह रहा हो एक बात—"मूंज कुटवाते हैं—कोल्हू में जोतते हैं—और······" यों तो वह प्रत्येक वाक्य अटक-अटककर कह रहा था; लेकिन यहां पहुंचकर बिल्कुल रुक गया। वह सोच नहीं सका कि आगे चौथी बात कौन-सी है। आखिर उसने दोनों हाथ फैला दिये और कहा—"देखो यह छाले पड़े हुए हैं!"

उसके हाथों पर छाले नहीं थे; मगर छालों के निशान जरूर थे। अंगुलियों के नीचे गट्टे पड़े हुए थे जैसे हाली बैलों के कंधे पर पड़ जाते हैं।

गनी कुछ ही दिन पहले जेल से छूटकर आया था। फैले हुए हाथों की मूक भाषा शब्दों की भाषा से कहीं अधिक सबल और प्रभावशाली थी। छालों के निशान स्पष्ट बता रहे थे कि उसे जेल में कड़ी मशक्कत करनी पड़ी है। सब लोग इन निशानों को ध्यान से देख रहे थे और उनकी मुख-मुद्रा गम्भीर और कठोर होती जा रही थी। गनी के भीतर का दर्द इन निशानों के रास्ते उबल-उबलकर बाहर आ रहा था। उसकी आंखों में प्रतिकार और प्रतिहिंसा की भावना उभर आयी थी; मगर होंठों पर अब भी मुस्कराहट नाच रही थी।

यह मुस्कराहट प्रसन्नता की नहीं वीरता की सूचक थी।

कुछ क्षण मौन रहा। यह वह मौन था, जो उस समय देखने में आता है, जब देश-भक्त नौजवान स्वतन्त्रता की पुनीत प्रतिज्ञा को मन-ही-मन दोहराते हैं। पत्तों पर से वर्षा के बिंदु टपटप गिरने के अतिरिक्त किसी की सांस भी तेज नहीं चल रही थी।

"चलो अब ऊपर चलें। समय हो गया है।" अशोक ने कहा और सब उसके पीछे-पीछे उस मकान की ओर बढ़े, जिस पर लाल झंडा फहरा रहा था।

पार्टी की जनरल बाडी की मीटिंग थी। ऐसी मीटिंग महीने में एक बार बुलाई जाती थी, जिसमें महीने भर के काम की जांच की जाती थी

और आगे का प्रोग्राम निर्धारित किया जाता था। पार्टी के कामों और उसके संगठन पर बहस होती थी। कई बार जटिल समस्या और आकस्मिक घटनाओं पर विशेष ध्यान देना पड़ता था और बैठक लंबी खिच जाती थी।

इस मकान की दूसरी मंजिल पर तीन कमरे थे। तीनों की लम्बाई-चौड़ाई लगभग बराबर थी और आगे बरामदा था। यही पार्टी का दफ्तर था, यही मीटिंगें होती थी और यही अशोक, गनी, नारायण और कुछ दूसरे साथी स्थायी रूप से रहते भी थे।

सब लोग दाईं ओर के कमरे में जमा हो रहे थे। फर्श पर एक चटाई बिछी थी, जो काफी पुरानी थी। झाड़ने में टूट जाने का डर था, इसलिये उस पर गर्द ने कब्जा जमा लिया था। कमरा काफी खुला था, साठ-सत्तर व्यक्ति सहज में बैठ सकते थे। पीछे की ओर दो खिड़कियां थी, जिनमें से पिछवाड़े के मकान दिखाई पड़ते थे। उनकी बाहरी टीप-टाप देखकर ही इस कमरे की विपन्नता आंखों में खटकने लगती थी। सब लोग इस वातावरण से पूर्व-परिचित थे। वे इत्मीनान से चटाई पर बैठ गये और उन चित्रों की ओर देखने लगे जो कमरे की दीवारों पर लगे हुए थे। यह चित्र उन नौजवानों के थे, जो स्वाधीनता-संग्राम में मारे गये, फांसी चढ़े, पुलिस अथवा फौज की गोलियों का निशाना बने थे। उन्हें देखकर दिल जोश और फख्र से भर जाते थे। वे देख रहे थे और उनकी आंखों में दृढ़ निश्चय भरा हुआ था जैसे शहीदों को विश्वास दिला रहे हों कि तुमने जो कहानी अपने रक्त से लिखना आरम्भ की है, हम उसे पूरी करेंगे; हम तुम्हारे उत्तराधिकारी हैं, एक ही मार्ग के पथिक हैं; चल रहे हैं; चलते रहेंगे और मंजिल को जा लेंगे।

चालीस से ऊपर आदमी जमा हुए। सब नौजवान थे, कुछ स्वस्थ और सुडौल थे; बलिष्ठ दिखाई देते थे, लेकिन अधिकांश पतले-दुबले थे, चेहरे सूखे हुए थे जैसे तपेदिक अथवा दमे के मरीज हों, जैसे विषम परिस्थितियों ने शरीर का तमाम रक्त निचोड़ लिया हो। फिर भी वे इन परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्षरत थे, जीवन की चाह में सक्रिय थे। उनकी आंखों में

निश्चय और अनुभूति की चमक थी, हृदय मे ओहदे की गर्मी, सतत मजिल की ओर चल रहे थे, कठिनाइयो और कष्टो के बावजूद आगे बढ रहे थे ।

अशोक ने घडी देखकर एक कागज उठाया और उस पर अपना नाम लिखकर पास के साथी की ओर सरका दिया, उसने भी अपना नाम लिखा और कागज दूसरे को दे दिया, इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपना नाम लिखता और कागज आगे सरकाता रहा। घूमकर कागज जब दोबारा अशोक के पास आया, तो उस पर अशोक, तुफैल, राजेन्द्र, इखलाक, मदन, नारायण और गोपाल के अलावा शीला और पद्मा आदि के नाम लिखे हुए थे । लिखने का ढग और लिपि विभिन्न थी, पर वे सब नाम एक अटूट और अदृश्य सूत्र मे गुथे हुए दीख पडते थे ।

इस बैठक की सबसे जटिल समस्या यह थी कि ओकाडा के कपडे और रुई के कारखानो मे जो मजदूर काम करते हैं, उन्हे सगठित करना बहुत कठिन है क्योकि वहा मिल-मालिको ने अपने वेतन से एक आदमी रखा हुआ है, जो मजदूरो और उनके बच्चो को पढाता है, उनमे धर्म और आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार करता है । वह मिल मालिको से कह-सुनकर मजदूरो की छोटी छोटी मागें भी पूरी करवा देता है। अगर कोई मजदूर विशेष रूप से चतुर और उद्दण्ड हो, किसी प्रकार काबू मे न आता हो, तो उसे दूसरो से अधिक रियायतें दिलवा देता है। इस प्रकार मजदूर मालिको के और उस व्यक्ति के भक्त बने हुए है और वे किसी यूनियन मे सगठित होने को तैयार नही हैं ।

अब इस समस्या पर बहस शुरू हुई। मदन जोश मे भरा हुआ उठा, सास भीतर खीचकर फेफडो मे हवा भरी और इधर-उधर दृष्टि डालकर भाषण शुरू किया—"साथियो ! जिस व्यक्ति ने मार्क्स का 'डास कैपिटल' पढ़ा है उस पर यह बात चमकते हुए दिन की भाति विदित है कि पूजी-पतियो और मजदूरो के हितो मे जमीन और आसमान का अन्तर है। धन-पिशाचो की यह कुटिल नीति है कि वे छल, कपट और बेईमानियो से निर्धन जनता को क्रान्तिकारी सगठन से रोकते हैं "

श्रोताओं ने अरुचि व्यक्त की, लेकिन इससे पहले कि कोई दूसरा बोलता, अशोक ने स्वयं उसे टोका—"कामरेड मदन ! भाषण करने के बजाय बेहतर है कि आप अपना सुझाव रखें।"

मदन तनिक घबराया; लेकिन तत्काल संभलकर बोला—"जी हां, मैं सुझाव ही तो रख रहा हूं। कहने का तात्पर्य यह है कि हम भोले और गुमराह मजदूरों को बतायें कि वे धन-पिशाचों और मिल-मालिकों के हथकंडों और दगाबाजियों को समझने के लिए बुद्धि से काम लें।"

मदन बैठ गया और उसने इधर-उधर निगाह डाली। वह देखना चाहता था कि सुनने वालों पर उसके सुझाव का क्या प्रभाव पड़ा है।

"इस सुझाव में मेरा यह विनीत संशोधन है कि अगर बेचारे मजदूरों के पास बुद्धि न हो, तो हम खरीद कर भेज दें।" नारायण ने अपने स्थान पर बैठे-बैठे कहा, और लोग मुस्कराये।

तीन आदमी अपना-अपना सुझाव पेश करने के लिए एक साथ उठ खड़े हुए। उनमें जो सबसे पहले उठा था, उसकी ओर संकेत करते हुए अशोक ने कहा—"कामरेड गोपाल बोलें।"

गोपाल का चेहरा गोल और शरीर स्थूल था। उसने चूड़ीदार पायजामे के ऊपर काली अचकन पहन रखी थी, जो उसके गोरे रंग पर खूब खिलती थी और गांधी टोपी उसके हाथ में थी। जब वह बोलने के लिए खड़ा होता, तो टोपी जरूर उतार लेता और घड़ीवाली कलाई आप ही आप सामने आ जाती। एक क्षण इधर-उधर देखकर बोला—

"मैं एक उचित सुझाव हाऊस के सम्मुख रखता हूं।" श्रोताओं में सरसराहट हुई जैसे वे इस उचित सुझाव को सुनने के लिए उत्सुक हों। गोपाल ने टोपी हिलाई और घड़ी पर निगाह डाली—"मेरा सुझाव है कि मजदूरों में लगातार जलसे किये जायें जिनमें ट्रेड यूनियन आन्दोलन का इतिहास उन्हें समझाया जाय और पैम्फलेट छापकर बांटे जायें ताकि उन्हें मालूम हो कि इंग्लैंड, फ्रांस और अमरीका आदि उन्नत देशों की मजदूर सभाएं किस प्रकार काम करती हैं।"

गोपाल ने इतना कहा और बैठ गया। किसी को मालूम भी नहीं

हुआ कि उसने अपनी बात खत्म कर दी है या अभी कुछ और कहना है। इसलिए सब चुप रहे और कोई दूसरा नही उठा। इससे गोपाल ने समझा कि उसका सुझाव सबको पसन्द आया है। वह फिर बोला—"मेरे पास अग्रेजी अखबारो के ऐसे कटिंग मौजूद हैं, जिनमे इन देशा की मजदूर सभाओ की कार्य पद्धति दर्ज है। पैम्पलेट छापने के लिए मैं वे कटिंग दे सकता हू।'

कुछ लोग और बोले। इनम से दो-तीन ऐसे भी थे जो मजदूर आन्दोलन मे काम करते थे, इसलिए उन्होंने निजी अनुभव की बातें कही और वाकई सुझाव रखे। जैसे तुफैल ने कहा— मैं समझता हू कि काम करन का तरीका यह है कि मजदूरो म जाकर रहा जाय और उनसे जाती ताल्लुक पैदा किया जाये।"

जगदीश एक ओर चुप बैठा था मुख मुद्रा गम्भीर और आखें बड़ी बडी। उसकी अर्थपूण चुप्पी सबको प्रभावित कर रही थी। अशोक ने उसकी ओर सकेत किया—'आपकी क्या राय है ?

'मेरा खयाल है तुफैल का सुझाव सही है। यहा से दो तीन साथियो को भेजा जाय जो स्थायी रूप से वहा रहें, समझदार और बारसूख मजदूरो से ताल्लुक बनायें। उनके जरिये दूसरो से मिलें। जब काफी मजदूरो से जान पहचान हो जाय तो यूनियन कायम कर दें।"

इसी आधार पर फैसला हुआ कि राजेन्द्र और इखलाक को कल ही उकाडा भेज दिया जाये। वे वहा जाकर रहें और यूनियन बनाने के उपाय सोचें।

इसके उपरात एजडा के अनुसार कुछ स्टडी सर्किलो और एक कान्फ्रेंस के बारे मे विचार होना था। और आखिरी मद यह थी कि कामरेड गनी नवी बार जेल काटकर आया है, उसे अपने इस त्याग और देश सेवा के लिए पार्टी की ओर म सम्मानित किया जाये।

एजडा पूरा हो जाने के बाद भी बातचीत होती रही जो लेखराम से जेल मे भेंट और बलवन्त की अपील के बारे मे थी।

: 2

वालंटीयर

कुछ व्यक्ति शरीर और मस्तिष्क से स्वस्थ होते हैं। अगर उन्हें अनुकूल परिस्थितियों में रखा जाय तो वे समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। मगर उन्हें समाज में ऐसे निचले स्तर पर रखा जाता है, जहां लोग उनके साथ कीड़े-मकोड़ों का-सा व्यवहार करते हैं, उन्हें पागल समझते हैं और उन पर फब्तियां कसते हैं। जिस प्रकार पत्थर के नीचे दबा हुआ दाना उभरने की इच्छा करता है, जिस प्रकार अथाह खोह में पड़ा हुआ जल-बिंदु नदी की तरंगों में मचलने की कामना करता है; जिस प्रकार तुच्छ से तुच्छ अणु यह चाहता है कि वह आंधी के साथ मिलकर तूफान बन जाय, इसी प्रकार इन व्यक्तियों के मन में यह अरमान निहित रहता है कि अपने इर्द-गिर्द चल रहे संघर्ष में आगे बढ़कर भाग लें और जीवन को सार्थक बनायें। मगर उन्हें जीवन को सार्थक बनाने का अवसर ही नहीं मिलता। दुनिया उनकी अवज्ञा, अवहेलना और उपेक्षा करती हुई अपने मार्ग पर चलती रहती है और वे दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए कुछ ऐसी वेशभूषा बना लेते हैं; कुछ ऐसी चेष्टायें करते हैं, जो अनूठी और विचित्र होती हैं; लेकिन इस विद्रूप से उनकी विद्रोह-भावना संतुष्ट नहीं होती।

नौ-दस साल पहले लाहौर के बाजारों और गलियों में एक ऐसा ही पागल व्यक्ति घूमता दिखाई देता था। उसकी उम्र चौबीसेक साल होगी, कद दर्मियाना, शरीर गठा हुआ और रंग गोरा था; कपड़े मैले, ढीले-ढाले

और कुछ फटे हुए थे। वह निरुद्देश्य घूमता रहता। एक बिगुल हर वक्त पास रखता, जब जी मे आती उसे जोर-जोर से बजाने लगता। लेकिन ध्यान से देखने पर पता चलता कि बिगुल बजाना अकारण और निरुद्देश्य नही है, इसके पीछे एक निश्चित भावना है। जब कोई मोटर फर-फर करती हुई समीप से गुजरती है, तब वह बिगुल बजाता है, चन्द कदम पीछे दौडता है। जब किसी धनी व्यक्ति अथवा अग्रेज या मेम को देखता है, तो बिगुल बजाने लगता है, जैसे उनका उपहास कर रहा हो, उनकी खिल्ली उडा रहा हो और उसे उनकी शक्ल तक देखना गवारा न हो।

लोग उसकी ये विचित्र चेष्टायें देखते और कहते—"पागल है। किसी सदमे ने दिमाग खराब कर दिया है।" लेकिन जो लोग राजनीति मे दिलचस्पी लेते थे, वे अपने सन्देह और शकायें यो व्यक्त करते—' भेदिया है। खुफिया पुलिस का आदमी है। जान बूझकर यह भेस बना रखा है "

दूसरी बात सत्य से उतनी ही दूर थी जितनी पहली निकट। बहुत से लोग जानते थे कि पाच-छ महीने पहले वह अपने भाई के साथ मजदूरी किया करता था। वह और उसका भाई स्टेशन और मोटरो के थड्डे से मुसाफिरो का सामान उठाकर उनके ठिकानो पर छोड आते थे। इस प्रकार दिन भर की मेहनत मशक्कत से जो कुछ पा जाते उससे अपना पेट पालते थे। एक दिन सख्त धूप पड रही थी और दोनो भाई भारी बोझ सिर पर उठाये जा रहे थे। बडा भाई आगे-आगे चल रहा था, सामने से मोटर ने हार्न दिया, वह उसकी जद मे आते-आते बचा, लेकिन यो ही एक ओर को मुडा तो केले के छिलके पर से पाव फिसल गया। कुछ दिन पहले उसे ज्वर आता था, इसलिए शरीर दुर्बल था। यह घटना मौत का बहाना बन गई।

भाई की मृत्यु के पश्चात वह इस विशाल ससार मे अकेला—बिल्कुल अकेला रह गया। उदास और गमगीन इधर उधर घूमता रहता, जब फिरते-फिरते थक जाता, तो कम्पनी बाग मे, जहा ढेरो भिखमगे पडे रहते है, जा बैठता, घटो वहा बैठा रहता और इन भिखमगो को देखता रहता। उसे यह वातावरण पसन्द था, इसलिए वहा बैठना अच्छा लगता था। राह

चलते लोग उसे भी भिखारी समझते और पैसा-धेला उसके आगे फेंक जाते। लेकिन वह उसे मिट्टी-कंकर समझकर यों ही पड़ा रहने देता, कोई पास बैठा भिखमंगा लपककर उठा लेता। रातें पहले भी दातागंज-बख्श में गुजरती थीं, अब भी वही पड़ा रहता था। अमीर आदमियों की ओर से भिखारियों मे रोटियां बटा करती थीं। वह भी बैठा-बैठा हाथ फैला देता और रोटी लेकर खा लेता। उसे यह भूल जाता कि मैं पहले ही दातागंज-बख्श से खाकर चला हूं।

एक दिन सुबह सवेरे वह आंख खुलते ही दातागंज-बख्श से चला आया और बहुत देर तक सड़कों पर घूमता रहा। जब वह भिखमंगों मे आकर बैठा तो रोटियां बंट रही थीं। उसने अभी तक कुछ नहीं खाया था, सख्त भूख लगी थी, वह बड़ी उत्सुकता से रोटी का इन्तजार करने लगा।

सब भिखमंगों को पंक्ति में बैठे रहने का हुक्म था। अगर बाग के किसी दूसरे भाग से कोई भिखमंगा आकर रोटी मांगता, उसे दुत्कार दिया जाता, और पंक्ति में बैठ जाने को कहा जाता। अगर वह कहीं बीच में घुसने की कोशिश करता, तो आपस में लड़ाई शुरू हो जाती क्योंकि कोई भी भिखारी यह नहीं चाहता था कि उसका नम्बर पीछे पड़ जाय। शायद उस तक पहुंचते-पहुंचते रोटियां खत्म हो जायें और उसे खाली पेट रहना पड़े। हर एक भिखारी को एक-एक रोटी दी जाती थी। अगर कोई असंतोष प्रकट करता और गिड़गिड़ाकर कहता—'माई-बाप! भूख लगी है। एक रोटी और मिल जाय" तो रोटियां बांटने वाले की आंखों मे दया के बजाय घृणा उमड़ आती और वह झपटकर कहता --"पेट भर खाना है तो काम किया कर। मांगकर पेट नहीं भरता।" वह बेचारा चुप हो जाता। पेट भर जायेगा तो भगवान का नाम कौन लेगा? अमीरों के लिए दुआएं कौन मांगेगा? फिर उसे क्या मालूम कि रोटियां बांटने का उद्देश्य भूख मिटाना नहीं, एक धनी व्यक्ति के लिए स्वर्ग की सीढ़ियां तैयार करना है।

बांटते समय अगर कोई रोटी धरती पर गिर जाती तो सब भूखे उस

पर लपकते, छीना झपटी शुरू हो जाती। रोटी धूल में सन जाती, जिनके जिसके हाथ लगती, ले भागता और मैले कपड़ों से पूछ-पूछ कर खाता। कितनी बड़ी थी इन्सान की भूख! कुत्ते और कौवे [illegible] मंडराया करते, उसकी ओर देखते रह जाते।

वह पंक्ति के एक सिरे पर बैठा सब कुछ देख रहा था। समय, जो सबसे बड़ा दारू है, उसके दुख को धीरे-धीरे कम कर रहा था, शिथिल चेतना हरकत में आ रही थी। गर्म लोहा लगने से जैसे अर्ध-चेतन मनुष्य भी एकदम चौंक उठता है, भूख का यह वीभत्स दृश्य देखकर उसकी चेतना एकदम जाग उठी। वह झुंझलाने और बड़बड़ाने लगा। उसके भीतर व्यग्रता बढ़ रही थी और शरीर तिलमिला रहा था, जैसे उसे समूचे वातावरण से घृणा हो और वह यहां से भाग जाना चाहता हो। पर वह भागा नहीं, अपनी जगह पर बैठा रहा और देखता रहा। शायद उसे भूख अधिक लगी थी, शायद बैठे रहने की आदत पड़ गई थी।

मगर जब उसकी बारी आई तो उसने मर-भूखों की तरह हाथ नहीं फैलाया, अपने विचारों में मगन बैठा रहा।

"हे!" रोटी बांटनेवाला तीखे स्वर में चिल्लाया। विचार-मुद्रा टूटी, हाथ आप ही आप फैल गये और आंखें ऊपर उठीं—"ध्यान भी नहीं रखता। नवाब बना बैठा है, हरामजादा।"

उसके तन-बदन में आग लग गई। उसने आव देखा न ताव, गाली देने वाले के मुंह पर रोटी दे मारी और चल दिया। बांटने वाले का चेहरा और कपड़े दाल से सन गये। भिखमंगों को उसकी यह हरकत बुरी लगी और वे "हो! हो!" करते अपने दाता के गिर्द जमा हो गये, जैसे उसे प्रहार से बचाना चाहते हों। साथ वाला दूसरा आदमी टोकरा अलग रख कर उसके चेहरे और कपड़ों पर से दाल पूछने लगा और भिखमंगे टोकरों में से रोटियां उठा-उठाकर खिसकने लगे।

वह फिर कभी भिखमंगों के बीच जाकर नहीं बैठा। उसके भीतर विद्रूप भावना जाग उठी थी और मन में क्षोभ ज्वालामुखी की तह में पड़े लावे के सदृश उबल रहा था। जी चाहता था कि जोर-जोर से चिल्लाये,

सारी दुनिया को अपने दुख से परिचित कर दे; लेकिन वह अपढ़ भावनाओं को व्यक्त करने की शक्ति से वंचित था।

एक दिन वह किसी कबाड़ी की दुकान पर सहसा रुक गया। बहुत से लोग अपनी जरूरत की चीजें खरीद रहे थे। नुक्कड़ पर एक बिगुल पड़ा था, यों ही उसकी दृष्टि बिगुल पर पड़ी, उठाकर बजाने लगा। दुकानदार ग्राहकों को निपटाने में व्यस्त था, उसे किसी ने नहीं देखा, खड़ा बिगुल बजाता रहा। जितनी तेज आवाज निकलती थी, वह उतना ही अधिक प्रसन्न होता था। यह बिगुल उसकी भावनाओं को व्यक्त करने का साधन बन गया। वह आवाज को इस भय से बहुत ऊंचा नहीं करता था कि कहीं दुकानदार को बुरा लगे और वह उसे मना कर दे।

अब वह प्रायः दुकान के आस-पास मंडराया करता, अवसर पाते ही आंख बचाकर बिगुल उठा लेता, उसे कभी धीमे और कभी उच्च स्वर में बजाता, बिगुल की आवाज उसे सांत्वना देती। एक बार दुकानदार ने उसे बिगुल उठाते देख लिया और टोक कर कहा—"लेना चाहते हो?"

"हां।"

"निकालो पैसे।"

उसने खाली जेब उलट दी और घूरकर दुकानदार की ओर देखा।

"पैसे नहीं तो इसे क्यों उठाता है, चल भाग यहां से।"

वह बिगुल रखकर निराश और हताश चल पड़ा। लेकिन दुकानदार को एक बात सूझी और उसे वापस बुलाया—

"मजदूरी करना चाहता हो तो बिगुल मिल सकता है।"

मृत्यु का भयानक दृश्य उसकी आंखों में बिजली की तरह कौंध गया। जब से भाई मरा था, उसने यह पेशा छोड़ दिया था। मजदूरी के नाम ही से उसकी रूह कांप उठती थी। दुकानदार की बात सुनकर वह दुविधा में पड़ गया। उसने एक ललचाई हुई निगाह बिगुल पर डाली और सोचने लगा।......

"बता करेगा मजदूरी?" दुकानदार ने फिर पूछा।

"हां!" उसके अन्दर से आवाज निकली।

कुछ दिन पहले कबाड़ी ने नीलामी का माल खरीदा था, जिसे अब उठा-उठाकर दुकान में लाया जा रहा था। चार-पांच मजदूर पहले लगा रखे थे, जो सुबह से शाम तक काम करते थे, वह भी उनमें शामिल हो गया। चौथे दिन जब सारा सामान ढो लिया गया, उसे अपनी मजदूरी में यह बिगुल मिल गया।

बिगुल पाकर वह इतना खुश हुआ, जैसे उसे एकाकी जीवन का संगी मिल गया हो। वह उसे जोर-जोर से बजाता, भरे बाजार में अपने मन के क्षोभ को व्यक्त करता और जब रात को जाकर दातागंज में लेटता तो एकान्त में उससे बातें करता। वह उसका हमदर्द, साथी और बन्धु था। फिर ताज्जुब ही क्या, अगर वह उसे प्यार करता था। वह बिगुल को सीने से लगाकर सोता और सुबह होने तक उसे कई बार यों थपक लेता, जैसे रंडवा बाप तनिक आंख खुल जाने पर अपने बे-मां के बच्चे को थपक लेता है।

एक दिन वह बिगुल बजाता हुआ बाजार में से गुजर रहा था कि पीछे से किसी ने पुकारा—

'हे बिगुल वाले!"

सभी उसे बिगुल वाला कहते थे, मगर इसके साथ 'हे' का प्रयोग उसे अखरा। मुड़कर देखा तो पुकारने वाले की आंखों में रोटी बांटनेवाले की तरह अवज्ञा नहीं थी। वह आगे आया और उसके कंधे पर हाथ रखकर नर्मी से बोला—

"सुन भई! तू सारा दिन बेकार घूमता है, हमारे इश्तहार ही बांट दिया कर। तुझे दो आने फी सौ के हिसाब से पैसे मिल जाया करेंगे।"

वह इश्तहार बांटने लगा।

अनुभव से मालूम हुआ, यह काफी दिलचस्प काम था। आर्थिक लाभ तो था ही, इससे कहीं अधिक लाभ यह था कि प्रसन्नता प्राप्त होती थी। उसे दूसरों को यह आभास कराना होता था कि दुनिया में सिर्फ तुम्हीं नहीं रहते, मैं भी रहता हूं—मेरा भी एक अस्तित्व है और इस अस्तित्व की तुम उपेक्षा नहीं कर सकते। वह बिगुल बजाकर राह चलते लोगों को

अपनी ओर आकर्षित करता, आमने-सामने खड़ा होकर इश्तहार पकड़ाता, आंखों से आंखें मिलाता और उसकी अन्तरात्मा में यह बात कहीं-न-कहीं आप-ही-आप अंकित हो गई—अपना अस्तित्व स्वीकार कराने का इससे बेहतर कोई और उपाय नहीं है।

इन्हीं मार्च से सविनय भंग का आन्दोलन आरम्भ हुआ। देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक हलचल मच गई। मर्द और औरतें विदेशी साम्राज्य के विरुद्ध स्वाधीनता-संग्राम लड़ने के लिए उठ खड़े हुए। हर रोज कानून तोड़ा जाता था, जुलूस निकलते थे, गिरफ्तारियां होती थीं और लाठीचार्ज होता था। इन जुलूसों में कितना जीवन, कितना जोश था। जुलूसवालों के नारे हर एक उत्पीड़ित और हर एक पददलित की मनोभावनाओं को व्यक्त करते हुए जान पड़ते थे। वे किस साहस और वीरता से आगे बढ़ते थे और अपने आपको गिरफ्तारियों के लिए पेश करते थे। दमन का उन्हें तनिक भी भय नहीं था। लाठियां खाकर गरदनें और तन जाती थीं...

उसके मन में आई मैं भी जुलूस का एक अंग बन जाऊं, हत्यारी, हिंसक और बर्बर शक्ति को उन्हीं की तरह चुनौती दूं।

अगले दिन वह एक जुलूस के आगे-आगे छाती ताने और गर्दन अकड़ाये बिगुल बजाता हुआ चल रहा था। वह अपने भीतर असाधारण शक्ति और अतुल साहस अनुभव कर रहा था, उसका कदम एक खास अन्दाज और शान से उठ रहा था, उसके अंग-अंग में नया रक्त और नया जीवन मचल रहा था।

जुलूस योंही चौक में पहुंचा, पुलिस ने उसे रोक लिया और लोगों को दस मिनट के अन्दर-अन्दर जुलूस भंग कर देने का हुक्म दिया। अहले-जुलूस न डरे, न घबराये, बल्कि वे पहले से भी अधिक साहस और संगठन का प्रदर्शन करने लगे। जुलूस भंग करने के बजाय वे एक दूसरे की बांहों में बांहें डालकर खड़े हो गये। जो कोई जहां था, वहीं डट गया, जैसे यह मानव-समूह न होकर लोहे की दीवार हो। पुलिस उनके तेवर देखकर चिढ़ रही थी और डर भी रही थी। ये लोग अगर कहीं बिगड़ खड़े हुए तो लेने

के देने पड जायेंगे। सिपाही लाठियो सगीनो और बदूको से लैस थे, पर जुलूस की सामूहिक शक्ति कितनी विशाल, अखड और महान थी। निहत्थे लोगो का साहस देखकर उनका पित्ता पानी हो रहा था। मगर सिपाही और उनके अफसर यह भी जानते थे कि वे अहिंसा व्रतधारी हैं, उनके हाथ बधे हुए हैं, सिर्फ जबानें खुली है और नारे ही नारे हैं। दस मिनट गुजरते ही वे बदहवास होकर जुलूस पर टूट पडे। लाठिया पडती रही, जोश बढता रहा और नारे बुलन्द होते रहे। कुछेक के सिर टूटे बहुतो को जख्म आये और जुलूस के नेता गिरफ्तार कर लिये गये।

वह अपने स्थान पर खडा बिगुल बजाता रहा। उस पर न लाठी पडी और न उसे किसी ने गिरफ्तार किया। पुलिस उस जुलूस का अग ही नही समझती थी क्योकि न गांधी टोपी थी और न खद्दर पहन रखा था।

अगर पुलिस की लाठी से सिर फट जाता तो उसे उतनी ही प्रसन्नता होती जितना अब साफ बच जाने का दुख था। वह इतना किंचित क्यो है कि उसकी ओर कोई ध्यान ही नही देता? वह भी लाठिया खायेगा, गिरफ्तार होगा। उसमे जुल्म को चुनौती देने का साहस और शक्ति है, वह जुलूस का अग बनेगा, जरूर बनेगा!

थोडी ही देर बाद वह मोरी दरवाजे के बाहर काग्रेस के कैम्प म खडा था। वहा वालटियर भर्ती किये जाते थे।

"क्यों आया है?" सेक्रेटरी ने पूछा।

"भरती होने।"

"कोई सिफारिश है?"

वह समझ नही सका कि इस सवाल का मतलब क्या है। अवाक् और विमूढ सेक्रेटरी के मुह की ओर ताकता रहा।

"सी० आई० डी० का मालूम होता है।' उसे चुप देखकर सेक्रेटरी ने वालटीयर आफीसर से कहा।

वालटीयर आफीसर जगदीश था। उसने सिर से पाव तक एक दृष्टि उस पर डाली और फिर वही पहला सवाल दोहराया—"क्यों आये हो?"

"भरती होने।"

जगदीश ने एक फार्म उठाया और सिफारिश के खाने में अपना नाम लिखते हुए कहा—

"तुम्हें भरती किया जाता है, अपना नाम बताओ।"

उसका मन उल्लास से भर उठा और होंठों पर मुस्कराहट तिर आई। बोला—

"गनी !"

3

एक मोड़

अशोक ने जब राजनीतिक बंदियों के आने की खबर सुनी तो वह इतना खुश हुआ, जैसे लाखो-करोड़ो सुनहली किरणें उसकी रूह में एक साथ जगमगा उठी हों; जैसे जेल की दीवारें ढह गई हो और वह खुले वातावरण में आजादी से साम ले रहा हो। नये मेहमानो से गले मिलेगा। वे सब उसके साथी हैं, हम-कदम है, स्वाधीनता सग्राम के सिपाही हैं। वह डांडी मार्च और तूफान की आमद-आमद की खबरें अखबार में पढता रहा था। अब इस तूफान से तरंगित मानव-हृदयों को देखेगा, सारे हालात नये साथियो की जबानी सुनेगा ।

उसने कमरे की सफाई की। दीवारो को झाड़ने और जाले उतारने के अलावा फर्श धोया। साथियो का स्वागत करने के लिए वह कितना उत्सुक और कितना उतावला था। इस उतावलेपन में एक असावधानी हो गई, मन को ठेस लगी।

कमरे के एक कोने में अजनहारी ने घर बना रखा था। जिसे वह उस समय से देख रहा था, जब से नन्ही सी जान ने कहीं से चिकनी मिट्टी ला-लाकर उसे बनाना शुरू किया था। वह घर को बनते देखता और सोचता—"जिन्दगी में बढ़ने की तमन्ना है और सृजन चेतना है। इस चेतना ने अजनहारी को निर्माता बना दिया है।" घर बनकर तैयार हुआ। वह बाहर से उड़ती हुई आती, घर के समीप पहुंचकर पर समेटती और सट से भीतर चली जाती। "जिन्दगी अपनी ही जैसी दूसरी जिन्दगी को

जन्म दे रही है, अपना प्रतिरूप उत्पन्न कर रही है!" अशोक के सम्मुख सृष्टि के विकास का परिच्छेद खुल गया। जिस सिद्धान्त को उसने पुस्तको मे पढा था, अजनहारी उसका जीवित उदाहरण प्रस्तुत कर रही थी।

अंजनहारी आती और जाती रही। अशोक उसे और उसके घर को देख-देखकर सोचता रहा—"अंडे शायद दे चुकी है। अब उन्हें से रही होगी—और अब बच्चे निकल आये होंगे। नन्हे-नन्हे तनिक-से बच्चे—जैसे बो देने के बाद बीज में से अंकुर फूट आते हैं, धीरे-धीरे बडे होंगे, पंख निकलेंगे और एक दिन घर की दीवारों को तोडकर फुर से उड़ जायेंगे—और फिर वे खुद एक नई, अपने ही जैसी, जिन्दगी को जन्म देंगे······"

अशोक दीवारों को टूटते और बच्चों को उड़ते देखना चाहता था। वह कमरे की सफाई करते और फर्श धोते समय ध्यान रखता कि इस घर को क्षति न पहुंचे। एक बार अंजनहारी कहीं से "एक मुर्दा कीडा उठा लाई; उसे लेकर जब वह घर में प्रवेश करने लगी तो कीड़ा नीचे धरती पर गिर पड़ा। अशोक ने उसे उठाकर सुराख अर्थात् घर के दरवाजे पर रख दिया ताकि अजनहारी उसे बच्चों को खिलाये, वे जल्द बड़े हों और फुर से उड जायें। लेकिन···लेकिन उस दिन वह आने वाले साथियो के खयाल मे इतना मगन था कि इस घर का ध्यान ही न रहा। फर्श धोने के लिये पानी का डोल जोर से कोने मे फेंका, तो घर टूटकर फर्श पर आ गिरा। अंजनहारी के दो बच्चे पंख निकलने से पहले ही मृत्यु की भेंट हो गये।

उसे आघात लगा। वह सारा दिन कमी-कमी-सी महसूस करता रहा, जैसे उसने कोई प्रिय वस्तु खो दी हो। आने वालों का खयाल भूल गया। अपना एक साथी और उससे सम्बन्धित एक घटना याद आ रही थी। साथी और वह दोनों बीहड जगल में एक पुराने मकान में छिपे हुए थे। वहां जंगली कबूतर बच्चे दे रहे थे। कुछ ही दिनों में कबूतर को बाज पकडकर ले गया और कबूतरी बिल्ली का आहार बनी। अनाथ बच्चे रह गये। पंख निकल आये थे; लेकिन उड़ने की शक्ति अभी उनमें नहीं थी। उन्हें

चोगा कौन दे ? अशोक का साथी दाने चबा-चबाकर मुह बच्चों के सामने खोल देता और वे उसके हाथ पर निश्चित बैठे चबाये हुए दाने अपनी नन्ही-न ही चोचो मे भर लेते। पुलिस उनकी टोह मे जासूसी कुत्तो की तरह जमीन सूघती फिरती थी। वहा अधिक ठहरे रहने मे पकडे जाने का भय था। फिर भी उन्होने वह मकान उस समय तक नही छोडा, जब तक कि बच्चे उडने और अपने आप चोगा लेने मे समर्थ नही हो गये। अपने क्रान्तिकारी साथी का जो चित्र इस समय अशोक की आखो के सामने घूम रहा था उसमे कबूतर का बच्चा उसके मुह मे चोच डाले चोगा ले रहा था।

उसका वह बहादुर साथी एक अग्रेज अफसर को गोली का निशाना बनाने के अपराध मे फासी पा चुका था।

वह अकेला ही नही, कई और साथी भी फासी चढे थे। उनके मरने का गम जरूर था, लेकिन खुशी भी थी। उन्होंने खुद मरकर एक सिद्धात को—देश भक्ति की भावना को जीवित कर दिया था। उनकी याद से कितने ही दिल गर्व से भर उठते थे। क्रातिकारी दल पुलिस और फौज की सगठित शक्ति षडयन्त्र केस, मारपीट, भूख हडताल, कैद और फासी, जाने क्या क्या घटनायें याद आती और अपने राजनीतिक जीवन की सारी कहानी फिल्म रील की तरह आखो के सामने घूम जाती।

सन 1921 मे असहयोग आदोलन शुरू हुआ। लगता था कि हिन्दू और मुसलमानो ने एक मत होकर देश को आजाद कराने का दृढ सकल्प ले लिया है। अग्रेज अब गये ही गये। गाधी ने एक साल की अवधि निश्चित की थी, लेकिन उम्मीद थी पहले ही चले जायेंगे। नौजवान स्कूलों-यूनिवर्सिटियो और सरकारी नौकरियो का बायकाट कर रहे थे। जगदीश और अशोक कालेज मे पढ़ते थे। जगदीश को एम० ए० की परीक्षा मे बैठना था, अशोक उससे छोटा था और तीन साल पीछे। उन्होने भी समय की ललकार को सुना और कालेज छोडकर सत्याग्रह-आन्दोलन मे सम्मिलित हो गये।

आन्दोलन जोरो पर था और देहातो मे फैल रहा था। किसान जनता

सदियों के शोषण और अत्याचार का अन्त करने के लिये उठ खड़ी हुई थी। चौरी-चौरा की घटना घटित हुई और गांधी ने आन्दोलन वापस ले लिया। क्रांतिकारी भावना को आघात पहुंचा, आजादी के सपने अधूरे रह गये। आन्दोलन का स्थान रचनात्मक-कार्य ने ले लिया। शिक्षा के राष्ट्रीय केन्द्र खोले गये, जिनमें नौजवानों को संयम, सत्य और आत्मशुद्धि की शिक्षा दी जाने लगी। इतिहास और राजनीति से कहीं अधिक धर्म और अध्यात्मवाद पर जोर दिया जाता था। लेकिन दिलों में जो हलचल मच रही थी, उसे अध्यात्मवाद से संतोष नहीं मिलता था। वे भौतिक लक्ष्य को लेकर चले थे। उनकी आंखें एक निश्चित आदर्श—एक मंजिल पर लगी हुई थी।

असंतुष्ट युवकों ने क्रांति का मार्ग अपनाया। गुप्त दल स्थापित हुए। उनका सदस्य बनने के लिये कड़ी आजमायश में से गुजरना पड़ता था। जान जोखिम का काम था। दल के हर एक मेम्बर की यह ख्वाहिश होती थी कि सबसे पहले जान लड़ाने का अवसर उसे दिया जाये। कुर्री-अंदाजी से फैसला किया जाता कि कौन काम किसके सुपुर्द हो। सफलता-असफलता की किसे परवाह थी? उनका काम हुकूमत की जड़ों को खोखला करना और अवाम को अंग्रेज साम्राज्य के खिलाफ उकसाना था। वे अपने उद्देश्य के प्रचार के लिये 'लाल झंडा' नाम की एक अवैध पत्रिका निकालते थे और गाहे-गाहे सनसनीखेज घटनायें कर गुजरते थे।

10 अक्तूबर 1926 को इम्पीरियल बैंक पर डाका पड़ा। इस मुहिम का नेतृत्व अशोक कर रहा था। उन्हें खजाना लूट ले जाने में सफलता प्राप्त हुई; लेकिन रास्ते में कार बिगड़ गई। अशोक और उसके साथी पकड़े गये। उन्हें नाना प्रकार की यातनायें दी गईं। दल की खोज लगाने के लिये पुलिस ने बहुतेरे यत्न किये; मगर उन्होंने कुछ भी तो बताकर नहीं दिया। चुपचाप सब कुछ सहन करते रहे। न कोई मारपीट से डरा और न लालच में आया। आखिर मुकदमा चला और उन्हें डाका डालने और पुलिस का मुकाबला करने के अपराध में दस-दस साल सख्त कैद का दंड मिला।

एक बार सन्देश मिला कि साथी उन्हें जेल तोडकर रिहा कराने की तैयारी कर रहे हैं। मगर जेल पर हमला होने से पहले ही देश मे नई घटनायें घटित हुई। कुछ अग्रेज अफसर कत्ल हुए, बम फेंके गये। साथी गिरफ्तार हुए, मुकदमा चला। फासिया और उम्र कैद की सजायें मिली।

हलचल और सघर्ष के यह चन्द साल अशोक के जीवन की अमूल्य पूजी थे। वह इनकी तुलना अपने पहले जीवन से करता, तो उसे कालेज का जीवन अधूरा और निरुद्देश्य जान पडता। दिन-रात किताबें चाटना, छिछली योग्यता की शेखी बघारना और रेत की दीवारो पर रेंगते हुए इतराना। मगर क्रातिकारी जीवन के यह चन्द साल जोश, वलवलो और उमगो से ओत प्रोत थे। जगलो और निर्जन स्थानो मे छिपे रहना और दुश्मनो पर चीते की तरह लपक कर वार करना। जिन्दगी और मौत धूप और छाया की भाति साथ साथ चलती थी। पल-पल व्यग्रता और पग-पग पर आशका। तनिक-सी आहट हुई, हाथ झट पिस्तौल पर। हर वक्त प्राण लेने और प्राण देने के मनसूबे बाधे जाते थे। वीरो का इतिहास मन को गुदगुदाता था

अशोक का मन उत्साह से भर जाता, रगो मे रक्त तेजी से दौडने लगता। कमरे की दीवारें तग होने लगती, जी मे आती कि टक्कर मारकर जेल तोड दे और भाग जाये। जिन लोगो ने उसके साथियो को कैद किया है, फासी पर लटकाया है, उनसे गिन गिनकर बदला ले। भीम की गदा से दुर्योधन की जाघ तोड दे और शत्रु का रक्त पीकर कलेजे की प्यास को शात करे।

लेकिन जब भावुकता का तूफान थम जाता, वह गम्भीर और शान्त चित से सोचता—"क्या हमारी कुर्बानियो का कोई और फल नही हो सकता था। जो अफसर उनके हाथो मारे गये हैं, क्या उनकी हत्या से सरकार की मशीनरी मे कुछ अन्तर आया? उसे वैसे ही तनख्वाहदार मुलाजिम और मिल गये। लेकिन उनके बदले जो नौजवान फासी पर लटका दिये गये, काले पानी भेज दिये गये, जो जेलो मे पडे सड रहे हैं, वे

देश-भक्ति के चमकते हुए हीरे थे। उनकी तनख्वाहदार घोंघों से क्या तुलना ?

कैद और एकान्तवास इसीलिए दु:खप्रद है कि मनुष्य को सोचने का घुन लग जाता है। अशोक भी हर वक्त सोचता रहता। कभी साथियो के कारनामों पर गर्व करता और कभी मृत्यु की बात सोचकर मन भर आता। उसे अपने उपायो और सघर्ष में किसी त्रुटि की आशका होती। पहले यह आशंका उसकी अन्तरात्मा को दूर, दूर— बहुत दूर कहीं गहराई मे कोचती थी। लेकिन अब उनपर आ रही थी और स्पष्ट होती जा रही थी। जितना स्पष्ट होती गई; उतना ही आत्मविश्लेषण और आत्म-चिन्तन की मात्रा बढती रही। कई बार वह झुझला उठता और आशका से बचने के लिए केवल घटनाओ को देखा करता, उनमे डूबकर भीतर जाने का प्रयत्न न करता। या फिर अपने साथियों के महान व्यक्तित्व का कल्पित-चित्र बनाने लगता। उनकी वीरता और अदम्य साहस की मन ही मन प्रशसा करता।

ऊहापोह, दुविधा। सोचने की इच्छा न होते हुए भी सोचना पड़ता और कई बार तो वह इच्छा ही से सोचता और कुरेद-कुरेदकर इस त्रुटि के भीतर झांकता। जिस प्रकार फटे में पांव डालने से वह और फट जाता है, अब उसे किसी खयाल से झुठलाना सम्भव नही था।

इन्हीं दिनों जगदीश भी गिरफ्तार होकर जेल में आया, उसके साथ उसी तरह कुरेदने से त्रुटि स्पष्ट होती चली गई। यह मिलना बहुत दिनों के बाद हुआ था। अशोक पर मुकदमा चलने से पहले ही वे एक दूसरे से अलग हो चुके थे। आतंकवादी दल का सदस्य बनकर अशोक गुप्त जीवन बिता रहा था। मगर जगदीश एक राष्ट्रीय संस्था का आजीवन सदस्य बन गया था, जिसका काम शिक्षा और प्रचार द्वारा देश मे जागृति फैलाना और बुद्धिजीवियों की सेना तैयार करना था। इस संस्था की ओर से एक कालेज खोला गया, जगदीश उसमें इतिहास और राजनीति पढ़ाने लगा।

अशोक के कई साथी, जो फांसी चढ़े थे, जेलों मे पड़े थे, जगदीश उनसे भली भांति परिचित था। वे उसके शिष्य रह चुके थे। बहुत देर

तक उनके बारे मे बात होती रही ।

"हमारे दल और दृष्टिकोण के बारे मे आपकी क्या राय है ?" बातो ही बातो मे अशोक ने पूछा ।

"राय से क्या मतलब ?" जगदीश ने तनिक रुक कर कहा ।

"हमने जो कुछ किया, क्या आप उसे ठीक और उपयोगी समझते हैं ?"

"उपयोगी तो जरूर है। वर्तमान आन्दोलन और देश की जागृति मे तुम लोगो का बडा हाथ है । तुम लोगो क सकल्प, साहस और त्याग ने जनता को नया जीवन प्रदान किया है ।

"आप इस आदोलन को हमारे काम का नतीजा समझते हैं ?"

"तुम्हारे ही काम का नतीजा तो नही कह सकते। दुनिया भर के आर्थिक मदवाडे का असर है। देश मे भूख और बकारी है। पढे-लिखे लोगो को काम नही मिलता । अनाज के दर गिर गये हैं। गेहू सवा रुपया और ज्वार-बाजरा दस-बारह आने मन बिकता है। किसान के बीज के दाम भी पूरे नही होते । मालिया और लगान अब भी वही है। देश-व्यापी आर्थिक सकट और बेकारी का नतीजा यह आदोलन है। तुम लोगो के उदाहरण से जनता को प्रेरणा मिली है, जागृति फैली है।"

अशोक चुप हो गया, सोचने लगा। वह उन लोगो की, और किसान जनता की बात सोच रहा था जो भूख, बेकारी और आर्थिक सकट से पीडित थी। थोडी देर चुप रहकर वह फिर बोला—

"क्या सिर्फ नमक-कानून तोडने से ही देश को आजादी मिल जायेगी ?"

"हमारा खयाल है' जगदीश बोला—"आदोलन शुरू करने का यह तो एक ढग है। धीरे-धीरे वह मजदूरो, किसानो मे और सारे देश मे फैलेगा।"

"लेकिन यह बताइये।" अशोक बोला "कही फिर चौरी-चौरा जैसी घटना हो और आदोलन को फिर एकाएक बन्द कर दिया जाय ?"

जगदीश सकपकाया। उसे इस बात की आशका नही थी, बाहर रहते

इस बारे में सोचा तक नहीं था—

"नहीं, यह नहीं हो सकता। देश की जनता बहुत दुखी है। पंजाब की बात कुछ और है, यू० पी०, बिहार और बंगाल में जहां जमींदारी है, किसान बिल्कुल पिस गया है। वे किसी प्रकार आन्दोलन को बन्द नहीं होने देंगे। और फिर इस बार लोगों में जागृति भी पहले से अधिक है।"

"देखिये" अशोक बोला "इधर जेल में रहकर मैंने बहुत कुछ पढ़ा और सोचा है। बेकार की बातों पर आज मुझे विश्वास नहीं होता। जब तक नेतृत्व ठीक ढंग से न हो, लोगों का क्रोध और बेचैनी सरकार का कुछ बिगाड़ नहीं सकती। मैं अब समझा हूं कि क्रान्ति बच्चों का खेल नहीं, विज्ञान है। सरकार की संगठित शक्ति को तोड़ने के लिए उससे भी बड़ी संगठित शक्ति दरकार है। हम भी आज तक जो कुछ करते रहे हैं, वह उपयोगी भले ही हो, काफी नहीं था। हम समझते थे कि मुट्ठी भर नौजवान अपने महान त्याग से देश को आजाद करा लेंगे, यह हमारी भूल थी। देश की आजादी के लिए हमें मेहनतकश जनता को संगठित करना होगा।…"

जगदीश अशोक के मुंह की ओर देखने लगा, देखता रहा और फिर गम्भीर होकर बोला—

"तुम ठीक ही कहते हो।"

उसी समय गनी वहां आया जगदीश को सलाम करके मुस्करा दिया। जगदीश ने उसे अशोक से परिचित कराया और उसके वालंटीयर भर्ती होने की कहानी भी सुनाई। अशोक उसे बड़े तपाक से मिला, उसके साथ काफी देर तक प्यार और स्नेह से बातें करता रहा।

अशोक से प्यार और स्नेह पाकर गनी खिल उठा और आपसी सम्बन्ध दिन-दिन गहरा होता चला गया।

अशोक उस रात अपने कमरे में सोने गया, तो उसे देर तक नींद नहीं आई। जगदीश के साथ उसे अपनी बातें याद आ रही थीं। उसने आज तक जो कुछ पढ़ा और सोचा था, वह तर्क बन गया था। अब वह अपने ही तर्क पर मुग्ध हो उठा था। जितना सोचता उतना ही वस्तुस्थिति स्पष्ट होती जा रही थी। वह अपने भीतर एक कसक, एक वेदना का अनुभव

कर रहा था। समस्त शरीर मे काटे से चुभ रहे थे, जैसे भौतिक तत्व नये सांचे मे ढल रहे हो, जैसे उसकी आत्मा मे कोई सूक्ष्म और महान वस्तु प्रवेश कर रही हो। यह अनुभूति—चाहे आनद हो, चाहे पीडा—उसे सोने नहीं देती थी। करवटें लेते-लेते जब तनिक आख लगी तो स्वप्न देखा कि वह जनता के सगठन मे सलग्न है, हजारो गनी— मजदूर और किसान आजादी के लिए मर मिटने को तैयार हैं, वह उनका नेतृत्व कर रहा है। "इनकलाब जिन्दाबाद !" के नारो मे वायुमडल मुखरित हो उठा है ..

फिर आख खुल गई और वह आप ही-आप मुस्कराने लगा।

: 4 :

नया मार्ग

नमक सत्याग्रह को गांधी-इर्विन समझौता चाट गया। सविनय-भंग आंदोलन के सब कैदी छोड दिये गये; लेकिन अशोक और उसके साथी जेलो मे पड़े सड़ते रहे, और जिन्हें फांसी की सजा मिली थी, वे फांसी लगते रहे। समझौता अहिंसावादी सिद्धान्त के अनुसार हुआ था, इन लोगों से इसका कोई सम्बन्ध नही था।

तीन साल बड़े ही असंतोष और हलचल के बीते। आजादी का संघर्ष इसके बाद भी जारी रहा और मजदूरों और किसानो में फैल गया। यू० पी०, बिहार और बंगाल के किसान जमीदारी के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। कानपुर, बम्बई और अहमदाबाद के कारखानो मे बडी-बड़ी हड़तालें हो रही थी, जिन्हें दबाने के लिए सरकारी मशीनरी पूरी बर्बरता से हरकत मे आ गई थी। इधर यह दमन हो रहा था, जनता को कुचला जा रहा था, उधर भारत के प्रतिनिधि गोलमेज कांफ्रेस में भाग लेने ब्रिटेन पहुंचे। स्वप्न पूरे नही हुए। खाली हाथ लौटे। कांग्रेसी नेता एक बार फिर जेलो मे जा बैठे। गांधी-इर्विन समझौता की धज्जियां उड़ गईं; उसे टुकड़े-टुकड़े करके हवा में बखेर दिया गया। संघर्ष और हड़तालें, दमन और अत्याचार बढ़ता रहा। भूखे अवाम निडर और निर्भीक ताल ठोंककर लड़ रहे थे। पर जेल में बन्द गांधी की आत्मा सिहर उठी, वह नही चाहता था कि जनता का खून इस निर्दयता से बहाया जाये। उसने सामूहिक संघर्ष और सत्याग्रह बन्द करने की घोषणा कर दी, अलबत्ता लोगों को इजाजत दे दी कि

सरकार के इस दमन और अत्याचार की निंदा करके सत्याग्रही व्यक्तिगत रूप से गिरफ्तार हो सकते हैं। मगर उन्होंने खुद अपनी समस्त शक्ति अछूत-समस्या को हल करने मे लगा दी क्योकि रैमजे मक्डानल्ड की सरकार ने गोलमेज कार्फ़ेस की बहस के बाद जो एवार्ड दिया था, इसमे अछूतो को अलग प्रतिनिधित्व देकर सवर्ण हिंदुओ से जुदा करने की चाल चली गई थी, गाधी ने इस चाल के विरुद्ध मरण-व्रत रखा। दिल्ली से लदन तक तारें खटक गईं। आखिर सत्य, अहिंसा और अध्यात्मवाद की 'जीत' हुई। पूना पैक्ट द्वारा ब्रिटिश एवार्ड मे सशोधन किया गया और गाधी जेल से रिहा होकर बाहर आया।

काग्रेस ने फिर रचनात्मक-कार्य की ओर ध्यान दिया और नये प्रोग्राम की सबसे बडी मद अछूत उद्धार था। गाधी ने अपनी समस्त शक्ति इसी कार्य मे लगा दी। उसका अखबार 'यग इण्डिया' दोबारा निकला तो उसका नाम 'हरिजन' रखा और वह हरिजन फड' जमा करने देश के दौरे पर चल पडा।

लेकिन अशोक और उसके साथी काग्रेस की नीति से सहमत नही थे। उन्हे यह पसन्द नही था कि देश की सबसे बडी राजनीतिक सस्था क्रांतिकारी परम्परा को छोड कर समाज सुधार के काम मे लग जाये सेवा समिति का कार्य करे। वे मानते थे कि अछूत पीडित और पददलित हैं, हिन्दू समाज मनुष्यो की इतनी बडी तादाद के साथ पशुओ से भी बुरा व्यवहार करता है, इस रोग का निदान सुधार कदाचित् नही है। जिस फोड़े की जडें रगो मे पैवस्त हो, वह मरहम से अच्छा नही होगा। उसके लिए आप्रेशन की जरूरत है। अछूत को लाख 'हरिजन' कहो, वह अछूत रहेगा। फिर एक यही समस्या तो नही, सैकडो समस्यायें हैं। इस जर्जर समाज के शरीर पर बहुत से नासूर हैं। तुम आप्रेशन से क्यो घबराते हो? आप्रेशन होने दो—क्रांति को आने दो? इस जर्जर समाज को मिटने दो, नासूर भी मिट जायेंगे। फिर एक नया समाज जन्म लेगा—स्वस्थ और सुन्दर!

नौजवानो ने भी जेलो से छूटकर अपना कर्त्तव्य निश्चित किया। देश

की राजनीति दक्षिण पक्ष और वाम पक्ष में विभाजित हो गई।

उधर अछूतोद्धार हो रहा था इधर ये नौजवान मजदूर यूनियनें और किसान सभायें कायम करने में व्यस्त थे। दिन भर मुस्तैदी से काम करते थे, रात को थके-मांदे लौटते तो सोने से पहले किताबें पढ़ते, आपस में बहसें करते, विचारों का आदान-प्रदान होता। फलसफे के नुक्ते सूझते और वे अपनी सूझ पर आप ही चौंक पड़ते। मनुष्य संघर्षशील हो, स्वाध्याय तभी उपयोगी होता है; दिमाग सुलझता है, दृष्टिकोण स्पष्ट से स्पष्टतर होता चला जाता है और अन्तरात्मा असीम आलोक से जगमगा उठती है।

शहर में जहां पहले कांग्रेस कमेटी के अतिरिक्त किसी दूसरी संस्था का नाम तक नहीं था, एक साल के अन्दर प्रेस वर्कर्स यूनियन, तांगा ड्राईवर यूनियन, स्वीपर यूनियन और रेलवे मजदूर यूनियन कायम हो गई। काम के लिए विस्तृत मैदान खुला पड़ा था। लोग संगठित होने के लिए तैयार थे, कोई संगठित करने वाला ही नहीं था, सिर्फ नारों से तो आजादी नहीं मिलती। अशोक और उसके साथियों ने इस तथ्य को समझ लिया था। उन्हें अपने साथ काम करने वाले और बहुत से नौजवान मिल गये थे। गनी का बिगुल जागृति का प्रतीक बना हुआ था और हर तरफ गूंज रहा था।

यह ठीक है कि सतह से न टकराकर गर्म लहरों ने नीचे-ही-नीचे बढ़ना उचित समझा; लेकिन नीचे का मार्ग भी साफ नहीं था, उसमें भी नाना प्रकार की बाधायें और अड़चनें थीं, जो नीचे की लहरों को भी सर्द कर देना चाहती थीं, रूढ़ियों के स्पन्ज थे, जो आगे बढ़ने की उमंग ही चूस लेते थे; बड़े-बड़े भयंकर और हिंसक मगरमच्छ थे, जो खाहमखाह मार्ग रोककर खड़े हो जाते थे, जैसे उन्होंने प्रगति के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रखा हो। उनसे भिड़ना जान-जोखिम का काम था। उनकी पुश्त पर जबरदस्त संगठित शक्ति थी। किसी को तनिक उभरते देखा, झट जबड़े फाड़ कर पीछे पड़ गये।

अशोक और उसके साथियों ने आतंकवाद के दिनों में इन मगरमच्छों के जबड़े तोड़ देने का भरसक प्रयत्न किया था; लेकिन असफल रहे थे।

उन्होने दस-बीस को खत्म किया, तो देखते ही देखते उनकी तादाद हजारो हो गई, जैसे किसी जादू के जोर से खुम्बो की भांति धरती से उग रहे हो। अन्त मे सोचा कि उनका खत्म करने के लिए वही तरीका इस्तेमाल किया जाय, जो रामायण के हीरो राम ने किया था। रावण का एक भाई अहिरावण था। उससे लडना बहुत कठिन था क्योकि जहा उसके रक्त की एक बूद गिरती थी, वही से सैकडो अहिरावण उत्पन्न हो जाते थे। राम ने अपने सेनापति हनुमान को हुक्म दिया कि उसे उठाकर ऊपर ले जाओ और फिर इस तरह ठिकाने लगाओ कि उसके लहू की एक बूद भी धरती पर गिरने न पाये। अशोक और उसके साथियो की कोशिश भी यही थी कि जनता को सगठित करके इन मगरमच्छो का सम्बन्ध धरती स काट दिया जाये। और फिर ? और फिर बस।

मगरमच्छ भी असावधान नही थे। नौजवानो के प्रयत्नो को असफल बनाने के लिए नए नए उपाय सोचे जाते थे। पार्टी के सदस्यो की कडी निगरानी होती थी। खुफिया पुलिस के आदमी परछाईं की भांति पीछे लगे रहते थे। दफ्तर की तलाशी अक्सर होती थी। जब कोई खास चीज हाथ न लगती, जो कुछ नजर आता पुलिस उठा ले जाती। एक बार बरामद चीजो की जो फहरिस्त तैयार की गई उसमे चन्द कागजात, नारियल का बेकार खोल लोहे का एक छोटा सा डण्डा और गनी का बिगुल शामिल था। नारियल का खोल अगर गरी निकाल कर वैसे ही फेंक दिया गया था। फिर भी कहा जा सकता था कि उसे बमसाजी के लिए प्रयोग म लाना अभिप्रीत था और लोहे का डण्डा तो बना बनाया शस्त्र था ही। लेकिन पुलिस गनी का बिगुल क्यो ले गई ? कोई कारण नही था। कारखानो म प्रति दिन अनगिनत बिगुल तैयार होते हैं और हजारो की तादाद मे दुकानो पर बिकते हैं और खरीदने के लिए लाईसेंस भी दरकार नही। उसे बजाया ही जा सकता है पिस्तौल का काम तो उसस नही लिया जा सकता। फिर बिगुल ले जाने का मतलब ? कार्रवाई दिखाने के लिए कुछ न कुछ तो साथ ले जाना ही था। गनी को बिगुल छिन जाने का बडा दुख था। वह दिन भर परेशान घूमता रहा, जैसे मा का इकलौता बच्चा उससे छिन गया हो।

गनी के लिए बिगुल कोई जड़ वस्तु नहीं थी। उसके हाथ में आते ही वह हाड-मांस और रक्त से निर्मित पुतला बन जाता था और गनी की आत्मा का एक टुकड़ा उसके भीतर प्रवेश होकर बोलने लगता था। इसलिए जब बिगुल गया तो गनी की आत्मा का वह टुकड़ा भी गया। वह उसे वापस लाने के लिए दो-तीन दिन लगातार थाने के गिर्द मंडराता रहा। परिणाम यह कि उसे बिगुल तो नहीं मिला, अलबत्ता पुलिस ने उसकी कमजोरी भाप ली। इसके बाद जब भी वह तलाशी लेने आई, गनी का बिगुल जरूर ले गई।

एक बार गनी बहुत दुःखी हुआ, उसने अशोक से कहा—"मेरा यह पांचवां बिगुल जा रहा है। दूसरा बिगुल तो इतना अच्छा था कि वैसा अब मिलता ही नहीं, अशोक भैया!"

"क्या हुआ कामरेड! तसल्ली रखो।" अशोक ने सान्त्वना दी, "हम बाजार से और खरीद लायेंगे। पुलिस जितने बिगुल चाहे, ले जाये। लेकिन तुम्हारे अन्दर जो बिगुल है, उसे तो नहीं ले जा सकती।"

"तूरर तू तू, तूरर तू तू!" वातावरण मुखरित हो उठा; जैसे लाखों-करोड़ों बिगुल एक साथ बज उठे हों। गनी को पहली बार महसूस हुआ कि उसके भीतर भी बिगुल बज रहा है। यह बिगुल अमर और अजय है। मनुष्य सृष्टि के आरम्भ से इस बिगुल को बजाता आया है और बजाता रहेगा। मेंह, आंधी और तूफान कुछ भी हो! मुसीबतों के पहाड़ टूटे; मगर वह बिगुल बजाता हुआ उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ रहा है। कोई शक्ति चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हो, उसे रोक नहीं सकती, उससे यह बिगुल छीन नहीं सकती।

गनी का बिगुल मनुष्य के इस अमर और अजर बिगुल का प्रतीक था। जब यह बिगुल बजता था, तो सड़कों पर चलते हुए लोग ठिठक जाते थे, बाजारों मे दूकानों पर बैठे दुकानदार उठ खड़े होते थे, और सार्वजनिक सभा में उपस्थित गण आदर और सम्मान से सिर झुका लेते थे।

उसके बिगुल में अद्‌भुत शक्ति थी, अनोखा जादू था। हां, जादू था। जब यह बिगुल बजता था तो मनुष्य की स्वाधीनता और उन्नति की चिर-

सचित भावना फिजा मे गूज उठती थी। वरना पुलिस लाईन मे हर सुबह बिगुल बजता है। उसकी आवाज कानो को छेदती है, अरुचिकर लगती है। क्यो? वह भी तो बिगुल है? बिगुल है; मगर उसे सुनकर मनुष्य को अपने छिने हुए अधिकार स्मरण हो आते हैं।

परेड के मैदान मे फौज मार्च कर रही है। बिगुल बज रहा है। उसकी आवाज इतनी करख्त है कि लोग सुनना नही चाहते। क्यो नही सुनना चाहते? न सुनें। सुनने-न-सुनने की कौन परवाह करता है वह अपनी बात कहे जा रहा है—"ऐ मनुष्य! तूने जो अधिकार खो दिये हैं, वे तुझे वापस नही मिल सकते। देख, हम तुझे दबाकर रखेंगे—दबाकर रखेंगे तोप, और बन्दूक मे, तुझ मे इतना साहस और सामर्थ्य कहा कि तू इन्हें दोबारा हासिल कर सके।"

पुलिस का बिगुल लोगो को उनकी विवशता की याद दिलाता है। फौज का बिगुल उनकी पराधीनता का मजाक उडाता है। लेकिन गनी का बिगुल उन्हे सघर्ष का सुखद सन्देश देता है, आगे बढने को निमन्त्रित करता है। लोग आप ही आप उसकी ओर खिचे चले आते हैं। उनके भीतर के बिगुल इस बिगुल के साथ स्वर मे स्वर मिलाकर बज उठते हैं, गुलामी की जंजीरें कटती हुई महसूस होती हैं; स्वाधीनता का विचार खून को गरमाता है। और वे गनी के गिर्द जमा होकर बार-बार पूछते हैं—

"कामरेड गनी! बिगुल क्या कहता है?" गनी मुस्करा देता है और अपने मुख की कठोरता को और कठोर बनाकर बन्द मुट्ठी हवा मे हिलाते हुए कहना शुरू करता है "मेरा बिगुल कहता है—

"अंग्रेज को हिन्दुस्तान से निकाल दो।"

"पूँजीवाद को मिटा दो।"

"दुनिया भर के मजदूरो एक हो जाओ।"

गनी बिगुल बजाता है, लोग सुनते हैं। उसे बजाने मे और लोगो को सुनने मे आनन्द मिलता है। सबके हृदय एक साथ धडकने लगते हैं और उनके भीतर के बिगुल इस बिगुल के साथ स्वर मे स्वर मिलाकर बज उठते हैं।

जब कभी गनी को किसी जलसे जलूस अथवा किसी और विशेष अवसर पर जाना होता है तो वह खाकी निक्कर, नीले रंग की सफेदी मिली कमीज, सिर पर हेल्मटनुमा टोपी पहनता है, सुर्ख पेटी गले में डालकर उससे बिगुल लटका लेता है और लाल झंडा हाथ मे लेकर शान से नीचे उतरता है। जो भी व्यक्ति नीचे खड़ा मिल जाता है उसे फौजी सैल्यूट करके पूछता है—"ठीक है न, अब तो मैं रूसी सिपाही नजर आता हूं ?"

ऐसे ही अवसर पर एक बार गोपाल ने एतराज किया था—

"रूसी क्यों हिन्दुस्तानी सिपाही बनो।"

गनी पहले तो झेंप गया; लेकिन दूसरे ही क्षण छाती तानकर बोला—"न मैं रूसी सिपाही हू।"

"वह क्यो ?"

"क्यों···क्योंकि···" वह रुक गया। लुकनत ने जबान पकड़ ली। वह कुछ भी नही कह पाया, लेकिन आंखो मे आत्मविश्वास झलक रहा था।

नारायण भी पास ही खडा था उसने आगे बढकर कहा—"कामरेड, कहते क्यो नही कि रूसी सिपाही इसलिए फौज मे भरती होता है कि आजादी के लिए लडे। मजदूरो, किसानों ने जो अधिकार प्राप्त कर लिये हैं, उनकी रक्षा करे, जब कि हिन्दुस्तानी सिपाही को इस बात की तनख्वाह मिलती है कि वह खुद अपने ही भाइयों को गुलाम बनाकर रखे।"

गनी की आंखें चमक उठी। मुस्कराहट होंठों से कानों तक फैल गई और वह नारायण की ओर यों देख रहा था जैसे कह रहा हो—

"तुमने जो बात कही है, वह मेरे दिल पर नक्श है।"

उसने बिगुल होंठों से लगाया और फौजी ढंग से कदम उठाता हुआ आगे बढ़ा। उसके हाथ में झंडा लहरा रहा था और बिगुल की आवाज फिजा मे गूंज-गूंजकर दुनिया भर को स्वाधीनता का संदेश दे रही थी। जितना उसका आदर्श ऊंचा था उतना ही उसका कदम मजबूत पड़ रहा था।

5

पहेली

शीला जब जेल से रिहा होकर बाहर आई, तो उसका अपना कोई घर नही था। सास ससुर पहले ही मर चुके थे। एक पति था। वह आवारा। मालूम हुआ कि वह सारी सम्पत्ति बेचकर विलायत चला गया है और लन्दन के होटलो मे बैठा प्यार का व्यापार कर रहा है।

इगलैंड का व्यापार सारी दुनिया मे फैला हुआ था। उसकी फैक्टरियो और कारखानो मे बेशुमार माल तैयार होता था, जो उपनिवेशो की मडियो मे फेंका जाता था। प्रकाश ने अपने विद्यार्थी जीवन मे व्यापार के इस महान केन्द्र की तडक-भडक देखी थी, जो उसके मन मे खुब गई थी। पूजीवाद जितना उन्नत होता है, उसका व्यापार उतना ही विस्तृत होता है। भारत ऐसे पिछडे हुए देश म वह माल नही मिलता, जो प्रकाश ने वहा खरीदा था। फिर वह यहा क्यो पडा रहता। खरी जिनस भी हाथ न लगे, और लोग-बाग नाक-भौं भी चढायें, समाज और सभ्यता की आड लेकर आवाजें कसें। उन्हें कौन बताये कि तुम्हारी खोखली सभ्यता की भाति प्रकाश की आत्मा भी खोखली है। अपने भीतर के भयानक शून्य को भरने के लिए वह प्यार का व्यापार करता है, तुम्हारे पास व्यापार नही, झूठी सभ्यता के झूठे आदर्श हैं। प्रकाश को रुपया खर्च करके भी इत्मीनान नही मिला। देश मे इत्मीनान था कहा? मुद्दत हुई ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारी उसे लूट ले गये। वह उसकी खोज मे लन्दन पहुचा। शायद वही खरा माल हाथ लगे और उसके भीतर का शून्य भर सके।

प्रकाश का यहां रहना अथवा विलायत चले जाना शीला के लिए एक समान था। उसने पति का कोई सुख नहीं देखा था, सारे अरमान दिल में रह गये थे। जायदाद के नष्ट होने का सदमा अलबत्ता हो सकता था; पर उसे यह भी नहीं था। क्या करना था जायदाद को लेकर? उसने जीवन देश-सेवा के लिए अर्पित कर दिया था। उसे अंग्रेज से भाई की मृत्यु का बदला लेना था। इस उद्देश्य से वह आतंकवादी दल की सदस्य बन गई थी। उसकी सरगर्मियों में बढ़-चढ़कर भाग लेती रही थी। जब दल के सदस्य गिरफ्तार हुए, वे सरगर्मियां बन्द हो गईं। वह गिरफ्तारी से इस-लिए बची रही कि वह औरत थी और जो लोग मुखबिर बने थे, वे उसके बारे में नहीं के बराबर जानते थे। वह बाहर रहकर साथियों की सहायता करने लगी। उनके मुकदमों के लिए वकीलों और चंदे के प्रबन्ध के अलावा उनके उद्देश्यों का प्रचार करती रही।…फिर सविनय अवज्ञा आन्दोलन चला, वह उसमें भाग लेकर गिरफ्तार हो गई। जितनी देर आन्दोलन चलता रहा वह जेल में रही और जब आन्दोलन बन्द हुआ, जेल जाने का काम न रहा तो वह एक मकान किराये पर लेकर रहने लगी और उसने लड़कियों के एक स्कूल में नौकरी कर ली।

उसकी एक छोटी बहन पद्मा थी। शीला के पिता को वह शहर से बाहर रास्ते में पड़ी मिली थी। उनके कथनानुसार वह उसे अनाथ समझ कर उठा लाये थे। एक औरत को उसे पालने के लिए दे दिया था। शीला कई बार पिता के साथ उस औरत के मकान पर गई थी। वह जवान थी और सुन्दरी। पद्मा को वह इतना प्यार करती थी कि सगी मां भी कम करती होगी। वह शहर के एक ऐसे मुहल्ले में रहती थी; जहां बहुधा गरीब लोग बसते थे, जिनके मकान तंग और अंधेरे थे। लेकिन उसकी रिहाइश दूसरे लोगों से भिन्न थी। बस्ती के सबसे अच्छे, खुले और सजे हुए मकान में रहती थी, उजले कपड़े पहनती थी और काम-काज के लिए नौकर भी रख छोड़ा था। घर पर शायद कोई मर्द नहीं था। औरत भी कोई नहीं थी। शीला जब कभी पिता के साथ गई, उसे अकेले ही देखा और पूछने पर भी कुछ मालूम नहीं हो सका। जब अकस्मात उसकी मृत्यु हुई

तो शीला का पिता पद्मा को घर पर ले आया। इस समय उसकी उम्र छ वर्ष थी। उसे बच्चो के एक रिहाइशी स्कूल में भर्ती करा दिया। जब तक बाप जीवित रहा, वह इसी स्कूल मे पढती रही। जब कभी वह घर आती, पिता उसे गोद मे बिठाकर प्यार करता और फिर सारा दिन उदास रहता। उसका मन दुखद स्मृतियों से भर जाता।

शीला इसका कारण यह समझती कि उसके पिता बडे ही दयालु और कोमल हृदय व्यक्ति हैं। लेकिन अपनी मृत्यु के समय उन्होने जो पत्र उसे दिया था उससे यह भेद खुला कि वह स्त्री ही दरअसल पद्मा की मा—और शीला के पिता की दूसरी पत्नी थी।

दुनियां मे शीला का अपना कहने को कोई नही था। एक पद्मा थी, जो बहन के एक सूक्ष्म और अदृश्य सूत्र से उसके साथ बधी हुई थी। इस सम्बन्ध को अब वह दृढ बनाना चाहती थी और उसने फैसला किया था कि मैट्रिक पास करने के बाद वह पद्मा को कालेज मे दाखिल करायेगी और अपने साथ घर मे रखेगी। कई बार ख्याल आता कि इस तरह अकेला रहने से तो अच्छा है वह बहन को अभी से घर ले आए। फिर जाने क्या सोचकर दूसरे ही क्षण उसका विचार बदल जाता था।

इन्ही दिनो विलायत से खबर आई कि उसका पति—प्यार का व्यापारी प्रकाश—नशे की तीव्रता के कारण लन्दन के एक होटल मे सदा की नींद सो चुका है। खबर पढकर शीला को जबरदस्त धक्का लगा, जैसे किसी ने शरीर को बिजली के तार से छू दिया हो, जैसे वह आघात से बेहोश हो जायेगी। इससे पहले प्रकाश के साथ अपने सम्बन्ध को उसने स्वीकार नही किया था। धर्म और समाज ने उन्हे जिस बधन मे बाधा था वह इतना बोदा था कि पहले ही दिन टूट गया था। उसे क्या मालूम कि मानव हृदय इतना सरल और अबोध होता है कि जब तक उसे झझोड-झझोड कर सजग न किया जाये, वह इन्ही बोदे और जर्जर बधनो मे बधा रहता है। शीला अपने आपको कितना ही क्रातिकारी समझती रही हो, उसका हृदय अभी तक परम्परागत बन्धनो मे जकडा हुआ था। वह एक हिन्दू नारी थी, जिसे बचपन ही से यह शिक्षा दी जाती है कि पति चाहे

कितना ही निठल्ला, नाकारा और पंगू क्यों न हो, उसे भगवान का रूप समझे और तन, मन, वचन से उसकी सेवा करे। लेकिन अब पति-पत्नी का यह सम्बन्ध अकस्मात टूट गया था। सुहागन विधवा वास्तव मे विधवा हो गई। अगरचे प्रकाश सात समुद्र पार मरा था; फिर भी शीला को अपना घर सूना-सूना दिखाई देता था। वह इस सूनेपन को सहन न कर सकी और पद्मा को दूसरे ही दिन छात्रालय से घर ले आई।

पद्मा ने मां से जो स्नेह पाया था, उसके दूध में प्रेम का मजा चखा था, वह उसे फिर कभी प्राप्त न हो सका। बाप भी प्यार करता था, लेकिन बाप के निकट रहने का उसे सौभाग्य ही प्राप्त न हुआ। मां के मरते ही उसे स्कूल में भर्ती करा दिया गया और वह घर से दूर रहने लगी। वह बड़ी अधीरता से छुट्टी का इन्तजार करती ताकि पिता की गोद में बैठकर उनके स्नेह का रस-स्वादन कर सके। वह भीच-भीचकर उसका आलिंगन करते थे। इस आलिंगन मे कितना प्यार—कितना स्नेह था। उनकी आखों में आंसू उमड आते थे। पद्मा को यह आंसू प्रायः स्मरण हो आते थे; उसके कल्पना-पट पर चमकने लगते थे। यह आसू कितने अच्छे थे! उनमे मानव-हृदय का स्नेह और आत्म-विषाद भरा रहता था।

स्कूल मे उसे वह चीज नही मिलती थी। सखियां थी, अध्यापिकायें थीं, हंसी खेल थे और कहकहे थे। लेकिन किसी की आंखों में वह स्नेह-सिक्त और विषादपूर्ण—आधी रोती और आधी हंसती स्निग्ध और अनूठी भावना नही देखी थी। स्कूल की अध्यापिकाओं और नौकरानियों में भली और सहृदय औरतें भी थी, जो कर्तव्य-पालन के अतिरिक्त सच-मुच प्यार भी करती थी, लेकिन इस प्यार में वह बात कहां जो मां के दूध और बाप के आंसुओं मे होती थी। उसकी सखियां थी, जिन्हें वह प्यार करती थी और एवज में उनसे भी प्यार पाती थी। वह उनके साथ पढ़ती, खेलती और भविष्य के स्वप्न देखती थी। इस प्रकार हंसती, खेलती और भविष्य के स्वप्न देखती वह जवान हुई। वह सुन्दर, समझदार और भावुक थी। सब कुछ होते हुए भी उसे किसी चीज की तलाश थी। अपने आस-पास में—स्कूल के वातावरण मे उसे वह चीज ढूंढे नही मिलती थी। कुछ

रिक्त-रिक्त सा जान पड़ता था। रिक्त की इस भावना ने उसके व्यक्तित्व मे ग्रहण सा लगा रखा था। उसका यौवन और उसका सौंदर्य विकसित होने और निखरने नही पाता था। वह बन्द कली थी, जिसे खिलने के लिये खुली हवा और रोशनी की जरूरत थी।

शीला उससे ग्यारह साल बड़ी थी। पद्मा को उसके व्यक्तित्व मे बहन और मा एक साथ दिखाई दी। जब वह प्यार भरी दृष्टि से उसकी ओर देखती तो पदमा को लगता कि उसकी आखों से आलोक की सूक्ष्म और सुखद किरणें छन-छनकर घर भर मे फैल रही हैं, उसकी अपनी आत्मा मे प्रवेश कर रही हैं। यह आलोक पाकर बन्द कली थोड़े ही दिनो मे खिल उठी, महकने लगी। पद्मा को रह-रहकर अफसोस होता था कि वह अब तक बहन के पास क्यो न रही। अजीब बात है कि आदमी खजानो का मालिक होकर भी कगाल कहलाये और भूखा रहे।

मकान खुला और साफ था। पद्मा इधर से उधर दौड़ती फिरती थी। इस घर की उसे हर चीज अच्छी लगती थी। शीला के कमरे मे सत्रह अठारह साल के नौजवान का एक चित्र टगा हुआ था, वह उसे देख कर बहुत प्रसन्न होती थी—देखती रहती थी। उसका रग रूप शीला से मिलता था—लम्बा चेहरा, मोटी मोटी सुन्दर आखें, पतले कोमल होंठो पर मुस्कराहट थी और अधखुले होंठ प्रतिक्षण अलग होते दीख पड़ते थे, जैसे अब खुले, अब कुछ कहा।

"दीदी! यह कौन है? मुझे बहुत प्यारा लगता है।"

पदमा ने तस्वीर के शीशे पर हाथ फेरते हुए शीला से पूछा।

"भाई।" शीला मुस्कराई।

"भाई!" पदमा ने उल्लास मे भरकर दोहराया। उसका अग-अग खिल उठा, जैसे इस शब्द मे जादू भरा हो, और उसके व्यक्तित्व के प्रत्येक प्रमाणु को जगा दिया हो। पद्मा ने चित्र को दीवार से उतार लिया उसे चूमा, छाती से लगाया। उन्मत्त-सी नाचने लगी—नाचती रही। उसे यो नाचते और खुश होते देखकर शीला चकित रह गई, सन्देह हुआ कि कहीं वह पागल न हो जाये। पागल न होते हुए भी उसकी हरकतें पागलो से कम

रही थी। जिस बहन ने ज़िंदगी में पहली बार 'भाई' शब्द सुना हो, और उसका मुस्कराता हुआ चेहरा देखा हो, वह अगर वाकई पागल न हो, उसकी प्रसन्नता पागलपन की सीमा तक जरूर पहुंच जाती है। पद्मा जब नाचते-नाचते थक गई, तो चित्र को एकटक देखने लगी। उसका दिल आंखों में आ बैठा था। चित्र उसे जीता-जागता और बोलता-सा जान पड़ता था।

"देखो दीदी ? भाई कुछ कह रहा है।" पद्मा ने होंठों की ओर संकेत किया।

"हां, कह रहा है।" शीला ने उत्तर दिया। वह भी पद्मा के उन्माद से प्रभावित हुए बिना न रह सकी। भाई के चेहरे पर आंखें गड़ाकर बोली—

"मालूम है तुम्हें, भाई क्या कह रहा है ?"

"क्या ?" पद्मा के मुंह से एकदम निकला और बहन के समीप खिंचकर बोली, "बताओ दीदी, क्या कह रहा है भाई ?"

"वह कह रहा है।" शीला बोली और चुप हो गई। उसका चेहरा यकबयक कठोर पड़ गया और आंखें दहकते हुए अंगारों की तरह चमकने लगीं। धीरे-धीरे मगर दृढ़ स्वर में वह फिर बोली—"भाई कह रहा है—अंग्रेज को हिन्दुस्तान से निकाल दो।"

उसके यह शब्द कमरे में गूंज उठे। फिज़ा में फैलकर हिन्दुस्तान भर में गूंज उठे।

दोनों बहनें बहुत देर तक चुपचाप खड़ी रहीं—एक दूसरे की ओर देखती रहीं। पद्मा सहम गई थी, जैसे भूचाल आया हो और धरती कांप उठी हो। उसने बहन का यह उग्र रूप पहली बार देखा था। यह रणचंडी का रूप था। उसकी आंखों से आग बरस रही थी, प्रतिकार की चिनगारियां निकल रही थीं, जो जुल्म और गुलामी को झुलस देना चाहती थीं। अगर यह रूप क्षण भर में लोप न हो जाता, तो पद्मा भय के मारे चीखती-चिल्लाती बाहर भाग जाती।

यह शीला के भाई सुरेन्द्र का चित्र था, जो जलियानवाला बाग में

डायर की गोली का निशाना बना था। पदमा के आग्रह पर शीला ने भाई की शहादत की कहानी उसे विस्तार से सुनाई और यह कहानी किसी एक भाई की नही सैंकडो हजारों भाइयो की कहानी थी। निहत्थी जनता पर तोड़े गये अंग्रेज के अत्याचार की कहानी थी। मार्शल्ला, कैद और फासियो की भयकरता के अतिरिक्त उसम शीला के बचपन का मिठास और भाई के प्रति बहन का स्नेह भी सम्मिलित था। शीला की उम्र उस समय नौ दस साल थी और उसने पिता की गोद मे बैठकर भोलापन मे प्रतिज्ञा की थी— "मैं भाई की मौत का बदला अंग्रेज से लूगी।' बेटी के यह शब्द सुनकर पिता का मन प्रसन्नता से भर गया था, और वह बेटी को देश भक्त बनाने के लिए सदा उसे प्रोत्साहन देते रहे थे।

शीला के अतीत की कहानी पदमा को अपने अतीत की कहानी महसूस होती थी। काश इस कहानी का अन्त न हो, शीला कहती और वह सुनती रहे। उसके मन मे एक फांस अटकी हुई थी, जो यह कहानी पूरी सुनकर ही निकल सकती थी। बचपन, लडकपन और समूचे अतीत पर जो एक गहरा आवरण पडा हुआ था, वह उसके भीतर झाक लेना चाहती थी ताकि अपने आपको समझ ले, शीला को समझ ले और उनके बीच कोई बात अनबूझी न रह जाये।

लेकिन उस दिन यह कहानी अधिक आगे न बढ सकी। भाई और पिता की बातें करते करते, शीला का मन द्रवित हो उठा और वह नींद का बहाना करके चुप हो गई। जो कुछ सुन लिया था, वह भी कुछ कम नही था। पद्मा इत्मीनान से सो गई। रातभर बचपन के मधुर स्वप्न देखती रही। मा उस छाती से लगाये लोरी दे रही है। इतने में पिता और शीला आ जाते हैं। पिता ने मुस्कराते हुए उसे गोद मे उठा लिया है। उधर शीला मचल रही है बाहे फैलाकर हठ कर रही है— पिता जी बहन को मुझे दो। मैं उसे प्यार करूगी, उसके साथ खेलूगी।

जब वह सोकर उठी तो एक सुखद आभास आत्मा मे मचल रहा था, आखों म उल्लास भरा था। ऐसा मीठा स्वप्न उसने पहले कभी नही देखा

था। उसे अपना जीवन उस नदी के सदृश जान पड़ता था, जिसका मूल स्रोत बन्द हो गया हो, वह महज इधर-उधर से आकर मिलने वाले छोटे-छोटे नदी-नालों और परनालों के बल पर आगे बढ़ रही हो। आज वह मूल स्रोत सहसा फिर से खुल गया था। नदी में बाढ़ आई थी, वह कगारों को छूती, फर्राटे भरती और तरंगें उठाती आगे बढ़ रही थी।

अब यह नियम बन गया कि सोने से पहले दोनों बहनें रात गये तक बातें करतीं। पद्मा अपने स्कूल, सखियों और अध्यापिकाओं की बातें सुनाती और शीला से अतीत की कहानी सुनती। उसे साधारण बात भी असाधारण और रुचिकर लगती। जहां उसकी तसल्ली न होती, वह झट बहन को टोकती और कुरेद-कुरेद कर पूछती। शीला उसकी यह तत्परता और उत्सुकता देखकर दंग रह जाती। वह बहन का मुंह ताकने लगती। आखिर इसका कारण भी समझ में आ गया।

पद्मा को बचपन ही में अतीत से काट कर अलग फेंक दिया गया था। पराई भूमि में उसकी आत्मा भली प्रकार पनप न पाई। तभी अतीत के प्रति उसके मन में वह स्वाभाविक जिज्ञासा और वह उत्सुकता थी, जो प्रत्येक मनुष्य के मन में सृष्टि के आरम्भ और उसकी उत्पत्ति को समझ लेने के लिए होती है। जब तक वह इस रहस्य को—अपने अतीत को न समझ ले, उसे अपने भविष्य पर भरोसा नहीं होता।

लेकिन पद्मा जितना अतीत को समझने का प्रयत्न कर रही थी, उतना ही वह पहेली बनता जा रहा था। शीला के साथ रहते-रहते और उसकी बातें सुनते-सुनते, हफ्ते, महीने और साल गुजर गया, फिर भी यह पहेली अबूझी ही रही। वह समझ नहीं सकी कि उसकी मां और वह, शीला और बाप से अलग क्यों रहती थीं ? शीला ने अतीत की जो कहानी सुनाई थी, पद्मा को अपना जीवन उसकी एक स्वाभाविक कड़ी मालूम नहीं होता था। बीच में एक उपप्रसंग-सा आ जाता था, जैसे एक क्रमबद्ध जंजीर में दूसरी छोटी जंजीर लाकर कहीं बीच में जोड़ दी गई हो। इस दूसरी जंजीर का आरम्भ क्या था ? वह पहली जंजीर में कैसे आ मिली ? ये ऐसे प्रश्न थे, जिनका उत्तर बार-बार पूछने पर भी नहीं मिलता था।

अधिक कुरेदने पर घोला की मुखमुद्रा गभीर हो जाती और आखो मे विपाद उमड आता, जैसे किसी घाव को कुरेद दिया हो और पीडा सहन न हो रही हो। बहन को यो दुखी देखकर पद्मा ने पूछना ही छोड दिया। मगर उसके मन मे जो कुरेद थी, वह न मिटी। फास अटकी ही रही।

: 6 :

कुठाली

पद्मा ने जिन दिनों कालेज में पढ़ना शुरू किया, नौजवान प्रगतिशील विचारधारा की ओर आकर्षित हो रहे थे। विद्यार्थी प्रायः किसानों और मजदूरों की बातें करते थे और पत्र-पत्रिकाओं में उनके बारे में कहानियां और कवितायें पढ़ते थे। पद्मा के तो घर का वातावरण भी इन्ही विचारों से ओत-प्रोत था। वह जाने-अजाने इस नये वातावरण की नई आत्मा को ग्रहण कर रही थी। उसकी आंखों में चंचलता और मुख पर माधुर्य की झलक थी। लगता कि इस बन्द कली को खुली हवा और रोशनी दरकार थी, वह उसे मिल गई है, और वह स्वाभाविक रूप से विकसित होने लगी है। वह दिन-दिन सुन्दर और आकर्षक होती जा रही है, उसके अंग-अंग से यौवन फूट रहा है, मचल रहा है।

अशोक और उसके साथी इन्ही दिनों जेलों से छूटकर आये थे। उन्होंने जहां मजदूर यूनियनें और किसान सभायें बनाई थी, विद्यार्थियों को भी अपने ढंग से संगठित करना शुरू किया था। उस समय विद्यार्थी संघ में इखलाक, राजेन्द्र और पद्मा पेश पेश थे। अशोक ने उन्हें और कुछ दूसरे लोगों को जीवन और इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टिकोण समझाने की व्यवस्था की। शीला के मकान पर स्टडी-सर्किल शुरू हुए।

शीला आतंकवादी दल की सदस्य थी और अब भी उन्ही के साथ मिलकर काम करने को तैयार थी। लेकिन उनकी बातें वह पकड़ न पाती सुनती और चकित रह जाती। जब वह जेल से छूटकर आई, दूसरा

असहयोग आंदोलन बन्द हो चुका था और लीडर अपने अपने कारोबार मे लग गये थे। शीला की कुछ समझ मे नही आता था। वह उखड़ी उखड़ी और उदास उदास रहती थी। उसे अशोक और दूसरे साथियोका ध्यान आता। जगदीश से मालूम हुआ कि अशोक बहुत बदल गया है और उसके साथी भी बदल गये हैं। यह सुनकर उसके मनमे अशोकको देखने और खुद बदलने की आकाक्षा उत्पन्न होती थी। अब देखा तो यह भी मालूम हुआ कि तब्दील होना सहज नही कठिन है। अशोक और दूसरे साथियों ने बरसो के विस्तृत अध्ययन, मनन और साधना द्वारा जो कुछ प्राप्त किया है, उसे समझना और स्वीकार करना सहज नही है। बदलने मे —अपने आपको पुन जानने मे वह पीडा सहन करनी होती है, जो मा को बच्चा जनने मे करनी पड़ती है। यह पीडा दुखकर भी है और सुखकर भी।

स्टडी सर्किल के विषय थे—सृष्टि की उत्पत्ति, जीवन-विकास, इतिहास का भौतिकवादी दृष्टिकोण, मानव-समाज के विभिन्न युग, फासिस्टवाद, राष्ट्रवाद और गांधीवाद आदि। शीला के लिए ये बातें इसलिए कठिन और दुरूह नही थी कि उनमे एक नया दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया था, बल्कि इसलिए कठिन जान पडती थी कि वे उसके उस परम्परागत विश्वास से टकराती थीं, जो युग-युग से विरासत मे मिला था। इखलाक कैमिस्टरी और बाईलोजी का विद्यार्थी था, उसके मस्तिष्क ने भौतिक दृष्टिकोण को अजाने ही मे अपना लिया था, अब उसे चैतन्य रूप से ज्ञान होने लगा तो वह चौंक उठा, जैसे कोई आवरण, कोई जाला हट गया हो। अद्भुत और अलौकिक आनन्द अनुभव होने लगा। पद्मा और राजेन्द्र का मानसिक विकास ही एकदम नये वातावरण मे हुआ था। रूढिवाद का उन पर अधिक प्रभाव नही था। वे नए विचारो को सहज मे आत्मसात कर सकते थे, और कर रहे थे।

कठिनाई थी तो शीला के लिए। उसके आतकवादी साथी वैज्ञानिक ढग से सोचने लगे थे, मगर उसकी अपनी विचारधारा भावुकता के भवर मे चक्कर काट रही थी। भावुकता उसके मन और मस्तिष्क पर आच्छादित थी। उसने धार्मिक वातावरण मे परवरिश पाई थी। वह आत्मा के

अमरत्व और आवागमन के सिद्धांत में विश्वास रखती थी। उसका वर्तमान जीवन भूत और भविष्य के अनन्त जीवनों का एक अंश, एक क्षण मात्र था। वह फिर इसी जीवन—इसी अंश मात्र पर ही क्यों सन्तुष्ट हो ? आत्मा के अमरत्व को भौतिकवादी दृष्टिकोण पर क्यों बलिदान कर दे ?

स्टडी-सर्किल के अतिरिक्त इस विषय पर अशोक और शीला में आपस की बातचीत भी होती थी, जिसमें ऐसी उलझनें आ पड़ती थीं, जिन्हें सुलझाते घंटों बीत जाते थे। रिहाई के दूसरे ही दिन अशोक जब शीला से मिलने आया, तो बातों-बातों में प्रकाश का जिक्र आ गया। शीला ने विषादपूर्ण स्वर में अत्यन्त गम्भीरता से कहा—

"मैंने उन्हें अपने जीवन में कभी कोई स्थान नहीं दिया। लेकिन अब ऐसा लगता है जैसे कुछ छिन गया हो। सोचने लगती हूं तो महसूस होता है कि यह पिछले जन्म का कोई बन्धन था, जो न मानने पर भी बहुत दृढ़ था।"

अशोक मुस्करा दिया। कहने को उसने कुछ नहीं कहा; लेकिन उसकी मुस्कराहट में—और उसकी आंखों में उपहास और व्यंग्य स्पष्ट था। शीला ने उसका यह नया रूप पहली बार देखा था। यह व्यंग्य—यह उपहास उसकी रूह में उतर गया और उसकी मनोगत भावनाओं को झकझोरने लगा। मगर वह बहस का समय नहीं था। बरसों के बाद जो मुलाकात होती है, उसमें समस्यायें सुलझती नहीं, उत्पन्न होती हैं।

इसके उपरान्त जब विभिन्न विषयों पर विचार शुरू हुआ, तो शीला के मस्तिष्क में सबसे ऊपर यही प्रश्न था। एक दिन जब उसमें और अशोक में वार्ता हो रही थी; शीला ने पूछा—

"तुम्हारे भौतिकवादी दृष्टिकोण को मान लेने का मतलब तो यह है कि हमें सिर्फ एक ही जीवन मिलता है ?"

"निस्संदेह।" अशोक ने उत्तर दिया, "जब हम आत्मा और उसके अमरत्व में विश्वास नहीं रखते तो पुनर्जन्म का सवाल ही पैदा नहीं होता।"

"इससे तो बड़ी गड़बड़ फैलेगी। जीवन में किसी प्रकार का नियम और संयम नहीं रह जाएगा।" शीला ने आपत्ति की, "मान लीजिए कि प्रत्येक मनुष्य को बता दिया जाता है कि उसके जीवन का यहीं अन्त हो जायगा तो उसे बुरे कर्मों के दंड का भय न रहेगा। वह जान-बूझकर पाप करेगा और अनाचार फैलेगा।"

"पाप और पुण्य का यह सिद्धान्त ही गलत है।" अशोक ने कुर्सी से टेक लगाकर गम्भीरता से कहना शुरू किया, "तुम जानती हो कि हमारे शास्त्रों में भी सत् युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का धर्म अलग-अलग बताया गया है। फिर तुम्हें वह कहानी याद होगी, जिसमें विश्वामित्र ने कुत्ते को दुत्कार कर उसकी जूठी हड्डी का मांस खाया था, लेकिन यह कहकर कि इसके बिना अभी काम चल सकता है। चंडाल के मटके का जल पीने से इन्कार कर दिया था। इसका मतलब यह है कि हमारी नीति, पाप और पुण्य हमारी भौतिक आवश्यकताओं से निर्धारित होते हैं। इतिहास के विकास को देखिये, जैसे-जैसे आर्थिक साधन बदले हैं, मनुष्यों के आर्थिक सम्बन्ध भी बदले हैं और उनके आचार-व्यवहार भी बदले हैं......"

अशोक कह रहा था और शीला ध्यान से सुन रही थी और उसकी शांत मुख-मुद्रा और होठों की हरकत को एकटक देख रही थी। जब वह अपनी बात कह चुका, तब भी देखती ही रही, जैसे उसके होंठ बदस्तूर हिल रहे हों, युग-संघर्ष की बात कहे जा रहे हों। थोड़ी देर पहले अशोक ने उसे बताया था कि पदार्थ (Matter) गतिमान है, पदार्थ सोचता है और मस्तिष्क पदार्थ ही का उन्नत रूप है। शीला को लगा कि अशोक का समस्त शरीर पदार्थ का उन्नत रूप है उसका अंग-अंग सोच रहा है। वह वाकई बदल गया है। शीला इस बदले हुए अशोक की थाह लेना चाहती थी। इसलिए बार-बार सवाल करती, कुरेद-कुरेद कर पूछती —कुछ समझने के लिए और कुछ स्पष्टीकरण के लिए। लेकिन इस समय कुछ नहीं पूछा। अशोक ने बहुत कुछ कह दिया था। वह सोच रही थी, आत्म-चिन्तन कर रही थी।

अमरत्व और आवागमन के सिद्धांत में विश्वास रखती थी। उसका वर्तमान जीवन भूत और भविष्य के अनन्त जीवनों का एक अंश, एक क्षण मात्र था। वह फिर इसी जीवन—इसी अंश मात्र पर ही क्यों सन्तुष्ट हो ? आत्मा के अमरत्व को भौतिकवादी दृष्टिकोण पर क्यों बलिदान कर दे ?

स्टडी-सर्किल के अतिरिक्त इस विषय पर अशोक और शीला में आपस की बातचीत भी होती थी, जिसमें ऐसी उलझनें आ पड़ती थीं, जिन्हें सुलझाते घंटों बीत जाते थे। रिहाई के दूसरे ही दिन अशोक जब शीला से मिलने आया, तो बातों-बातों में प्रकाश का जिक्र आ गया। शीला ने विषादपूर्ण स्वर में अत्यन्त गम्भीरता से कहा—

"मैंने उन्हें अपने जीवन में कभी कोई स्थान नहीं दिया। लेकिन अब ऐसा लगता है जैसे कुछ छिन गया हो। सोचने लगती हूं तो महसूस होता है कि यह पिछले जन्म का कोई बन्धन था, जो न मानने पर भी बहुत दृढ़ था।"

अशोक मुस्करा दिया। कहने को उसने कुछ नहीं कहा; लेकिन उसकी मुस्कराहट में—और उसकी आंखों में उपहास और व्यंग्य स्पष्ट था। शीला ने उसका यह नया रूप पहली बार देखा था। यह व्यंग्य—यह उपहास उसकी रूह में उतर गया और उसकी मनोगत भावनाओं को झकझोरने लगा। मगर वह बहस का समय नहीं था। बरसों के बाद जो मुलाकात होती है, उसमें समस्यायें सुलझती नहीं, उत्पन्न होती हैं।

इसके उपरान्त जब विभिन्न विषयों पर विचार शुरू हुआ, तो शीला के मस्तिष्क में सबसे ऊपर यही प्रश्न था। एक दिन जब उसमें और अशोक में वार्ता हो रही थी; शीला ने पूछा—

"तुम्हारे भौतिकवादी दृष्टिकोण को मान लेने का मतलब तो यह है कि हमें सिर्फ एक ही जीवन मिलता है ?"

"निस्संदेह।" अशोक ने उत्तर दिया, "जब हम आत्मा और उसके अमरत्व में विश्वास नहीं रखते तो पुनर्जन्म का सवाल ही पैदा नहीं होता।"

"इससे तो बडी गडबड फैलेगी। जीवन मे किसी प्रकार का नियम और सयम नही रह जाएगा।" शीला ने आपत्ति की, "मान लीजिए कि प्रत्येक मनुष्य को बता दिया जाता है कि उसके जीवन का यही अन्त हो जायगा तो उसे बुरे कर्मों के दड का भय न रहेगा। वह जान-बूझकर पाप करेगा और अनाचार फैलेगा।"

"पाप और पुण्य का यह सिद्धान्त ही गलत है।" अशोक ने कुर्सी से टेक लगाकर गम्भीरता से कहना शुरू किया, 'तुम जानती हो कि हमारे शास्त्रों मे भी सत् युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का धर्म अलग अलग बताया गया है। फिर तुम्हे वह कहानी याद होगी, जिसमे विश्वामित्र ने कुत्ते को दुत्कार कर उसकी जूठी हड्डी का मांस खाया था, लेकिन यह कहकर कि इसके बिना अभी काम चल सकता है। चडाल के मटके का जल पीने से इन्कार कर दिया था। इसका मतलब यह है कि हमारी नीति, पाप और पुण्य हमारी भौतिक आवश्यकताओ से निर्धारित होते हैं। इतिहास के विकास को देखिये, जैसे जैसे आर्थिक साधन बदले हैं, मनुष्यो के आर्थिक सम्बन्ध भी बदले है और उनके आचार व्यवहार भी बदले हैं "

अशोक कह रहा था और शीला ध्यान से सुन रही थी और उसकी शात मुख मुद्रा और होठो की हरकत को एकटक देख रही थी। जब वह अपनी बात कह चुका तब भी देखती ही रही, जैसे उसके होठ बदस्तूर हिल रहे हो, युग सघर्ष की बात कहे जा रहे हों। थोडी देर पहले अशोक ने उसे बताया था कि पदार्थ (Matter) गतिमान है, पदार्थ सोचता है और मस्तिष्क पदार्थ ही का उन्नत रूप है। शीला को लगा कि अशोक का समस्त शरीर पदार्थ का उन्नत रूप है उसका अग अग सोच रहा है। वह वाकई बदल गया है। शीला इस बदले हुए अशोक की थाह लेना चाहती थी। इसलिए बार बार सवाल करती, कुरेद कुरेद कर पूछती —कुछ समझने के लिए और कुछ स्पष्टीकरण के लिए। लेकिन इस समय कुछ नही पूछा। अशोक ने बहुत कुछ कह दिया था। वह सोच रही थी, आत्म-चिंतन कर रही थी।

"अब हमारे अपने ही समय की बात लीजिए" अशोक ने तनिक रुककर फिर कहा, "चोरी करना पाप और जुर्म है। दान देना धर्म और पुण्य है। लेकिन चोरी लोग क्यों करते हैं?"

"लेकिन" शीला बोली, "पहले भी तो लोगों ने आत्मा और परमात्मा को नही माना। हिन्दू फलासफी के छः दर्शनों में कणाद ने अपने दर्शन की बुनियाद पदार्थ पर रखी है। उनके विचार क्यों नही फैल सके।"

"यह दुरुस्त है कि प्राचीन युग में भी बहुत से दार्शनिकों ने अपने विचारों की भीत्ति पदार्थ पर रखी है। लेकिन उनके नजदीक आत्मा और परमात्मा की तरह भौतिकवादी सिद्धांत का एक विश्वास मात्र था। उसके पीछे विज्ञान और अनुभव की शक्ति नही थी। उन्होने पदार्थ को गतिशून्य निष्प्राण इकाई समझा था। उसके भीतर सकारात्मक और नकारात्मक—विरोधी शक्तियों का जो संघर्ष—जो गति है, उसे वे नही जान पाये थे। इसमे उनका कोई दोष नही। मनुष्य उस समय साधनहीन था। इतना ज्ञान और इतनी बुद्धि उत्पन्न नही हुई थी। उसे पृथ्वी को समझना था, आकाश को समझना था, विश्व-गति, विभिन्न पदार्थों और मंडलों के परस्पर आकर्षण को समझना था। प्रकृति के विभिन्न रूपों और दृश्यों के बारे में उसके मन मे जो प्रश्न —जो शंकायें उत्पन्न होती थी, भौतिकवादी दर्शन उनका उत्तर देने मे असमर्थ था। लेकिन अब जब कि मनुष्य ने धरती और आकाश छान मारे हैं, सूरज, चांद, तारों के आकार, सम्बन्ध और प्रक्रिया को समझ लिया है, वह क्यो भ्रम में पड़ा रहे? क्यो धर्मशास्त्रों में उनका उत्तर ढूंढे? सत्य को कल्पना पर कैसे वलिदान कर दे? वह अब कर्म और प्रारब्ध के सिद्धांत पर सन्तुष्ट नही रह सकता। स्वर्ग की सुन्दर कल्पना उसे नही वहला सकती। यह विज्ञान और मशीन का युग है। वह जानता है कि मशीन और विज्ञान के अधिक प्रयोग से और उत्पादन के उचित वितरण से इसी दुनियां को स्वर्ग बनाया जा सकता है। गरीबी के अन्त का नाम ही स्वर्ग है। जहां गरीबी नही; वहा पाप का भय भी नही।" अशोक सानन्द मुस्कराया और एक क्षण रुककर फिर बोला,

"मनुष्य अब भय और भ्रम को मिटाकर स्वच्छन्दता और समृद्धि की ओर बढ़ रहा है।

स्वच्छन्दता और समृद्धि मनुष्य की चिर-आकांक्षा है। अगर अशोक के सिद्धांत का भी यह उद्देश्य था तो शीला को क्या आपत्ति हो सकती थी। लेकिन सिद्धांत एक बात है और उसकी पृष्ठभूमि और समूचे दर्शन को समझना दूसरी बात। अशोक यह दूसरी बात ही शीला को आत्मसात् कराना चाहता था। ताकि इधर उधर भटकने की सम्भावना न रहे, सब भ्रम-भ्रांतियां मिट जायें।

वह फिर बोला—'शीला, तुम कहोगी कि सब धर्म यही चाहते हैं। वेदमन्त्रों में मनुष्य ने समृद्धि और स्वाधीनता की कामना की है। इसलाम बराबरी का हामी है और ईसा का जन्म ही गरीबों के लिये हुआ था। पर हम देखते हैं कि सदियों के प्रयत्न और प्रचार के बावजूद मनुष्य का यह स्वप्न, स्वप्न ही बना रहा। धर्म ने दया और दान की प्रथा डाली। पर धनियों की दया और दान से निर्धन जनता न तो समृद्ध हुई और न स्वच्छंद। जबतक पुनर्जन्म की लालसा, स्वर्ग का लोभ और नरक का भय मस्तिष्क से चिपटा रहेगा, मनुष्य का स्वाधीन और स्वछन्द होना संभव नहीं है। वह इसी तरह भ्रमों और दावाओं में पड़ा रहेगा। हमारा वर्तमान समाज, जो इन भ्रमों और दावाओं से भरी हुई खोखली संस्कृति की रक्षा करता है, नितान्त खोखला है और अपने इस खोखलेपन के कारण क्षण-क्षण मिट रहा है।"

अशोक के ये शब्द—'हमारा वर्तमान समाज खोखला है और क्षण क्षण मिट रहा है।' शीला के भीतर गूंज उठे। उसका लालन-पालन समृद्ध मध्यवर्ग में हुआ था। उसके पिता दीवान आत्माराम सफल वकील थे और एक धार्मिक संस्था के सचालक। वे उन्नत और उदार विचारों के व्यक्ति थे। वे सामाजिक नियमों और धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करते थे और दूसरों को उनके पालन की शिक्षा देते थे। वे धार्मिक मंच से कई बार कह चुके थे कि विवाह का उद्देश्य सतान-उत्पत्ति है। अगर पहली ही पत्नी से सतान उत्पत्ति का उद्देश्य पूरा हो जाय तो पत्नी की मृत्यु के

पश्चात् दूसरा विवाह किसी तरह भी उचित नही है। यह एक धर्म-विरुद्ध आचरण है। जब उनकी पत्नी का देहान्त हुआ तो उनके दो संतानें थीं—शीला और उसका भाई सुरेन्द्र। इसलिए उन्होंने दूसरा ब्याह नही किया। लेकिन पद्मा की मां से अपने अवैध सम्बन्ध की यह बात मृत्यु-शैया पर खुद उन्होने शीला को बताई थी। शीला के पास उनका जो पत्र अमानत पड़ा था, उसमें भी वर्तमान समाज को खोखला बता कर उसके रीति-रिवाज को बदल देने की कामना व्यक्त की गई थी।

शीला का ससुर भगवानदास उदात्त चरित्र का व्यक्ति था। समाज की विडम्बना से वह भी ऊपर न उठ सका। ब्याह के दूसरे ही दिन शीला ने प्रकाश की शठता भरी निपुंसकता की शिकायत करते हुए खत में लिखा था कि ऐसे बेटे का उन्होंने ब्याह ही क्यों किया? बेटे के ये दोष मेरे पिता को क्यों नही बताये? क्या आप एक स्त्री—एक कन्या का कोई महत्व ही नहीं समझते? क्या ईमानदारी का यही तकाजा है? आप अंग्रेज से जिस आजादी की मांग कर रहे हैं क्या उसकी बुनियाद इसी अन्याय और इसी विडम्बना पर रखी जायेगी? अन्त में प्रार्थना की थी कि देश के नेता के नाते मैं आपका आदर करती हूं और न्याय के नाम पर बड़े ही विनीत भाव से सम्बन्ध-विच्छेद की आज्ञा चाहती हूं।

खत पढ़कर भगवानदास का चेहरा उतर गया और उसने शीला से कहा—"बेटी, लोग क्या कहेंगे?" लोगों के कहने की इतनी चिन्ता? झूठा मान, झूठा भय। देश के नेता के—इतने बड़े नेता के दृष्टिकोण में इतनी संकीर्णता क्यों? खोखला समाज, खोखली संस्कृति और गुलामी को जन्म देता है।

जीवन की सारी कहानी क्षणभर के लिए साकार हो उठी। यह कहानी सचमुच जर्जर समाज के टूटने की कहानी थी।

शीला के भीतर एक टीस, एक वेदना उठी। उसे अपने मन पर किसी चोट का अनुभव हुआ। अशोक की उपस्थिति में जब कभी प्रकाश का ध्यान आता तो यही टीस, यही पीड़ा अनुभव होती। काश! प्रकाश उसके जीवन में आया ही न होता। वह सिर्फ अशोक को देखती! अशोक जो

इतना बहादुर, सच्चा और समझदार था, जिसके हृदय में देश-प्रेम और आजादी की तड़प थी। शीला को उसके साथ काम करके प्रसन्नता प्राप्त होती थी। वह उसके साथ निर्भय और निस्संकोच आजादी की मंजिल की ओर बढ़ रही थी। उसने अपने इस साथी को कई बार प्रेम की दृष्टि से देखा था और मन-ही-मन कामना की थी कि अशोक प्रकाश होता अथवा प्रकाश अशोक होता। एक निकम्मा, व्यर्थ और डरपोक व्यक्ति उनके बीच क्यों आ गया? क्यों बनी यह दीवार? पूर्व जन्म का सबक समझकर शीला अपने मन को सात्वना दे लेती थी। अशोक अब नये रूप में सामने आया तो उसका आकर्षण और भी बढ़ गया। प्रकाश अब इस दुनिया में नहीं था और अशोक क्षण-क्षण समीप आ रहा था, उसके मन में उतरता जा रहा था। लेकिन प्रकाश के साथ शीला का अदृश्य सम्बन्ध अब भी स्थापित था। वह सम्बन्ध उसे आगे बढ़ने से रोकता रहा और अब भी रोक रहा था। पूर्व जन्म का विचार ही इस सम्बन्ध का आधार था। अशोक का भौतिकवादी दर्शन इस आधार पर आघात कर रहा था, इसे कच्चे धागे की तरह चुटकी में लेकर तोड़ देना चाहता था; लेकिन शीला उसे टूटते देखना नहीं चाहती थी। जवानी की उमगें जिस आदर्श पर भेंट चढ़ा दीं, अब ढलती उम्र में उसे क्योंकर त्याग दे?

गिरफ्तारी से पहले अशोक ने एक बात कही थी, उसका सहारा लेकर बोली—

"जब बैंक लूटने गये थे, तो तुम्हीं ने कहा था कि जिन्दा बच आया तो बेहतर, वरना दूसरे जन्म में फिर देश की आजादी के लिए लड़ूंगा। क्या यह खयाल हमें बहादुर नहीं बनाता? जब आत्मा अमर है तो मृत्यु का भय कैसा?"

"नहीं शीला! यह विचार बहुत छोटा है। जिस समय अर्जुन को यह सीख दी गई थी, उस समय इतना ही बहुत था। अब तो इसका परिणाम हम यह देखते हैं कि लोग गुलामी को महसूस ही नहीं करते। अगला जन्म सुधारने की *अभिलाषा में, भीरु और निकम्मे बने हुए हैं।* इससे अगर कभी वीरता का भाव उत्पन्न भी हुआ तो हमारे इस संघर्ष के लिए काफी

नहीं। इस युग का मानव स्वर्ग, नरक और प्रारब्ध के विचार से ऊपर उठ चुका है। उसका संघर्ष बदल गया है। इसके लिए बड़ा विचार चाहिए।

बड़ा विचार अशोक की आंखों से व्यक्त हो रहा था। शीला प्रश्न-चिह्न बनी बैठी थी। पूछना चाहती थी कि यह बड़ा विचार क्या है?

"आत्मा के इस सिद्धान्त ने हमें व्यक्तिवादी और अहंवादी बना दिया है। अहंवाद और व्यक्तिवाद सामंतवाद और पूंजीवाद का दर्शन है। इस नये युग में मार्क्सवाद ने हमें नया महान विचार दिया है। लेनिन ने कहा है—जीवन मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ पूंजी है और यह उसे एक बार—सिर्फ एक बार मिलती है। संसार में वह अपना जीवन इस प्रकार बिताये कि मरते समय उसके मन में यह अरमान न रह जाये कि मैंने यह पूंजी व्यर्थ में खो दी।"

"लेकिन अशोक! इससे तो बात नहीं बनती।" शीला बोली, "जब हमें एक ही बार जीना है तो जिस तरह भी हो सके दिन बिता लो। जब पुण्य-पाप कुछ नहीं है और अगले जन्म में उनका फल और दंड भी नहीं है तो मनुष्य निकम्मा ही बनेगा, अच्छा नहीं। इसके मुकाबला में तो हमारा दर्शन कहीं श्रेष्ठ है।"

"हमारे दर्शन की श्रेष्ठता तो सदियों की गुलामी से सिद्ध है।" अशोक तनिक मुस्कराया और फिर गम्भीर स्वर में बोला—"भ्रम सत्य से श्रेष्ठ नहीं हो सकता। जब हम जानते हैं कि परिवर्तन संसार का अटल नियम है तो हम अमरत्व की कामना क्यों करें। दरअसल इस विचार की तह में मृत्यु का भय निहित है। लेकिन मनुष्य मरता जरूर है। परिवर्तन के नियम से कोई बच नहीं सकता। जिन्दगी हमें सिर्फ एक बार मिलती है और हम इस जिन्दगी में जितना काम कर सकें उतना ही थोड़ा है। आदमी मर जाता है; पर उसका काम उसके बाद भी जीवित रहता है।" अशोक का स्वर स्पष्ट था और वह पहले से अधिक गम्भीर हो गया था। शीला ने उसकी आंखों में झांककर देखा तो उसे लगा जैसे वह यथार्थ के, ध्रुव सत्य के दर्शन कर रही हो। हम अपना काम और विचार ही आने वाली पीढ़ियों के लिए विरासत में छोड़ जाते हैं। यही जीवन का अमरत्व है। हमारे बाद हमारी

आने वाली पीढियां हमारे अधूरे काम को आगे बढाती हैं और अपने से आगे आने वाली पीढियों के लिए विरासत छोड जाती हैं। यों देखा जाये तो जीवन एक नदी है, जो सतत बहती रही है और बहती रहेगी।"

अशोक की आखो मे तरगें उठ रही थी। शीला ने चिरकाल से अपने भीतर जो गम सभाल रखा था, इन तरगों से वह जैसे घुल-सा गया। उसका ससुर बेटे की सतान देखने की हसरत मन मे लिए मर गया। शीला इसके लिए अपने आपको दोषी समझ बैठी थी। आज इस दोष से छुटकारा मिला और मन पर से बोझ-सा हट गया। 'काम जिन्दा रहता है, काम ही हम आने वाली पीढ़ियो को विरासत मे छोड जाते हैं। यही जीवन का अमरत्व है।' वह सोच रही थी और अपने अन्दर विशालता और महानता का अनुभव कर रही थी। उसे एक भ्रम से—सदियों पुराने भ्रम से छुटकारा मिला था।

"अशोक!" उसने पूछा, "एक बात समझ मे नही आती। मनुष्य पहले भी तो अपने इर्द-गिर्द की दुनिया को बदलते देखता था, फिर उसके मन में आत्मा के अमरत्व का विचार कैसे उत्पन्न हुआ?"

अशोक प्रश्न के अनूठेपन पर चौंक उठा और आंखो मे उल्लास भर कर बोला—

"मैंने भी इस प्रश्न पर बहुत सोचा है और अन्त मे इस निष्कर्ष पर पहुचा हू। वेद-मन्त्रो से पता चलता है कि हमारे पूर्वज चाद, सूरज और तारो की पूजा करते थे और गायत्री मन्त्र इस बात का प्रमाण है कि वह सूरज और दूसरे नक्षत्रो को अक्षय और अमर मानते थे। सम्भव है कि इसी बात से उनके मस्तिष्क में आत्मा के अमरत्व का विचार उत्पन्न हुआ हो।"

बात शीला के मन को लगी। उसने अशोक की आखों मे झाककर देखा और लगा कि अशोक नये फलस्फे का अन्धा पुजारी नही है, उसे अतीत का भी ज्ञान है, वह दर्शन की नई पुरानी मान्यताओ पर विद्वता और गम्भीरता से विचार करता है, उसकी आत्मा मे अतीत और वर्तमान का अनुपम सगम हुआ है, उसमे सदियो के विकास और प्रगति का रहस्य

ओत-प्रोत है।

"लेकिन शीला!" अशोक फिर बोला,"हम जानते हैं कि चांद, सूरज और सितारे भी क्षण-क्षण तब्दील हो रहे हैं। हमारा यह दिन सदा बढ़ता जा रहा है, जैसे आज 29 जुलाई सन् 1936 है, 29 जुलाई सन् 1937 का दिन इससे तनिक—अर्थात् सेकण्ड का सवा हजारवां अंश--बड़ा होगा। इस प्रकार दिन बढ़ रहा है, रात घट रही है। आखिर रात का अंत हो जायेगा। दिन! दिन! सिर्फ दिन ही रह जायेगा। शीला हम अंधेरे से उजाले की ओर बढ़ रहे हैं।"

अशोक मुस्कराते हुए उठ खड़ा हुआ। उज्ज्वल भविष्य उसकी आंखों में चमक रहा था।

7

धुआं

गनी जब जेल से बाहर आता तो प्यालियां और चैनकी अलमारी से निकालकर साफ करता और ट्रे मे सजाता। जब तक सेट पूरा न हो, उसे चाय पीने म तनिक भी आनन्द नही आता और चाय पीना एक ऐसा नियम था, जिसमे कभी नागा न होता था। जेब मे पैसे होते तो मक्खन और टोस्ट भी आते, वरना चाय डबल रोटी अथवा अकेली चाय ही पर सतोष कर लिया जाता।

चाय बन रही थी। ट्रे में मक्खन की दो तीन टिक्कियां और ढेर सारे टोस्ट रखे हुए थे, जैसे पांच-सात मित्रो को निमन्त्रित कर रखा हो। गनी खैरातीराम को वह अभिनन्दन पत्र दिखा रहा था, जो कल पार्टी की ओर से उसे मिला था। उसी समय नारायण ने कमरे मे प्रवेश किया। वह सुबह की सैर से लौटा था। उसके हाथ मे ताजा अखबार था। आते ही कहा—"कामरेड गनी! इधर आओ! तुम्हे अखबार सुनाऊ। कल के जलसा की कारंवाई छपी है।"

"अच्छा!" गनी की आखें चमक उठी और वह अखबार पर भुक गया—गनी पढ नही सकता था, वह सिर्फ यह देखना चाहता था कि खबर किस जगह छपी है। नारायण ने खबर पढकर सुनाई।

"मुबारकबाद! कामरेड गनी।" खबर सुनकर खैरातीराम ने कहा।

गनी ने मुस्कराते हुए हाथ उसकी ओर बढा दिया। खैरातीराम ने उसका गर्म हाथ अपने सर्द हाथ मे थामते हुए कहा—'अच्छा। अब मैं

चलता हूं, नहा-धोकर दफ्तर जाना है।"

गनी एक बार फिर अखबार पर झुक गया। नारायण किसी दूसरे पृष्ठ पर पढ़ रहा था—"लाहौर हैल्थ—68 उत्पन्न हुए और 31 मरे।" लेकिन गनी को जन्म और मरण की समस्या से सरोकार ? वह तो पन्ने उलटकर वही कालम देख रहा था जिसमें जलसे की कार्रवाई छपी थी। कुछ एक पंक्तियों की यह छोटी-सी खबर, जिसे वह कल स्वयं ही दे आया था, अखबार में प्रकाशित होते ही परियों की कहानी के सदृश विचित्र और आकर्षित बन गई थी। उसके अक्षर कितने सुन्दर और कितने मनोहर दीख पड़ते थे। गनी चाहता था कि नारायण उसे एक बार फिर पढ़कर सुनाये, ताकि वह इन शब्दों को अपने भीतर भर ले। अखबार देश के कोने-कोने में जायेगा, सैंकड़ों, हजारों लोग पढ़ेंगे, उन्हें मालूम होगा कि गनी को अभिनन्दन-पत्र मिला है। उसकी देश-भक्ति, उत्साह और त्याग को सराहा गया है। जितना अधिक वह इस खबर को देखता था, उतनी ही अधिक उसके भीतर उल्लास की मात्रा बढ़ती जा रही थी।

उसी समय अशोक ने कमरे में प्रवेश किया। उनके साथ एक और व्यक्ति था, जिसके हाथ में सुलगती हुई बीड़ी थी। नारायण ने अखबार अलग रख दिया और बीड़ी वाले व्यक्ति का अभिनन्दन करते हुए बोला—

"पराशर जी, जय रावण!"

"जय रावण।" कहकर पराशर मुस्कराया और वहीं दरवाजे के निकट चटाई पर बैठ गया। अशोक और नारायण ने बहुतेरा कहा कि यहां क्यों बैठते हो, आगे आ जाओ। लेकिन वह तटस्थ रहा। घटनों को कम्बल में ढांपता हुआ बोला—"यही ठीक है। बीड़ी पीऊंगा और धुआं बाहर छोड़ूंगा।"

उसने दायें हाथ की मुट्ठी खोली। उसमें चार-पांच बीड़ियां कैद थीं। पहली बीड़ी भस्म हो रही थी, इसलिए एक दूसरी बीड़ी सुलगाई और मुट्ठी दोबारा कम्बल के भीतर खींच ली ताकि हाथ और बीड़ियां दोनों सर्दी से सुरक्षित रहें।

पराशर का शरीर इकहरा, आखें छोटी, सिर गजा, कान लबे और उम्र पचपन-छप्पन साल थी। दाढी रखी हुई तो नही थी, लेकिन चेहरे पर दृष्टि डालने से मालूम होता था कि उसने हजामत की हडताल कर रखी है। अधिक नही तो शेव बनवाये कम से-कम दो हफ्ते अवश्य बीत चुके होगे। दाढी बढ रही है, तो बढा करे, कोई परवा नही। यो इससे एक लाभ भी था। दाढें और दात देर हुई निकल चुके थे, इसलिए गाले भीतर को चिपक गई थी। बाल बढ जाने से गालो के गड्ढो पर हल्का-सा पर्दा पड जाता था और देखने मे कुछ ऐसा बुरा नही लगता था। दात निकल जाने से जहा पाचन-शक्ति पर असर पडा था, वहा शब्दो का उच्चारण भी ढग से नही हो पाता था। मित्रो ने उसे डाक्टरी दात लगवाने का मशविरा दिया। लेकिन वह दूसरो की बात मानने के बजाय जो मन मे आये वही करता था और स्वेच्छाचारी था। इसलिए मित्रों को आशा थी कि मन मे आयेगी तो नये दात आप ही लगवा लेगा। उसने ऐनक भी आप ही लगवाई थी।

नारायण के अखबार रखते ही गनी ने उसे उठा लिया और खबर वाला पृष्ठ खोलकर उन पक्तियो पर नजरें गडा ली, जिनमे परियो की कहानियो का जादू बद था। तनिक अवसर मिलते ही उसने अखबार अशोक के हाथ मे थमा दिया और कहा—"यह देखिए कल के जलसे की खबर छपी है।"

अशोक ने खबर पढकर सुनाई और गनी की ओर देखा। वह गद्गद् मन से मुस्करा रहा था।

अशोक की दृष्टि अखबार मे प्रकाशित एक चित्र पर पडी। वह उसे सब को दिखाते हुए बोला—

'हमारे नये वायसराय लिनलिथगो साहब साडो का प्रदर्शन कर रहे हैं।"

"क्या खूब!' पराशर ने बीडी का कश लगाकर कहना शुरू किया, "अग्रेज दुनिया को अपनी कारगुजारी तो दिखाये! स्वास्थ्य, शिक्षा, अन्न—सब की व्यवस्था ठीक है; सिर्फ एक साडो की नसल उत्तम बनाने

शेष रह गया था···था, उसे भी अब पूरा कर दि···दिखायेंगे ताकि हिन्दु···दुस्तान में दू···दूध की नदि···नदियां बह निकलें। मक्खन मोट आवें। गांधी जिस रामराज्य का सपना देख रहा है, अंग्रेज उसे तु···तुरंत ही पूरा कर दे···दे देगा दू··· दूसरों की आंख में धू···धूल झोंकना कोई अंग्रेज से सीख ले। वे समझते हैं कि दु··· दुनिया में उनके सिवा सब बुद्ध··· बुद्धू सब बप···बपाऊमल बनते हैं।" पराशर ने बीड़ी एक ओर रख दी और हाथ से अभिनय करते हुए कहा—"दुनिया को अंगुलियों पर न···नचाना अंग्रेज धर्म की पुट्टी में पिलाया जाता है। और मालगुजार तो उसे बनाकर भेजते हैं जो घाट-घाट का पा···पानी पीकर कप···कपट की चालों में ताक हो जाता है। फिर रहने के लिए महल, बाईस हजार रुपये महीना तनख्वाह बस··· बसे और अनाड़ी। दिमाग में आप ही आप स्कीमें निकलती हैं। वह त··· तो अंग्रेज है, जिसकी राजनीति ही कपट है, इस कुर्सी पर अगर पराशर अथवा किसी और बुद्धूमल बपाऊमल को बिठा दिया जाय तो वह न सिर्फ बातों का बल्कि हाथ···हाथियों का प्रदर्शन करे।"

"पराशर जी! यदि इन्साफ से देखा जाय तो सबसे बेहतर बनाना भारतीय परम्परा के अनुकूल है। यहां तो किसी समय मनुष्यों तक में सांड छोड़े जाते थे। मैंने सुना है कि बीकानेर की ओर एक सुन्दर और स्वस्थ जाति रहती है, पिछले चालीस-पचास साल पहले तक उनमें यह प्रथा चली आती थी कि वे अपनी जाति में बीस-बाईस वर्ष के सुन्दर और स्वस्थ नौजवान को सांड छोड़ते थे। सारी संतान उसी से उत्पन्न होती थी। चालीस साल की उम्र में उसे जिंदा गड़वा देते थे, ताकि संतान दुर्बल न हो। लेकिन अब यह प्रथा बंद हो गई है, यही कारण है कि अब ये लोग भी दुर्बल और असुन्दर होते जा रहे हैं।······"

नारायण अभी कुछ और कहना चाहता था; पर गनी चाय ले आया। पराशर ने बीड़ी उठाई, जो पड़े-पड़े बुझ गई थी। लेकिन वह धुआं निकालने का व्यर्थ प्रयत्न करने लगा। गनी ने उसे चाय का प्याला और बीड़ी सुलगाने के लिए कोयला पेश किया। पहले उसने बीड़ी सुलगाई और फिर मुट्ठी की बीड़ियां झोली में रखकर प्याला थामा; लेकिन टोस्ट लेने

से इन्कार कर दिया क्योंकि दांत न होने के कारण वह खा नही सकता था। वह एक घूट चाय का पीकर चार कश बीडी के लगाता था। जब फेफडे तनिक गर्म हो गये तो नारायण की बात से सिलसिला मिलाकर कहना शुरू किया—

'किसी एक इलाके की बात नही त समाम हिन्दुस्तान मे साड पलते थे और अब भी पलते हैं। मठो और खानकाहो मे जाकर देखिये इतने सांड भरे पड़े हैं कि आदमी दे देखकर द दग रह जाता है और उनकी तादाद इतनी ज्यादा है कि यहा त तो उनके लिए गुजाइश ही नहीं। अगर उन्ह जहाजो म भरकर योरुप भेज दिया जाये तो इन साम्राजियो की न नसल भी अच्छी हो सकती है। फिर वे धाग भी पल्ले सिरे के होते हैं, उनमे से एक एक सौ सौ अग्रेजो को छल और कपट की चालो मे म मात दे सकता है। मेरे जैसे बुद्धूमल बधाऊमल उनके पावो की धू • धूल घो घो धोकर पीते हैं।"

उसने एक नई बीडी सुलगाई और लम्बे लम्बे कश खीचने शुरू किये। प्याले में जा थोडी सी चाय बच रही थी, वह अब ठन्डी हो गई थी उस एक ही घूट मे गट गट गले से नीचे उतार लिया। गनी ने एक और प्याला देना चाहा, जो उसने नही लिया। बीडी का कश लगाकर धुआ छोडा और फिर अशोक से पूछा—

'कोई और खबर ?'

"हिसार के इलाके म अकाल जोर पकड गया है। सैकडो मवेशी चारा न मिलने के कारण मर गये और लोग घरबार छोड छोडकर दूसरे इलाको को भाग रहे हैं।'

'पराशर जी!" नारायण बोला, 'ये हैं अग्रेजी राज की बरकतें जो हमने दूसरी जमात से पढना शुरू की और अन्त तक रटना पडी। इतना रटी कि अब तक जबानी याद हैं—रेलें चलाई तार घर खोले, सडकें बनवाई नहरें निकाली, सिंचाई का प्रबन्ध किया, अकाल का भय नहीं रहा, लोग आराम से रहते हैं—शेर और बकरी एक घाट पानी पीते हैं ।'

"कामरेड अशोक ! मुझे क्षमा करना। वैसे त···तो आप लोगों ने भी कालेजों में शिक्षा पाई है; लेकिन यह बहुत ही कड़ड-कड़वी सचाई है कि हमारे कालेजों से बुद्धूमल, बधाऊमल निकलते हैं। जब वे शिक्षा स··· समाप्त करके कालेजों से बाहर आते हैं, तो उनके हाथ में एक गीदड़ परवाने के अ······अलावा और कुछ नहीं होता। अगर सौभाग्य से नौकरी मिल जाती है तो ये परवाने दि··दिखाकर अंग्रेजी सरकार के कल-पुर्जे बन जाते हैं। सुबह से शाम तक द···दफ्तरों में बैठे कलम घिसते हैं; दोनों हाथों से अपढ़ जनता को लूटते हैं और अंग्रेज ब···बहादुर के गुण-गान करते हुए मर जाते हैं···"

पराशर रुक गया अशोक का ध्यान इस ओर नहीं था, वह कोई विशेष समाचार पढ़ रहा था। नारायण भी अखबार पर झुका हुआ था। पराशर को यह बात अखरी और उसने बीड़ी का कश लगाकर गिला किया—

"मुआफ कीजिएगा। आपको मेरी बातें नागवार गुजरती होंगी, लेकिन जो कुछ मैं कह रहा हूं कड़ुआ जरूर है, लेकिन सोलह आने सच है; प···पत्थर की लकीर है और मुझे यह म···मरज है कि जो कुछ सच समझ उसे अर्ज कर दूं। वैसे त·· तो हर एक बुद्धूमल, बधाऊमल अपने आपको अक्लमंद समझता है; लेकिन पराशर ने जो कुछ सीखा है, जीवन का लहू न·· निचोड़ कर सीखा है।"

इस बात को कौन नहीं जानता था कि पराशर के शरीर का लहू निर्दयता से निचोड़ा गया है। उसे मार्शल्ला के दिनों में गिरफ्तार करके काले पानी भेज दिया गया था। पन्द्रह-सोलह साल अंडमान में व्यतीत हुए थे। अभी दो साल हुए छूटकर आया था और अब शहर की एक वार्ड कांग्रेस कमेटी का प्रधान था।

अशोक को महसूस हुआ कि उसकी असावधानी से पराशर के मन को आघात पहुंचा है। उसने अखबार रखकर विनीत भाव से कहा—"पराशर जी, भूल हो गई, क्षमा कीजियेगा। आप कहिए मैं ध्यान से सुनूंगा। यों ही हिटलर के भाषण पर नजर जा पड़ी थी, मैं उसे देखने गए था।"

"क्या भाषण दिया है हिटलर ने ?" पराशर ने धुआं बाहर निकालते

हुए दरियाफ्त किया।

' हिटलर कहता है कि हम बिल्कुल लडना नही चाहते। हम सिर्फ वह इलाके वापस लेंगे जो पिछले युद्ध मे जर्मनी से छीन लिए गये थे।"

"यह सब कहने की बातें हैं। नारायण बोला और दृढ विश्वास के साथ आगे कहा, ' लडाई होगी और अवश्य होगी।'

' इसम तो सदेह नही कि लडाई होगी। सम्भव है कि साल दो साल और इमी तरह टल जाये। जर्मनी को मडिया चाहियें और हिटलर जानता है कि मडिया बिना लड नही मिलेंगी। अग्रेज चाहता है कि रूस और जमनी म छिड जाये और वह खुद अलग खडा तमाशा देखे। अग्रेज की इसी नीति ने हिटलर को जन्म दिया है और इसी नीति क कारण उसे दिन-दिन ढील मिल रही है। उसने राईनलैंड और सार पर चुपके से कब्जा कर लिया, किसी के कान पर जू तक नही रेंगी। लेकिन जब वह और आगे बढेगा, तो अग्रेज को उसके विरुद्ध युद्ध का ऐलान करना पडेगा क्योकि आज अग्रेज ही दुनिया पर छाया हुआ है और उसे अपनी मडियो की चिन्ता है।"

' कामरेड ! मेरी एक बात याद रखना, अभी से कहे देता हू। युद्ध का ऐलान अग्रेज करें चाहे जर्मनी करे, हमे इससे कुछ लाभ न नहीं होगा। हम सदा बुद्धूमल बधाऊमल बने हैं और बनेंगे। पि पिछले युद्ध की त तरह अग्रेज को रुपया मिलेगा और भ भर्ती भी। एक बार फि फिर झूठे वादे करके हमे अगुलियो पर नचाया जायेगा और बाद मे हमारी युद्ध से सेवाओ का इनाम मिलेगा जेलो, गोलियो और मा— मार्शल्ला से।"

पराशर ने बीडी के लम्बे-लम्बे कश लगाना और धुआ छोडना शुरू किया। लगता था कि उसके भीतर भीषण ज्वाला धधक रही है, जो एक भयकर विस्फोट से इस कपट व्यवस्था का अन्त कर देना चाहती है। धुआ छोडते छोडते उसे जाने क्या खयाल आया कि तुरन्त उठकर जाने को तैयार हो गया।

"बस चले। कुछ और बैठिए। इतनी जल्दी क्या है?" अशोक ने

आग्रह किया।

"जल्दी त···तो कुछ खास नही। पर न···नन्ही घर पर अकेली है, मुझे याद करती होगी।" पराशर बोला।

नन्ही उसकी एक-मात्र संतान थी। उसे वह अंडमान से अपने साथ लाया था। वहां उसने एक बर्मी औरत से ब्याह कर लिया था। उसी औरत से यह लड़की उत्पन्न हुई थी। इस समय उसकी उम्र सात-आठ साल होगी। पराशर को नन्ही बहुत प्यारी थी। उसका ध्यान आ जाये फिर कहीं बैठे रहना सम्भव नही था। अशोक के आग्रह पर भी वह रुका नही, जाने के लिए जूता पहनने लगा। लेकिन गनी इशारों में कुछ कह रहा था, उसका आशय समझकर नारायण बोला—

"हां, हां जरूर दिखा। पराशर जी एक मिनट रुकिए और गनी का एड्रेस देखते जाइए।"

पराशर ने एड्रेस गनी के हाथ से ले लिया और उस पर उचटती-सी निगाह डालकर कहना शुरू किया—"कामरेड गनी, रात मैं जलसे मे मौजूद था। शुक्र करो कामरेडों ने तु···तुम्हारी कुरबानियों का एतराफ तो किया। वरना सच तो यह है कि गरीब आदमी जेलों में···पड़ा-पडा सड़कर मर जाये, कोई उसका नाम तक नही लेता। दूसरी त···तरफ एक बुद्धूमल बधाऊमल, जिसके पास पैसा हो, मोटरें हों, चाहे स···सयासत का अलिफ ·· बे···भी न जानता हो, अव्वल दर्जे का बेईमान और झूठा हो, मुआफ करना मैं सख्त बात मु···मुंह से नि···निकाल रहा हूं, दो महीने जेल में रह आये, तो उसे फख़्रे-कौम, देवता स्वरूप और जाने किन-किन नामों से पुकारा जाता है। फिर बैंकों और कम्पनियों का डा···डायरेक्टर बन कर ऐश करता है। पराशर सोलह साल अंडमान में रहकर भी गलियों की ख···खाक छानता फिरता है और उसकी बच्ची टु···टुकड़े-टुकड़े के लिए दूसरों की मु···मुहताज है।"

उसे फिर नन्ही का ध्यान आया, और वह एड्रेस धरती पर रखकर दोनों हाथों से प्रणाम करता हुआ कमरे से बाहर निकल गया।

कुछ देर सन्नाटा रहा। अशोक, नारायण और गनी चुपचाप दरवाजे

की ओर ताकते रहे और पराशर के खट खट सीढ़ियों से उतरने की आवाज सुनत रहे। जब उसके पाव की चाप सुनाई देना बन्द हो गई तो अशोक फिर अखबार पढने लगा, गनी ने एड्रेस को धरती से उठाकर झाडा-पूछा और नारायण ने दायें हाथ से बायें हाथ की अगुलिया चटखाते हुए दार्शनिक भाव से कहा—

'यह व्यक्ति हर समय धुआ छोडता है और आग उगलता है!"

: 8 :

दीवार

राजेन्द्र और इखलाक को ओकाड़ा में आये लगभग एक हफ्ता हो चला था और उन्होंने मजदूरों से मेल-जोल बढ़ा कर हालात को समझने का प्रयत्न किया। यहां आठ-नौ हजार मजदूर काम करते थे और उनकी दो किस्में थीं— एक कच्चे और दूसरे पक्के। कच्चे मजदूर रुई के उन कारखानों में काम करते थे, जो कपास का मौसम शुरू होने पर चालू होते थे और सालभर में सिर्फ चार-पांच महीने जारी रहते थे। इन कच्चे मजदूरों की तादाद तीन और चार हजार के दर्म्यान होती थी। इनमें प्रायः ऐसे लोग शामिल थे, जो काम शुरू होते ही देहात से शहर आ जाते थे और काम खत्म होते ही फिर देहात को लौट जाते थे। उनमें से कुछेक की अपनी जमीन होती थी, बहुतों को दूसरों के खेतों पर काम मिल जाता था। इनके अलावा पांच-छः हजार पक्के मजदूर थे, जो कपड़े के मिल में काम करते थे और स्थाई रूप से वहीं रहते थे। शहर से बाहर रेलवे लाईन के उस पार उनकी बस्ती आबाद थी। राजेन्द्र और इखलाक एक दिन मजदूरों की इस बस्ती को देखने गये। स्थानीय वर्करों ने उनके साथ एक गाईड कर दिया, जो खुद मजदूर था और इसी बस्ती में रहता था। बीस-इक्कीस साल का नौजवान छोटी-छोटी मूंछें हंस-मुख और बहुत ही समझदार। संयोगवश वह राजेन्द्र से पहले ही परिचित था। वह उसी अखबार के दफ्तर में चपड़ासी था, जिसमें राजेन्द्र सह-सम्पादक रह चुका था।

"बाबूजी नमस्ते। मुझे नही पहचाना।" उसने देखते ही कहा।

"ओहो रामदास! तुम कहां!" राजेन्द्र ने उत्तर दिया।

रामदास ने बताया कि उसका चाचा कपड़ा मिल में मजदूर है उसके कारण छ-सात महीने से वह भी यहीं आ गया है।

रामदास का कद लम्बा, शरीर सुगठित और स्वस्थ था और इसके साथ ही वह मेहनती भी बहुत था। जब वह अखबार के दफ्तर मे मुलाजिम था, उसने कुछ पढना-लिखना भी सीख लिया था। मजदूरी से सम्बन्धित खबरें दिलचस्पी से सुना करता था। अमरीका मे दो लाख मजदूरों ने हड़ताल की, उनकी मांगें मान ली गईं। कानपुर मे छः हजार मजदूरो ने हड़ताल की, पिकेटिंग हुई, पुलिस ने गोली चलाई और दो मजदूर मारे गये। हड़ताल किसलिए हुई और गोली क्यो चली? राजेन्द्र उसे कारण बताता तो उसका मन मजदूरो के प्रति सहानुभूति से भर जाता और वह विषाद युक्त स्वर में पूछता—"बाबूजी, गोली हमेशा मजदूरों पर ही क्यो चलती है?"

और अब वह खुद मजदूर भर्ती हो चुका था और चपड़ासी से मजदूर बन जाने पर खुश था, क्योंकि वह अपने चाचा के पास रहता था, जो उसे बेटे की तरह प्यार करता था।

उसे राजेन्द्र भी याद कई बार आ जाती थी क्योकि दफ्तर मे उसका रवैया सबसे अलग था। वह सदा हमदर्दी से पेश आता था और हर एक बात प्यार और मुहब्बत से समझाया करता था। रामदास को मालूम था कि वह सियासी वर्कर है और मजदूर यूनियन मे काम करता है। यहा भी उसने ऐसे सियासी वर्कर ढूढ निकाले थे, जो मजदूरो से और उनकी मागो से दिलचस्पी रखते थे। जब उसे मालूम हुआ कि लाहौर से दो आदमी आये हैं और मजदूर बस्ती देखना चाहते हैं तो उसने उन्हें बस्ती दिखाने का काम खुशी-खुशी अपने जिम्मे ले लिया।

"आप यहा भी यूनियन बनायेंगे?" उसने रास्ते मे राजेन्द्र से पूछा।

"हा बनायेंगे, होगे तुम उसमे भर्ती?"

"जरूर! हमारे और भी कई साथी तैयार हैं। हम तो खुद ही यूनियन

बनाने की बात सोच रहे थे।"

क्वार्टर छोटे-छोटे थे; बस्ती दूर तक फैली हुई थी। जो मजदूर परिवार के साथ रहते थे, उनके क्वार्टर कुछ बड़े थे। हर एक मजदूर को दो-तीन रुपये महीना किराया देना पड़ता था। क्वार्टरों के बनाने में किसी योजना से काम नहीं लिया गया था। अगर आठ-दस के दरवाजे उत्तर को थे, तो आठ-दस के पूर्व को। यहां दो पंक्तियां और वहां तीन। फिर काफी जगह खुली छोड़ दी गई थी, जिसमे कूड़े-करकट के ढेर लगे हुए थे और इन ढेरों को मुर्गे-मुर्गियां कुरेद रही थीं। गलियां तंग और टेढी-मेढ़ी थीं; जिनमें आवारा कुत्ते घूम रहे थे और मजदूरों के नंगे-धड़ंगे बच्चे भी थे। क्वार्टर इतने बिखरे हुए थे कि इसे एक बस्ती कहना कठिन था। लगता था जैसे कई बस्तियां हों और लोग एक दूसरे से दूर-दूर रहने के आदी हों।

लेकिन एक चीज विशेष रूप से इखलाक और राजेन्द्र के ध्यान का कारण बनी। जब से बस्ती शुरू हुई थी, वे एक दीवार के साथ-साथ चल रहे थे।

"इस दीवार के दूसरी ओर मुंशी और जाबर रहते हैं।" रामदास ने उन्हें बताया।

"मुंशी तो खैर क्लर्क हुए, लेकिन यह जाबर क्या बला है?" राजेन्द्र ने कौतूहल मे भर कर उसकी ओर देखा।

"जाबर उस जमादार को कहते हैं।" रामदास बोला—"जो पच्चीस-तीस मजदूरों के काम की निगरानी करता है, काम का हिसाब मैनेजर को देता है, अर्थात् मशीन बिगड़ जाय तो दुरुस्त करता है और कोई पुर्जा घिस जाय तो बदल देता है।"

"लेकिन जाबर का तो मतलब है, जबर और सख्ती करने वाला।" इखलाक ने कहा।

"नहीं साहब, यहां तो इन्ही लोगों को जाबर कहते हैं।"

रामदास ने अपने ही बताये हुए अर्थ की सीमा मे रहना पसन्द किया "ये भी तो सख्ती और जब्र ही करते हैं। जरा-जरा सी बात पर जुर्माना कर देते हैं। कुछ झगड़ा हो जाये तो मालिकों का साथ देते हैं।"

"जाबर और मुन्शी सब इकट्ठे रहते हैं ?"

"जी हा, उनके क्वार्टर अच्छे और खुले हैं।"

"मजदूरो से उनका कुछ सम्बन्ध नही ?"

"सम्बन्ध क्या है ? वे अपना उधर रहते हैं हम इधर।"

"और बीच मे यह दीवार खींच रखी है ?" इखलाक ने अगुली को तवील जुबिश देते हुए दीवार की ओर सकेत किया। राजेन्द्र हस पडा। लेकिन रामदास इस व्यग को नही समझा। उसने समझा कि वह जो जानकारी उन्हे दे रहा है, वही हसी का कारण है, आगे कहा—

"जो मजदूर जाबरी का उम्मीदवार बन जाता है, उसे भी दीवार के उस तरफ ही रहने की जगह मिल जाती है।"

"जाबरी का उम्मीदवार किस हिसाब से बनता है ?"

"हिसाब तो मुझे मालूम नही।" रामदास ने नकारात्मक ढग से सिर हिलाते हुए कहा।

"और दफ्तरो की तरह मुलाजिमत का हिसाब होगा। पुराने मजदूरो को जाबर बना देते होगे।"

"मुलाजिमत का हिसाब कोई नही।" रामदास ने सशोधन किया, "मेरे चाचा पुराने मजदूर है, उन्हे किसी ने जाबर नही बनाया, जिसे चाहते हैं, बना देते है और बनाये हुए को हटा भी देते हैं।"

"तो फिर खुशामद का हिसाब होगा। जिसने ज्यादा खुशामद की वही जाबर बन गया।"

"यह ठीक है।" रामदास को बात पसन्द आई। वह हस पडा।

दीवार मे थोड़े-थोड़े फासले पर खिडकिया थी, उनमे से अक्सर बन्द पडी थी। इत्तफाक से जो दो-चार खुली रह गई थी, राजेन्द्र और इखलाक ने उनमे से झाककर दूसरी ओर के इन्सानो पर नजर डाली। उनका रहन-सहन आम मजदूरो से अलग था, वस्त्र अलग थे। उन्हे तनख्वाह अच्छी मिलती थी और रहने को क्वार्टर भी अच्छे मिले हुए थे, जो साफ-सुथरे और खुले थे। आगे आगन था, कुछ लोगो ने क्यारिया बनाकर उनमे सब्जी उगा रखी थी। मजदूर जब इन खिडकियों मे से

इधर देखते थे, तो उस दिन की कल्पना करते थे, जब वे भी जाबर बनेंगे; दीवार के उस ओर जाकर रहने लगेंगे और अपने कमरे के आगे सब्जी लगायेंगे। लेकिन बहुतों को तो जाबर बनने की भी आशा नहीं थी, वे मन ही मन कुढ़ कर रह जाते थे, बहुत हुआ तो मुट्ठी भींचकर एक दो घूंसे दीवार पर लगा दिये, लेकिन दीवार इतनी कमजोर थोड़ी थी कि उनके घूसों ही से गिर जाती।

दीवार और बस्ती के दर्म्यान जो तंग गली थी, उसे पार करके वे नुक्कड़ पर पहुंचे। यहां दीवार खत्म हो गई, कमरों का सिलसिला भी खत्म हो गया। सामने खुले खेत थे।

"बस्ती तो आपने देख ली, यहां सब पंजाबी मजदूर रहते हैं।" रामदास ने कहा और दक्षिण की ओर संकेत करके बोला, "वह मिल है। यहां दीवार खत्म होने पर जो दरवाजा दिखाई देता है, उसके अन्दर भी कमरे बने हुए हैं, जिनमें यू० पी० और गुजरात के भैया लोग रहते हैं। पर उस जगह को बस्ती नहीं क्वार्टर्ज़ कहते हैं। कहो तो वे भी दिखा दूं।"

वे उस तरफ चले। सामने से एक आदमी कोट पतलून पहने और टाई लगाये आ रहा था, जब नजदीक पहुंचा तो रामदास ने उसे नमस्ते की। उस व्यक्ति ने तनिक गर्दन हिलाई और इन लोगों पर नजर डाले बिना ही आगे चल दिया।

"यह साहब कौन थे ?"

"डाक्टर है।"

"मजदूरों के लिए हस्पताल खोल रखा होगा ?"

"जी हां।"

"दवाई वगैरह ठीक मिल जाती है ?"

"जी नहीं, डाक्टर बड़ा बदमिजाज है।" रामदास ने शिकायत की, "कोई तकलीफ हो कुनीन पी लो। चोट आये, फोड़ा-फुंसी हो तो टिंचर लगा लो। मेरी अंगुली पर जरा चोट आई थी। बीस दिन हो गये। आराम तो क्या आना था उल्टे पीप पड़ गई।"

रामदास ने बायें हाथ की दर्म्यानी अंगुली पर पट्टी बांध रखी थी।

बाह लटकाने से कष्ट होता था, इसलिए हाथ छाती से लगा कर चल रहा था। राजेन्द्र की नजर कई बार इस पट्टी बधी अगुली पर पडी थी और वह कैफियत पूछते-पूछते रुक गया था, अब बोला—"क्या हुआ ?"

"लकडी काट रहा था, फाक खुब गई।"

लम्बाई के मुकाबिले मे दीवार की चौडाई बहुत थोडी थी, वे जल्द सडक पर पहुच गये। रामदास ने बायें हाथ बनी हुई एक इमारत की ओर सकेत करते हुए कहा—"यह स्कूल है।"

"पढाई बाकायदा होती है ?"

"जी नही। कभी पढाने लग जाते हैं और कभी बन्द कर देते हैं। जब से मैं आया हू, दो बार बन्द हो चुकी है। अब दस-बारह दिन से फिर शुरू हुई है।" रामदास बता रहा था, लेकिन राजेन्द्र और [illegible] दाईं ओर एक मकान देख रहे थे, जिसके सामने तीन-चार [illegible] रहे थे। "यह डाक्टर का मकान है।" रामदास ने [illegible] का अनुकरण करते हुए बताया।

"और मैनेजर किस जगह रहता है ?" इखलाक ने [illegible]

"उसकी कोठी यहा से काफी दूर सडक के [illegible] है। [illegible] कर आता है और मोटर मे बैठकर चला जाता है।"

"बहुत खूब !" इखलाक ने राजेन्द्र [illegible] "[illegible] की बस्ती, मुन्शियो के क्वार्टर, डाक्टर का [illegible] की कोठी ! अजीब सिलसिला है।"

रामदास की बाह बातों में [illegible] सहसा ऊपर उठाया और वह [illegible] अगुली को दबाने लगा। उसमें [illegible] जाती थी, शायद दिल मे भी [illegible] दर्द को सहन करने लगा।

जब वे दरवाजे [illegible] चलिये। अन्दर जाकर [illegible] जमादार जो सामने [illegible]"

जमादार दरम्याने कद का गोल-मटोल आदमी था। उसने खाकी वर्दी पहन रखी थी, चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूंछें और हाथ में डंडा। राजेन्द्र और इखलाक उसके करीब से गुजरकर भीतर चले गये। दरवाजे मे दाखिल होते ही दाईं ओर दीवार के साथ एक बोर्ड पड़ा था, जिस पर चाक से एक सूचना लिखी हुई थी, वे उसे पढ़ने लगे।

"धर्म प्रेमियों को सूचित किया जाता है कि पंडित बैकुण्ठनाथ मथुरा-वासी शाम को रामायण की कथा बतरजे राधेश्याम करेंगे। सब सज्जनों को चाहिये कि पधारकर अमृत-पान करें ,"

और बाईं ओर की दीवार पर तीन बोर्ड लटक रहे थे, जिनमे से दो पर मलेरिया और हैजा से बचने के लिए हिदायतें लिखी हुई थी। यों तो दोनों बोर्डों पर हिदायतों की तादाद सत्रह-सत्रह थी, लेकिन उनमें से तीन-चार दोनो पर दोहराई गई थीं, जैसे—मजदूरों को चाहिये कि वे कमरों के आगे दाल-भात या कोई और सड़ी-गली चीज न फेंका करें। शीघ्र पचने वाला भोजन खायें और दूध-दही का इस्तेमाल अधिक करें। और तीसरे बोर्ड पर मोटे-मोटे अक्षरो में यह सूचना दर्ज थी—

"यह अहाता कारखाना की मिलकियत है, इसमे धार्मिक जलसों के अलावा और किसी किस्म का जलसा वगैरह करने की सख्त मनाही है।"

जब वे बोर्ड पढ़ रहे थे, रामदास भी भीतर आ गया और वे तीनों आगे बढ़े।

मजदूरों की इस बस्ती के गिर्द फमील बनी हुई थी और क्वार्टरों की बनावट मे भी एक व्यवस्था थी। आमने-सामने दो-दो पंक्तियां थी और इन पंक्तियों के बीचों बीच काफी खुली पक्की गलियां थी। लेकिन क्वार्टर छोटे-छोटे थे और खाना बनाने से उनकी छतें सियाह हो गई थी। सैंया लोग कमरों में भरे पड़े थे। छुट्टी के बावजूद घूमने नहीं गये थे, जैसे उन्हें घूमने-फिरने की आदत ही न हो। अक्सर लेटे हुए थे, कुछ बीड़ी पी रहे थे, कुछ गप्पें हाक रहे थे और कुछेक धार्मिक पुस्तकें पढ़ रहे थे। धोतियों के अतिरिक्त पतले-दुबले शरीर नगे थ, या फिर जनेऊ पहन रखे थे। चारपाईयां मोटे मूंज की बारमाना बुनी हुई थी, जो छोटी-छोटी और

कमजोर थी, इसलिए कही भी दो से अधिक व्यक्ति किसी एक चारपाई पर नही बैठे थे। कई चारपाइयो का एक पाया या एक बाजू टूटा हुआ था, उन्हें ईंटो का सहारा दे रखा था। वे सारी बस्ती पार कर गये, कही भी स्वस्थ चेहरा और सुडौल शरीर दिखाई नही दिया। राजेन्द्र, इखलाक और रामदास बीच मे से गुजरते गये, किसी ने उनकी ओर आख उठाकर भी नहीं देखा, जैसे वे वातावरण से उदासीन और बे-खबर हो, जैसे उनका अस्तित्व भी इन कमजोर चारपाईयो से अधिक न हो, जैसे जीने के लिये उन्हें भी कोई सहारा दरकार हो। वे हैजा और मलेरिया से बचने के लिये दाल-भात जैसा नर्म और शीघ्र पचने वाला भोजन बहुत थोडी मात्रा मे खाते थे। शरीर सूख गये थे, लेकिन बीमारी से बचे हुए थे और पडित बैकुण्ठनाथ की कथा मे जो अमृत पान करने को मिलता था, उसी के कारण अमर हो गये जान पडते थे।

"ये भी अपना अलग-अलग रहते हैं?" इखलाक ने पूछा—

"हा, ये हम पजाबी मजदूरो से मिलते-जुलते नही।"

"इसका मतलब है कि इन्हें सगठित करना बहुत कठिन है?"

"इसमें क्या शक है।" राजेन्द्र बोला, "लेकिन कामरेड, यह सिर्फ इन्ही की बात नही। जो पजाबी मजदूर कानपुर, अहमदाबाद और बम्बई के कारखानो मे काम करते हैं, वे भी इसी तरह अलग-अलग रहते हैं। किसी आन्दोलन और किसी संगठन मे बहुत कम भाग लेते हैं।"

"ठीक होगा" इखलाक बोला और तनिक सोचकर कहा, "इसका तो यह मतलब हुआ कि जब आदमी एक सूबे से दूसरे सूबे मे मजदूरी करने जाता है, तो उसकी जड़ें धरती मे कट जाती हैं। अपने समाज और अपनी रवायात से उसका कोई ताल्लुक नही रहता। उसे अपना और बीवी बच्चो का पेट पालने की फिक्र लगी रहती है।"

"कुछ भी हो। यह एक हकीकत है जिसे शायद कारखानेदार बखूबी समझता है, तभी तो उसने अपनी ओर कमे भैया लोग लाकर भर्ती किये हैं।"

बातें करते वे एक छोटे से चौक मे पहुचे, जहा नहाने-धोने के

पानी के नल थे और पक्का फर्श बना हुआ था। उन्होंने भी पानी पिया। दिन छिप चला था, इसलिए लौटने की सोची। जब वे नल वाली गली से गुजरकर नुक्कड़ पर आए तो देखा कि पांच-सात भैया लोग इकट्ठे बैठे "आल्हा" गा रहे हैं। गाने का स्वर गूंज रहा था और सिर झूम रहे थे। इखलाक यह दृश्य देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—

"लो भाई, यहां भी जिन्दगी रकस (नाच) कर रही है।"

वे मुस्कराते हुए और बोर्डों पर उचटती सी निगाहें डालते हुए अहाते से बाहर निकल आये।

"यह दीवार है, वह दीवार है।" इखलाक ने सड़क पर चलते-चलते कहा "सरमायादारी का काम इन्सान, इन्सान के बीच दीवारें खींचना है।"

"और इन दीवारों को गिराना मुश्किल है।" राजेन्द्र बोला।

"मुश्किल तो है, लेकिन बहुत मुश्किल नहीं। वक्त ने उनकी बुनियादों को खोखला कर दिया है।"

जिस मोड़ पर उन्हें घूमना था, वहां खड़े दो मजदूर बातें कर रहे थे। रामदास इस बार भी दरवाजे से गुजरते समय पीछे रह गया था। अब दौड़ कर साथ आ मिला और इन मजदूरों की ओर इशारा करके बोला—"वह मेरा चाचा बदरी है और जिसके साथ वह बातें कर रहा है, उसका नाम सदीक है। इन दोनों में बड़ी दोस्ती है। दोनों मजदूरों के एक धड़े के चौधरी हैं। मुकाबिले में एक दूसरा धड़ा है, जिसके चौधरी नन्दू और रहमा हैं।"

"अच्छा, बस्ती के मजदूरों में भी दो धड़े हैं?"

"जी हां, बड़े जबरदस्त और दोनों में खूब चलती है।"

"गोया यह एक और दीवार है।" इखलाक ने संजीदगी से कहा और उसकी नजर उस दीवार पर पड़ रही थी, जो बस्ती के बीचों बीच फैली हुई थी।

9

नई शक्ति, नई आवाज

सब भैया लोग पक्के मजदूर थे। लेकिन पजाबी मजदूरो की बस्ती मे कच्चे मजदूर भी रहते थे। कमरे अगरचे पक्के मजदूरो को ही किराये पर दिये जाते थे, लेकिन उनके भाईबन्द और जवान बेटे-बेटियां भी साथ ही रहती थी। जब रुई के कारखाने चालू होते थे तो उन्हें काम दिलाने के लिए दौड-धूप होती थी। देहात से आए बेकार लोगो से उनकी होड लगती थी और इस होड मे रुई के कारखानो की मजदूरी अक्सर कम हो जाती थी। इसलिए पक्के मजदूरो को न सिर्फ यह ध्यान रखना पडता था कि उनके सम्बन्धियो को रुई के मौसम मे काम मिल जाये बल्कि वे यत्न करते थे कि अवसर मिलने पर उन्हें पक्के मजदूर भर्ती करा दिया जाये।

इसी आर्थिक सघर्ष ने मजदूरो को दो धडो मे बाट दिया था, रामदास ने इन्ही धडो का जिक्र किया था। दोनो ओर के चौधरी अपने-अपने धडे को मजबूत बनाने के लिए जोड-तोड करते रहते थे। जिस धडे का बहुमत होता था, उसे काम पाने मे सुविधा रहती थी। लेबर वेलफेयर आफिसर, जिसे मजदूर इचार्ज साहब कहते थे, उसी धडे को रिआयतें देता और इस धडे के लोगो को मिल की डिस्पेंसरी मे दवादारू अच्छी मिलती थी। यही कारण था कि दोनो धडो की शक्ति एक दूसरे को मात देने मे नष्ट होती थी और वेलफेयर आफिसर की सफलता इस बात पर निर्भर थी कि वह मजदूरो को इसी उधेड-बुन मे डाले रखे।

अब नन्दू और रहमा का धड़ा बहुमत में था और उन्हें यह हैसियत पिछले पांच-छ: महीने से हासिल हुई थी। बदरी और सदीक का धड़ा लगातार कई साल से बहुमत में चला आता था। कारण यह कि नन्दू और रहमा की अपेक्षा वे अधिक मेहनती, अधिक चतुर और बात के खरे थे, इसके अतिरिक्त मजदूरों को अपने साथ रखने का ढंग भी जानते थे। अब भी बहुमत टूट जाने की सम्भावना नहीं थी। उनकी यह हार अकस्मात् हुई। कारण यह था कि लेबर वेलफेयर आफिसर मनचंदा किसी बात पर बदरी से चिढ़ गया था और उसके धड़े के कमजोर हिस्सों पर भीतर ही भीतर चोट कर रहा था। बदरी ने उसकी नाराजी को समझ लिया था और चाहता कि उसके मन का द्वेष दूर करे। लेकिन सदीक को यह बात गवारा नहीं थी, वह बोला—"तुम्हारा कोई कसूर नहीं। अगर वह इस लिए नाराज है कि तुम मैनेजर से क्यों मिले, तो रहने दो। हम उससे भी निपट लेंगे, वह हमारा खुदा थोड़े ही है।"

सदीक की बात बदरी के मन लगी। दोनो अपनी आन पर अड़े रहे। मनचन्दा से दिन-दिन खिचते चले गये। यहां तक कि अब उसे भी खुल्लमखुल्ला विरोधी पक्ष मे गिना जाता था।

"बहुत मुश्किल मामला है। अगर हम एक धड़े से मेल-जोल पैदा करेंगे तो दूसरे धड़े के लोग हम से बिगड़ जायेंगे और हमें अपना विरोधी समझेंगे। इसलिए बेहतर है कि हम दोनों धड़ों के चौधरियों से मिलें और आपस में सुलह सफाई कराकर यूनियन की बुनियाद रखें।" राजेन्द्र ने इखलाक से कहा।

"हमें पुरानी इमारत की मरम्मत नहीं करनी, नई बनानी है और उसकी ईंट ठोस बुनियादों पर रखनी है।" इखलाक ने जवाब दिया, "अव्वल तो चौधरियों में समझौता मुमकिन नहीं। कांग्रेस और लीग लीडरशिप की मिसाल हमारे सामने है। फर्ज करो समझौता हो भी जाये, दोबारा किसी बात पर तनाजा हुआ तो फिर टूट जाएगा और कशमकश पहले से कहीं तेज हो जायेगी। हमें अपने काम का आगाज शख्सीयतों से नहीं असूलों से करना है।"

"असूलो को अमल मे लाने के लिए भी तो आदमी दरकार हैं।

' बेशक आदमी दरकार हैं लेकिन दुरुस्त किस्म के।"

"दुरुस्त किस्म के आदमी कहां से आयेंगे ?"

"रामदास और उसके साथी नौजवान, जो इस धड़ेबदी से बेजार हैं, सरमायदारी से मुतनफ्फर है और मजदूरो के मफाद के लिए एक होने को तैयार हैं।"

"बात तो ठीक है ' राजेन्द्र ने थोडी देर सोचने क बाद कहा, "तादाद अगरचे थोडी होगी लेकिन उन्ही से इब्तदा करना मुनासिब है।"

बैठक बुलाई गई। पचास साठ नौजवान मजदूर जो शहर मे जाकर कांग्रेस के जलसे जुलूस देखते रहते थे पहले ही से यूनियन बनाने के लिए तैयार थे। उनकी देखा देखी दस-पन्द्रह व्यक्ति और आ गये। राजेन्द्र ने उन्हे बताया कि इस समय मजदूरो का कोई सगठन नही है, छोटी छोटी बातो पर आपस मे लडते हैं धड़ेबन्दी है। हम सब मे एकता चाहते है ताकि मजदूर अपनी मागें मालिको से मनवा सकें। मसलन ईद आ रही है। मुसलमान मजदूरो की छुट्टी होगी, हिन्दुओ की नही। फिर दीवाली आयेगी हिन्दुओ की छुट्टी होगी, मुसलमानो की नही। आप लोग चाहते हैं कि हर एक त्योहार पर सबको छुट्टी हो, पर कोई नही सुनता। मजदूरो की यह माग दुरुस्त है और हम इसे मनवाने की कोशिश करेंगे। इसी तरह अस्पताल मे दवाई खत्म हो गई, तो बस खत्म है। दोबारा नही आती। हम माग करेंगे कि दवाई मगवाई जाये। फिर स्कूल है हम उसमे बाकायदा पढाई की माग करेंगे। इसके अलावा जाबर लोगों के जुर्माने बन्द हो और बोनस सबको मिले

वे पहले ही से ये बातें सोचते थे। अब कही गई, तो अच्छी लगी। नौजवान झट मेम्बर भर्ती हो गये। यूनियन बन गई और रामदास को उसका सेक्रेटरी चुना गया।

पौधा जमकर पेड बनता है। हजारो मजदूरो की बस्ती मे साठ सत्तर छोकरो का यूनियन बनाना कोई विशेष महत्व की बात नही थी। को तो कानों कान खबर तक नही हुई। जैसे कुछ हुआ ही न हो,

बदरी ने रामदास से मजाक में कहा—

"अच्छा बेटा ! अब तुम भी चौधरी बन गये हो।"

"भाई साहब, बनने दो। हर्ज क्या है?" सदीक बोला, "आखिर हमें कयामत तक तो जीना नहीं। अब इन्हीं का जमाना है।"

रामदास बहुत खुश था, उसकी चिराभिलाषा पूरी हुई थी। उसे अपना अस्तित्व साठ-सत्तर··· लाखों-करोड़ों मजदूरों में फैला हुआ महसूस होता था। यह मजदूर कानपुर में रहते थे, अमरीका में हड़तालें करते थे, रूस में उनका अपना राज था—वे सारे संसार में फैले हुए थे। मजदूरों की शक्ति बहुत बड़ी शक्ति है। इस शक्ति के आभास से रामदास की छाती तन गई, गर्दन ऊपर उठ गई और इसी शक्ति के बलबूते पर उसने दूसरे ही दिन मुगली जाबर से झगड़ा भी मोल ले लिया।

एक जवान औरत नल पर पानी लेने जा रही थी। मुगली भी उधर से गुजर रहा था और उस औरत को लोलुप दृष्टि से देख रहा था। रामदास को आते देखा तो उच्च स्वर में कहा "क्यों भई, कभी कबूतरी को मटक-मटक कर चलते देखा है?"

"हां देखा है।" रामदास ने उत्तर दिया, "तुम्हारी मां अब तो बूढ़ी हो गई, लकड़ी टेककर चलती है; पर जब जवान थी तो कबूतरी ही की तरह मटक-मटक कर चलती थी।"

मुगली जब भी बस्ती में आता, औरतों को घूरते हुए गुजरता। लोग देखते और दिल ही दिल में कुढ़ कर रह जाते। कौन बदमाश से झगड़ा मोल ले? उसने छः-सात बदमाशों की टोली बना रखी थी, जो खाहमखाह दूसरे का अपमान कर देते थे। रामदास को भी उसकी हरकतें बुरी लगती थीं और उससे कन्नी कतराते हुए अपनी जवानी पर खेद होता था। लेकिन आज···आज वह दबने को तैयार नहीं था। उसकी बात पर हंसने के बजाये उद्दंडता से जवाब दे रहा था।

मुगली ने उसके बदले हुए तेवर देखे और एक गहरी नजर उस पर डाली। रामदास के पीछे-पीछे थोड़े ही फासले पर रक्खा, बंसी और करमा तीन नौजवान और आ रहे थे। मुगली ने उलझना उचित नहीं

समझा, मुस्करा कर बोला—"तूने मेरी मा की जवानी कहा देखी बच्चू ! अपनी मां की बात करता होगा।"

"नही, मैंने तेरी मा की जवानी भी देखी है। तू मुझे क्या समझता है ?" अब वे तीनों भी उसके पास आ पहुचे थे, रामदास ने तुनककर कहा, "मैं तेरे बाप के बराबर हू। मेरे पेट मे दाढी है।'

और वे तीनों हस पड़े। मुगली कट गया और चिढ़ कर बोला, "अच्छा बकवास न कर।"

"बकवास तू करता है। कमीना कही का। शर्म नही आती औरतो पर आवाजें कसते।"

"क्या बात है रामदास ?" बसी ने पूछा।

"बात है इसकी ऐसी-तैसी। बड़ा बदमाश बना फिरता है, सारी जावरी निकाल दूगा।"

मुगली ने वहा से खिसक जाना ही उचित समझा। लेकिन जाने से पहले मूछों पर ताव देकर बोला—"अच्छा बच्चू याद रखना कि किसी मर्द से पाला पड़ा है।"

"जा, जा ! बड़ा मर्द बना फिरता है। कल से इधर आया तो टागें तोड़ दूगा।"

शाम तक यह बात सारी बस्ती मे फैल गई। जिसने सुना, रामदास की हिम्मत को सराहा, जैसे सारी बस्ती की लाज रख ली हो, जैसे उसने यह काम सब के मशविरा से किया हो। लेकिन बदरी चिंता मे पड गया। वह जानता था कि मुगली बडा जालिम है। लड़ना-भिड़ना उसका नित्य का काम है। रामदास पर जाने क्या बीते ? उसने अपनी यह आशका सदीक को भी बताई। वह बोला—"तुम्हारी बात दुरुस्त है। मुगली चुप तो नही रहेगा। मगर मैं यह कहूगा कि रामू ने जो किया, ठीक ही किया। घबराने की जरूरत नही, जो होगा, देख लेंगे।"

इस साधारण घटना ने यूनियन के महत्व को बढा दिया और सब लोग उसके बारे में सोचने और सगठन मे दिलचस्पी लेने लगे।



: 10 :

ग्लेडी-एटर

ग्यारह बजे का समय था। बरामदे में दो कुर्सियां आमने-सामने पड़ी थी, उन पर नारायण और प्रह्लाद बैठे विश्व-इतिहास का अध्ययन कर रहे थे। रोमन साम्राज्य और उसकी सभ्यता और संस्कृति का अध्याय था। नित्य के युद्धों, लड़ाइयों और हत्याओं ने मानव हृदय को कठोर और निर्दयी बना दिया था। विजेता विजित जातियों का न सिर्फ धन-दौलत लूट लेते थे, बल्कि उन्हें गुलाम बनाकर ले आते थे। विजेता राष्ट्र के जो सूरमा रण-क्षेत्र में मारे जाते थे, उनकी आत्माओं को प्रसन्न करने के लिए गुलामों का बलिदान किया जाता था। धीरे-धीरे इन बलिदानों—गुलामों की नृशंस हत्याओं से उनका अपना मन ऊब गया, तो मृत-आत्माओं को प्रसन्न करने का एक दूसरा उपाय सोचा गया। जब कोई बड़ा व्यक्ति मर जाता तो उसकी अर्थी के साथ-साथ गुलामों को लड़ाया जाता। उनके वीरता से लड़ने और प्राण देने से मरने वाले की आत्मा प्रसन्न होती थी। वीरता और बर्बरता की सीमायें परस्पर मिल गई थी। लोग भी उन्हें लड़ते और मरते देखकर खुश होते थे। बाद में तमाशा देखने का शौक इतना बढ़ा कि अवसर लोगों ने गुलामों की इन लड़ाइयों को अपना पेशा बना लिया और उन्हें कला का रूप दे दिया। गुलामों को लड़ाने के लिए अखाड़े बनाये गये और अखाड़ों पर भव्य और विशाल इमारतें बनाई गई, जिन्हें ऐम्फी-थियेटर कहते थे और उनमें लड़ने वाले गुलामों को ग्लेडी-एटर कहा जाता था।

ग्लेडी एटर सिर्फ आपस मे ही नही बल्कि उन दरिंदो से भी लडते थे, जो इसी उद्देश्य से पाले जाते थे। तमाशाई मानव-रक्त बहते देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते थे। उनका विश्वास था कि यह हिसक खेल देख समूचा राष्ट्र बहादुर बनता है। जब एक ग्लेडी-एटर अपने प्रतिद्वन्द्वी ग्लेडी-एटर को घायल करके पृथ्वी पर गिरा लेता तो वह पहले एक अवज्ञापूर्ण दृष्टि उस पर डालता और फिर उसके समीप खडा सगर्व तमाशाइयो की ओर देखता, और उस समय तक देखता रहता, जब तक कि घायल ग्लेडी एटर को मार डालने या जीवित छोड देने की आज्ञा उसे न मिल जाती। अगर घायल ग्लेडी-एटर इस अवस्था में भी किसी प्रकार के साहस और वीरता का परिचय देता तो तमाशाई खुश होते और अपने अगूठे धरती की ओर झुका देते, जिसका अर्थ यह होता कि उसे कत्ल न किया जाय। और अगर दुर्भाग्य से वह न किसी वीरता का प्रदर्शन करता और न अपने साहस से तमाशाइयो को खुश कर पाता, तो वे अपने अगूठे आकाश की ओर उठा देते, जिसका अर्थ यह होता कि इस मरदूद को कत्ल कर दो।

नारायण पढ रहा था और प्रह्लाद सुन रहा था। अब उसने पुस्तक अलग रख दी और अपनी विशेष जानकारी के आधार पर कहा—"एक बार ग्लेडी एटरो, दरिंदो और जहाजो की लडाई बराबर सौ दिन तक होती रही, जिसमे मानव रक्त की नदिया बहने लगी। एक धार्मिक उत्सव पर यह हिसक खेल एक सौ तीस दिन तक बराबर जारी रहा, जिसमे ग्लेडी एटरो के पाच हजार जोडे लडाए गये और उनमे से हजारो मारे गये "

"इसका यह मतलब हुआ", प्रह्लाद ने उसे टोका 'कि वे लोग विशेष उत्सवो और त्यौहारो पर यह खेल इस तरह करवाते थे जिस तरह हमारे यहा रईस लोग रडियो का नाच और मुजरा करवाते थे?

'बिल्कुल। उन्हे खूब आनन्द आता था और अमीर लोग इस प्रकार के खेल करवाने मे फख्र और शान समझते थे।'

नारायण पढते पढते थक गया था। उसने कमर कुर्सी की पुश्त से टेक दी और टागें फैला दी। वृक्षो के ऊपर से होकर आने वाली किरणें उसके

शरीर को गरमा रही थीं। प्रह्लाद का शरीर किरणों की इस गरमी से वंचित था। उस पर बड़े पेड़ की ऊंची चोटी की छाया पड रही थी। वह चुप और निस्तब्ध कुछ सोच रहा था, शायद रोमन साम्राज्य के उस युग की कल्पना कर रहा था। उसके मन में जाने क्या विचार उठ रहे थे कि उसके चेहरे का रंग बदल गया था और होंठ तनिक हिल रहे थे। आखिर आंखों मे घृणा और अवज्ञा भरकर वह हठात् बोल उठा—

"कैसे वहशी लोग थे। मुझे तो ग्लेडी-एटर शब्द ही से नफरत है।"

"नफरत इस वक्त है। अगर उस वक्त तुम रोम मे पदा होते तो शायद ग्लेडी-एटर बनना पसन्द करते।"

"ना, ना, ना, ! मैं तो कभी न बनता।" प्रह्लाद ने हाथ और गर्दन हिलाते हुए विरोध प्रकट किया। नारायण मुस्कराया।

"लेकिन ग्लेडी-एटर तो गुलाम होते थे।" प्रह्लाद फिर बोला।

"पहले गुलाम होते थे, बाद में यह शौक इतना बढ़ा कि अमीर गरीब सब ग्लेडी-एटर बनने लगे। जो व्यक्ति अधिक सफलता प्राप्त करने के पश्चात् इस जीवन का त्याग करता था, उसे लकड़ी की तलवार इनाम में दी जाती थी। मूर्तिकार ग्लेडी-एटरों की मूर्तियां बनाते थे, जिन्हें अमीर लोग मकानों में रखते और इमारतों में लगवाते थे।

"और वह रोमन साम्राज्य की उन्नति और पराकाष्ठा का युग था?"

"इसमें क्या सन्देह है।" नारायण बोला, "वहशत और बर्बरता में ही सभ्यता की वर्तमान उन्नति का बीज अंकुरित हुआ है। जीवन का स्वभाव है आगे बढ़ना। बर्बरता के इस युग में भी वह आगे बढ़ा है, मानव-संस्कृति का विकास हुआ है। ग्लेडी-एटर बनने की प्रथा को तो अन्त में सरकार ने कानून बनाकर बन्द कर दिया; लेकिन इन बर्बर खेल-तमाशों ने जिस कला को जन्म दिया, वह अब तक जीवित है।"

नारायण ने अन्तिम वाक्य पर अधिक बल दिया। लेकिन प्रह्लाद उससे सहमत नहीं था, वह विद्रूप भाव से मुस्कराया और स्वर में कटुता भरकर बोला—

"प्रगति वाकई हुई है। पहले लोग तलवार से लड़ते थे, अब तोपों, टैंको और बमो से लड़ते हैं। हत्या और रक्तपात की कला जीवित है।"

"कभी उज्ज्वल पक्ष भी देख लिया करो या सिर्फ अंधेरे मे भटकते रहना ही सीखा है।"

"उज्ज्वल पक्ष तुम बता दो। हम तो देख रहे हैं कि दुनिया पर युद्ध के बादल मडरा रहे है।"

"युद्ध के बादल मडरा रहे हैं, इसमे सन्देह नही।" नारायण ने दृष्टि प्रह्लाद के चेहरे पर गडा दी, "मगर हम इस युग की नही, रोमन साम्राज्य की बात कर रहे हैं। देखिये, ग्लेडी-एटर बनने का रिवाज बन्द हो गया, लेकिन खेल-तमाशे जारी रहे, जो हम ऐम्फी-थियेटर के बजाय ओपन-एयर-थियेटर, सर्कस और सिनेमा के रूप मे देखते हैं। यह उन्ही खेलो का उन्नत रूप है।"

प्रह्लाद चौंक सा गया, जैसे नारायण ने ऐसे सत्य का उद्घाटन किया हो, जिसे वह देखते हुए भी न देख पाया हो। नारायण फिर बोला, "और देखिए, ऐम्फी-थियेटर के रूप मे विशाल और भव्य इमारतें बनी, निर्माण-कला की उन्नति हुई। ग्लेडी-एटरो की मूर्तिया बनाने का रिवाज पडा, तो मूर्ति-कला का विकास हुआ "

"यो तो हरेक बात का कुछ न-कुछ लाभ होता है" प्रह्लाद ने बात काटी।

"लाभ होता है; लेकिन हम देखते नही।" नारायण बोला, "इसी कारण हमारा ज्ञान अधूरा है। हम इतिहास पढते हैं पर उससे कुछ सीखते नही।"

प्रह्लाद चुप हो गया उसकी आखो मे देखने से जान पडता था कि जैसे उसने इतिहास की इस व्याख्या को स्वीकार कर लिया है। नारायण ने किताब खोली कि आगे पढ़े, लेकिन उसे दोबारा बन्द करते हुए कहा—"इस सम्बन्ध मे मैं तुम्हें एक घटना सुनाता हू, जो बहुत ही दिलचस्प और शिक्षाप्रद है। एक बार चालीस-पचास ग्लेडी-एटरो ने बगावत कर दी और वे पहाडो मे जा छिपे। स्पार्टकस उनका सरदार था। वे गुलाम

उनके साथ आ मिले, जो अपने स्वामियों के अत्याचारों से तंग आकर भाग आये थे। पहाड़ी किसानों ने जब देखा कि बागियों की संख्या और शक्ति दिन-दिन बढ़ती जा रही है, तो वे भी उनका साथ देने लगे। वे सब मिल-कर अपने दुश्मनों से इन्तकाम ले रहे थे। चारों ओर भय और आतंक छा गया। रोम का शासक वर्ग विद्रोहियों के नाम से थर-थर कांपने लगा। यह विद्रोह दो-चार दिन नहीं लगातार तीन साल तक जारी रहा। आखिर जब विद्रोहियों का नेता स्पार्टक्स मारा गया, तो इस महान विद्रोह का भी अन्त हो गया।"

प्रह्लाद खुश था। उसे नेता के मर जाने और विद्रोह के यों समाप्त हो जाने की आशा नहीं थी। इसलिए कौतूहल और उत्सुकता से भरा नारायण की ओर देख रहा था, जैसे पूछ रहा हो, "और ?" "और आगे दासों ने हर जगह बगावतें की और जाहिर है कि मनुष्य आदिकाल से शोषण और अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करता आया है और जो विद्रोह एक बार शुरू हो जाता है, वह कभी समाप्त नहीं होता। मनुष्य विद्रोह की यह पताका उस समय तक फहराता रहेगा, जब तक कि दुनिया से लूट-खसोट और अत्याचार का अंत नहीं हो जाता।" नारायण ने उत्तर दिया।

"यह तो ठीक है कि मनुष्य अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करता है" प्रह्लाद ने तनिक सोचकर कहा, "लेकिन एक बात मैं समझ नहीं पाया ?"

"क्या ?"

"यही कि अत्याचार भी मनुष्य करता है और विद्रोह भी मनुष्य ही करता है। अगर मनुष्य मनुष्य पर अत्याचार ही न करे, तो ?"

"मनुष्य सोच-समझ कर अत्याचार नहीं करता।" नारायण बोला, "विशेष परिस्थिति किसी विशेष बात को रिवाज देती है। वह रिवाज स्थिति के अनुरूप होता है और मनुष्य उसे सहर्ष स्वीकार कर लेता है। लेकिन युग फिर बदलता है, उसके साथ मनुष्य बदलता है। अब बदले हुए युग मे नई परिस्थिति, नए रिवाज का तकाजा करती है। लेकिन पुरानी स्थिति और पुराने रिवाज से कुछ लोगों का हित जुड़ जाता है, वे उसी व्यवस्था को कायम रखना चाहते हैं। लेकिन जो लोग नई स्थिति

और रिवाज मे अपनी मुक्ति देखते है वे विद्रोह करते हैं और यों सघर्ष का सूत्रपात होता है।"

सूर्य ने कोण बदल लिया था। टहनियो से छनकर कुछ किरणें प्रह्लाद के चेहरे पर भी पड रही थी और वह नारायण की बात ध्यान से सुन रहा था। वह चुप हुआ तो प्रह्लाद भी चुप रहा उसे कोई एतराज नही करना था। तनिक रुककर नारायण फिर बोला— टॉलस्टाय ने लिखा है कि प्रत्येक युग का इतिहास मनुष्य के भीतर विद्यमान रहता है, जिस प्रकार उसे अपना शरीर पूर्वजो से विरासत मे मिलता है उसी प्रकार सदियो की उन्नति भी उसे विरासत मे मिलती है।'

'लेकिन हमारे पूर्वजो ने तो कभी मानव रक्त नही बहाया वे तो सदा शांति और प्रेम से रहते थे।"

'क्या मतलब? हमारे पूर्वज दुनिया से भिन्न थे?'

"जी हा भिन्न थे।' प्रह्लाद ने दृढ विश्वास से कहा 'बाकी दुनिया ने पतन की अवस्था से उन्नति की ओर हम उन्नति से पतन की ओर आये हैं।"

"अच्छा मन-बहलावा है।' नारायण मुस्कराया 'और मन बहलाने का यह लाभ होता है कि आदमी मूख बना रहे।'

'यह मन बहलावा नही, हकीकत है। ऐतिहासिक सत्य है। जब और देशो में वहशत और बर्बरता का युग था, हमारे देश म सतयुग था।"

"सतयुग नारायण फिर मुस्कराया और इस बार उसकी मुस्कराहट मे व्यग पहले से बहुत तीखा था।' किस जमाने की बात कह रहे हो तुम।"

"यही रामायण से पहले हरिश्चन्द्र के युग की। यह हमारे इतिहास का सुनहला युग था। छल और कपट का नाम तक नही था। लोग जो बात एक बार मुह से कह देते थे पूरी करते थे।" प्रह्लाद भावुकता मे बहा जा रहा था और अपनी बात के समर्थन मे उसे अभी और भी बहुत कुछ कहना था लेकिन नारायण बीच ही मे बोल उठा—

"सुन लिया, अब बस भी करो। मान लिया कि जब सतयुग था तो

यह सभी कुछ होगा। लेकिन जिसे तुम सतयुग कहते हो, वही हमारे यहां दासता का युग था।"

"दासता का युग।" प्रह्लाद चिल्लाया, "हमारे देश भारतवर्ष में दासता का युग कभी रहा ही नहीं।"

"रहा तो है, लेकिन तुम उसे सतयुग कहते हो और उस सतयुग में मनुष्य बाजार में खड़ा होकर —कौड़ियों के भाव बिकता था।"

"तुम यह कहना चाहते हो कि राजा हरिश्चन्द्र और उनकी रानी तारा सरे बाजार बिके थे, इसलिए वह दासता का युग था?"

"जी हां," नारायण बोला, "जब राजा और रानी बिक सकते हैं तो सोचो कि जनसाधारण क्यों न बिकते होंगे? तुम कहोगे कि उन्होंने ऋषि को वचन दिया था, लेकिन क्या कोई वचन देने के बावजूद बिक सकता है, अगर बेचने और खरीदने का रिवाज न हो?"

प्रह्लाद से कोई जवाब न बन पड़ा। वह सोचने लगा।

नारायण फिर बोला—"तुम्हें एक लतीफा सुनाऊं। ताया चेतसिंह को तो तुम जानते हो। उसने जब पहली बार हरिश्चन्द्र की कहानी पढ़ी तो कहने लगा कि यह अच्छा सतयुग था रानी तारा श्मशान का कर चुकाने के लिए दो पैसे को भटकती रही। इसका अर्थ यह हुआ कि या तो उस समय लोगों के पास पैसे न थे या फिर उनके मन में दया न थी।"

प्रह्लाद हंस पड़ा। नारायण भी हंसने लगा।

उसी समय सीढ़ियों से किसी के ऊपर चढ़ने की चाप सुनाई दी। वे दोनों उधर आकर्षित हुए। दूसरे ही क्षण मदन आया। उसने एक उचटती-सी नजर दोनों पर डाली और "क्या हाल है?" कहकर सीधा कमरे के भीतर चला गया। इधर-उधर झांका, जब कोई दिखाई न दिया तो पलट-कर नारायण से पूछा—

"कामरेड अशोक कहां हैं? मुझे उनसे प्राईवेट बात करनी है।"

"बाहर गये हैं दो-चार दिन में लौटेंगे।" नारायण ने उत्तर दिया।

"अच्छा जब आयें, तब सही।" मदन ने कन्धे हिलाते हुए भारी स्वर में कहा, "बातें बहुत हैं और सिर्फ उन्हीं से करने की हैं।"

उसने एक तीखी निगाह नारायण पर डाली, वह कुछ कहना चाहता था, लेकिन कहते कहते रुक गया और सीटी बजाकर पेड़ों की ओर देखने लगा। विक्षिप्त और खिन्न एक चक्कर बरामदे का लगाया और फिर उनके निकट आकर खड़ा हो गया। नारायण की ओर देखा, देखता रहा, आखिर बोला—

'तुमने यह शक्ल क्या बना रखी है ? एकदम रीछ दिखाई पड़ते हो। बाल रखे हैं तो उन्हें सवार भी लिया करो और कपड़े तनिक ढंग से पहना करो। दफ्तर में कोई आये तो अच्छा असर पड़े और पता चले कि इस पार्टी में भी योग्य व्यक्ति काम करते हैं।'

मदन ने अपने भारी कंधे एक बार फिर हिलाये। उसने पैस्टर पहन रखा था, गुदगुदा चेहरा कानों तक लाल था, बाल कुछ इस ढंग से बने हुए थे कि माथे पर कुण्डलिया लहरा रही थीं और उनमें से चमली के तेल की सुगन्ध आ रही थी।

नारायण ने एक भेद भरी दृष्टि उस पर डाली और चुप हो रहा।

"यह क्या पढ़ रहे हो ?" मदन ने पुस्तक की ओर संकेत किया।

"पंडित जवाहरलाल नेहरू का विश्व-इतिहास।"

"जरूर पढ़ो। बहुत अच्छी किताब है। पहले पहल जब यह किताब छपी तो सुनहरी जिल्द थी और 75रु० कीमत। योरुप में हाथों हाथ बिकी। मैंने इसे दस साल हुए तब पढ़ा था।"

मदन की आंखें आत्मगौरव से चमक उठीं और छाती उभर आई।

"माफ कीजियगा इसकी कीमत 75) तो क्या, 15) भी कभी नहीं थी।"

"मैं हिन्दुस्तान की नहीं योरुप की बात कह रहा हूं। वहां के लोग बहुत धनी हैं।'

"आप योरुप भी हो आये हैं ?"

"नहीं हो आये तो क्या ? पढ़े लिखे होने का मतलब ही यह है कि दुनिया भर की बातों का पता घर बैठे चल जाये।"

"और कोई पुस्तक लिखी भी न गई हो, उसे पहले ही पढ़ लिया जाये !"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यही कि अब सन् 1937 है । पंडित जी ने यह पुस्तक सन् 30-32 की जेल में लिखी थी और आपने इसे दस साल पहले पढ़ लिया था ।"

"बस यही तुम्हारी जानकारी है ।" मदन बोला, "उन्होंने पुस्तक नहीं लिखी थी, जेल से अपनी बेटी इन्दिरा के नाम पत्र लिखे थे, बाद में उन्हीं पत्रों को पुस्तक के रूप में छपवा दिया ।"

"नहीं जनाब, पत्रों की पुस्तक नहीं छपवाई, बल्कि पुस्तक लिखी थी और स्टाईल पत्रों का था ।"

"मैं भी तो यही बात कह रहा हूं ।" मदन तुनककर बोला, "मैंने यह कब कहा कि उन्होंने पत्र लिखकर डाक में भेजे थे । वहीं बैठे लिखते रहे । पागल का पागल बना रहा और जेल से बाहर आकर पुस्तक छपवा दी ।" उसने पहली बार प्रह्लाद की ओर देखा, लेकिन उस ओर से भी बात की दाद न पाकर आप ही मुस्कराया और फिर बोला, "तुम किसी बात को समझते तो हो नहीं, व्यर्थ एतराज करते हो । मैंने एम० ए० तक शिक्षा पाई है और इस बीच में इतना पढ़ा है कि कोई दूसरा भारतीय नौजवान क्या पढ़ेगा । वकील, इतिहास और अर्थशास्त्र की कौन-सी प्रमाणिक पुस्तक है जिसका मैंने अध्ययन नहीं किया है । मैं जानता हूं कि मनुष्य परिश्रम से बनता है और मैंने कड़ा परिश्रम किया है ।" तनिक रुककर फिर कहा, "मैं यह भी जानता हूं कि जब तक शिक्षा पूर्ण न हो, मनुष्य जीवन-संघर्ष में सफल नहीं हो सकता......"

सामने पेड़ पर एक कौआ जोर से 'कांव-कांव' कर उठा । नारायण और प्रह्लाद दोनों हंस पड़े । मदन हतप्रभ-सा इधर-उधर देखने लगा और हंसते हुए बोला—

"अच्छा पढ़ो, पढ़ो । पढ़ना बहुत अच्छी बात है ।"

"लेट-एटर" प्रह्लाद ने जोर से कहा । मदन सीढ़ियां उतर रहा था और उसके भारी कदम ठग-ठग पड़ रहे थे ।

11

निर्मता

गनी के सात आठ वर्ष के राजनीतिक जीवन का अधिकांश भाग जेलों में बीता था। वह इस बीच में दो महीने से अधिक कभी जेल से बाहर नहीं रहा। कैद की अवधि अगरचे छः महीने, अथवा इससे भी थोड़ी होती, मगर जब ज़रा मौका मिलता, वह झट गिरफ्तार हो जाता था। अब जबकि पार्टी ने उसे अभिनन्दन-पत्र से सम्मानित किया था, वह नवीं बार एक वर्ष का कठोर दंड भुगत कर रिहा हुआ था। वह दीवारों पर एक सुर्ख पोस्टर चस्पां करते हुए गिरफ्तार हुआ था।

गनी के कब्जे से पोस्टर काफी तादाद में बरामद हुए थे। उसे डेढ़-दो महीने हिरासत में रखा गया, अदालत से दो बार रिमांड लिया गया, लेकिन पुलिस यह पूछने में सफल न हो सकी कि उसे ये पोस्टर कहां से मिले, इन्हें कौन लिखता, छापता और बांटता है। पुलिस ने साम, दाम, दंड हर प्रकार की नीति अपनाई, पर गनी टस से मस न हुआ, जैसे उसमें और पुलिस में हार जीत की होड़ लगी हो। अगर वह हठ का पक्का और सख्त जान था तो पुलिस को भी पत्थर में से पानी निचोड़ लेने का दावा था। अगर गनी को पार्टी का नाम और सम्मान प्यारा था, तो पुलिस को भी अंग्रेज आकाओं का नमक हलाल करना था। पोस्टरों के अतिरिक्त वह और भी बहुत-सी बातें मालूम करना चाहती थी, इसलिए पूछ-ताछ करने वाले एक अफसर ने पैंतरा बदलकर कहा—

"गनी बड़ा बहादुर है, हमने लाख सिर पटका, मगर उसने एक भी

बात न बताई।"

"तभी तो पार्टी इतना विश्वास करती है उसका; कौनसी ऐसी बात है जो उसे मालूम न हो," दूसरा बोला।

"जब यह साहस देखता हूं, तो जी में आती है कि सब कुछ छोड़-छाड़कर इन्ही के साथ काम करने लगूं।"

"करना पड़ेगा साहब। हम क्या आजादी नही चाहते। गनी, तिलक, लेखराम बला के आदमी हैं ये लोग।"

"वाकई साहब, इन लोगों पर देश जितना भी गर्व करे थोड़ा है। तिलक को लाख ढूंढा, पर कही पता न चला।" तनिक रुककर "मेरा ख्याल है कि पार्टी के लोगों को भी उनके बारे में कुछ मालूम न होगा।"

"नही साहब, खास-खास मेम्बरों से कोई बात पोशीदा नही रखी जाती। मैं समझता हूं, गनी को सब मालूम है।"

"मालूम हो तो बताये। हम यह वर्दी उतार कर अभी पार्टी में भर्ती हो जायेंगे।"

"इतनी सी बात बताने मे क्या हर्ज है। हां कामरेड, बताओ वह कहां रहता है?"

"जहन्नुम में।"

गनी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। पुलिस के दोनों अफसर एक दूसरे का मुंह ताकते रह गये, जैसे आपस में मशविरा कर रहे हों कि अगर तिलक को वाकई गिरफ्तार करना है, तो बताओ वहां कौन जाएगा।

पुलिस बड़ी मुस्तैदी से तिलक की खोज कर रही थी। उसकी गिरफ्तारी के लिये बहुत बड़ा इनाम घोषित किया गया था; मगर वह हाथ नही लग रहा था। पार्टी का निर्णय यह था कि वह गिरफ्तार होने के बजाये रूपोश होकर रहे और काम करे। वह अब देहात मे रहता था और किसानों का संगठन करता था। तिलक और लेखराम अशोक के पुराने साथी थे और आतंकवादी दल के सक्रिय सदस्य। साजिश केस मे गिरफ्तार होकर जेल गये थे। वहां पढ़ने और सोचने का अवसर मिला। अशोक की तरह उनका दृष्टिकोण भी बदल गया। रिहा होकर फिर इकट्ठे काम

करने लगे। छ महीने हुए लेखराम के कमरे की तलाशी हुई और उसमें एक पिस्तौल बरामद हुई। लेखराम का कहना था कि पुलिस ने खुद यह पिस्तौल उसके कमरे में रखवाया है ताकि झूठा मुकदमा बनाकर उसे जेल भिजवाया जाये। लेकिन अदालत ने उसके बजाय पुलिस के बयान को सच्चा समझा और उसे शस्त्र मनाही कानून के अन्तर्गत दो साल कैद की सजा देकर जेल भेज दिया।

पार्टी के संगठन की अब सारी जिम्मेदारी अशोक के कन्धों पर आ पड़ी थी। उसे देखना होता था कि कौन व्यक्ति किस काम के योग्य है, किस महाज पर क्या काम हो रहा है और कहां कौन सी त्रुटि है।

× × ×

दिसम्बर का महीना, बारिश होने से और भी ठन्डा हो गया था। अशोक सुबह सबेरे कमरे से बाहर निकला और होठों से हल्की सी सीटी बजाता हुआ सड़क पर चल दिया। इमारत के बाहर फूस की एक झोपड़ी बनी हुई थी, जिसमें खुफिया पुलिस के चन्द सिपाही बैठे आग ताप रहे थे। उनके हाथ ठिठरे हुए थे और शरीर कांप रहे थे, जैसे भीतर की सारी गर्मी समाप्त हो गई और जाड़े ने खून को जमा दिया हो। उन्होंने अशोक को देखा और आंखों ही आंखों में संकेत किया। एक सिपाही अनमना-सा उठा और बड़बड़ाता हुआ अशोक के पीछे पीछे चल पड़ा।

सिपाही अनमना-सा चल रहा था और अशोक के अलावा और किसी चीज की ओर उसका ध्यान नहीं था। एक कुत्ता 'चाव-चाव' करता हुआ दाईं ओर से निकला और सड़क पर पहुंचते ही सिपाही से टकरा गया। उसका पायजामा राख से भर गया क्योंकि कुत्ता रात भर धोबी की भट्टी में सोता रहा था। सुबह जब धोबी भट्टी गर्म करने उठा, तो डन्डा मारकर उसे भगा दिया। अशोक और सिपाही दोनों ने एक दूसरे की ओर घूरकर देखा।

अशोक दोराहे पर पहुंचकर तनिक ठिठक गया, शायद वह सोच रहा था कि दाईं ओर जाय या बाईं ओर, क्योंकि दोनों ही रास्तों से वह अपनी

निर्दिष्ट मंजिल पर पहुंच सकता था। दूसरे ही क्षण वह दाईं ओर घूम गया और लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ ठंडी सड़क तक चला आया। यहां पहुंच कर उसका कदम सहसा फिर सुस्त पड़ गया और आंखों में असाधारण चमक उत्पन्न हुई। अतीत की एक जीवनप्रद स्मृति उसके अस्तित्व को गुदगुदा रही थी और सामने डी० ए० वी० कालेज था, जहा उसने शिक्षा प्राप्त की थी और सामने लोहे का वह जंगला था, जहां खड़े होकर उसके साथियों ने पुलिस अफसर सांडर्स को गोली का निशाना बनाकर अपने राष्ट्रीय अपमान का बदला लिया था। अशोक के कदम अब उस जगह पड़ रहे थे, जहा अंग्रेज अफसर का खून बहा था। वह दफ्तर से निकला ही था और सोचता होगा कि मोटर साईकिल पर सवार होकर पांच मिनट में घर जा पहुंचूगा लेकिन साईकिल पर सवार होने से पहले ही पिस्तौल की एक गोली ने उसके सुखद स्वप्न को समाप्त कर दिया। वह नहीं रहा, लेकिन दफ्तर बदस्तूर कायम था। उसके रिक्त स्थान पर दूसरा अफसर आ गया था। सारा काम उसी ढर्रे पर चल रहा था।

स्निग्ध कल्पना ने अशोक के खून को गर्मा दिया और वह फिर तेज-तेज चलने लगा। उसे अपने साथियो पर गर्व था, उनकी कुर्बानियों पर गर्व था और वह देश की महान जनता पर गर्व कर रहा था, जो इन शहीदों की पुण्य-स्मृति को हृदयंगम किए हुए थी, जो स्वाधीनता संग्राम के लिए संगठित हो रही थी। एक लम्बी तवील, शानदार जद्दोजहद एक बहुत बड़ा परिवर्तन, महान क्रांति उसकी धमनियों में मचल उठी और वह भावावेश मे बहता हुआ-सा आगे बढ़ने लगा। तेज-तेज, प्रसन्न और मन-मगन।

पुलिस का सिपाही भी थोड़े फासले पर उसके पीछे-पीछे चल रहा था। उसे न कहीं जाना अभिप्रीत था और न कोई मंजिल सामने थी। वह निरुद्देश्य एक अदृश्य शक्ति से हांका हुआ-सा—धकेला जाता हुआ-सा चल रहा था। वह सर्दी से सुकड़ रहा था, ठिठुर रहा था और चल रहा था। कितनी विवश यह शक्ति! सर्द हवा से उसकी नाक बजने लगी और वह 'सूं, सूं' हवा को सूंघने लगा, जैसे सूंघकर मालूम कर लेना चाहता हो

ाक अशोक को अभी कितनी दूर और जाना है।

जब अशोक ने सहसा सडक छोड कर ग्वालमडी की एक गली मे प्रवेश किया तो उसने सुख की सास ली। अशोक एक मकान के करीब जाकर रुका, जिसका दरवाजा हाथ लगाते ही यो खुल गया जैसे उसने "खुल सिम-सिम" का मन्त्र पढा हो। पहले कमरे को पार करके वह दूसरे कमरे मे चला गया। यहा मद्धम सी एक लालटेन जल रही थी और उसके प्रकाश मे एक देहाती बूढा आदमी रजाई मे लिपटा हुआ पढ रहा था—

"वई, इ, एस (yes), येस माने हा"

'ताया वई नही वाई कहो।' अशोक ने कमरे मे प्रवेश किया।

"आयो जी, कामरेड! आयो जी, कामरेड!" ताया ने पुस्तक अलग रखकर अशोक का स्वागत किया और उसे अपने समीप चारपाई पर बिठा लिया।

अशोक ने इधर-उधर निगाह दौडाई और बैठते हुए पूछा—

'बिजली क्यो नही जलाई ?"

"रात खराब हो गई।"

'तारासिंह कहा है ?"

"यही कही घूमने या चाय के लिए दूध लेने गया होगा।"

इस मकान मे किसान सभा का दफ्तर स्थित था। तारासिंह आफिस सैक्टरी था। ताया भी उसके साथ चलता था। नाम चेतसिंह था, लेकिन सभी उसे ताया कहते थे और अधिक इस्तेमाल से यही अब उसका नाम पड गया था। कद ठिगना और शरीर सुगठित, उम्र साठ साल से कम न होगी लेकिन स्वास्थ्य अच्छा था। आखो मे कुछ भी दोष नही था जरूरत पडे तो निशाना साध सकता था। दाढी और मूछो के सफेद बालो मे कही-कही काले बाल भी दिखाई देते थे। परिचितो म जब बोलता तो बातो मे व्यगमय हास्य और आखो म मनोहर चमक रहती। अपरिचितो म बहुधा चुप रहता था। देखने मे सरल, भोला भाला और कम समझ दिखाई देता। लगभग बीस वर्ष मलय म पुलिस की नौकरी की थी। उसका इकलौता बेटा दादी के आश्रय म दिन बिता रहा था। बाप-दादा की जो जमीन थी, वह

सम्बन्धियों ने हथिया ली। उसने जमीन वापिस लेने को बहुत कोशिश की। बरसों अदालतों की खाक छानी और रुपया खर्च किया, मगर जमीन वापिस न मिली। मलय की सारी कमाई इसी दौड़-धूप में नष्ट हो गई। जमीन तो नहीं मिली लेकिन वर्तमान व्यवस्था मे दृढ़ अविश्वास पल्ले रह गया। वह उसे बदलने के लिए क्रांतिकारी आन्दोलन में शामिल हो गया।

बेटे की शिक्षा अधूरी रह गई थी। वह भी किसान आंदोलन में काम करता था। उसकी अखंड निष्ठा, लम्बा और स्वस्थ शरीर देखकर ताया की आंखें प्रसन्नता से चमक उठती और वह सोचा करता कि जब यह व्यवस्था बदल जायगी तो उसका बेटा जन-सेना का वीर सिपाही बनेगा। बेटे की पढ़ने में अधिक रुचि नहीं थी, उसकी इस कमी को ताया खुद पूरी कर देना चाहता था और गत एक वर्ष से अंग्रेजी पढ़ रहा था। लेकिन अभी तक नो (no) को नौ (9) कहता था। उच्चारण को जितना सुधारने का यत्न करता था, उतना ही वह बिगड़ता जा रहा था।

"ताया! क्यों मुफ्त मे सिर खपाते हो। जो जवान लकड़ी बन चुकी है उस पर अब अंग्रेजी नहीं चढ़ेगी।" तारासिंह ने एक दिन परिहास में कहा।

मगर ताया यों हिम्मत हारने वाला व्यक्ति नहीं था। दूसरे लाख हंसा करें, वह अंग्रेजी सीखने का निश्चय कर चुका था और सीख कर दम लेगा। उसकी अभिलाषा थी कि मैं अंग्रेजी सीखूं और इस भाषा मे कम्युनिज्म की पुस्तकें पढ़ूं।

अशोक ने एक कागज जेब से निकाला, नजर उस पर डाली फिर उसे फाड़ते हुए ताया से कहा—"मैं आज ही बाहर जा रहा हूं। बैठने के लिये समय नहीं है। तारासिंह से कहना कि वह मनहेडा की किसान कांफ्रेंस में पहुंच जाये, कोई आवश्यक कागज-पत्र हो तो साथ लेता आये।"

ताया दीवार से टेक लगाये बैठा था। उसके सिर पर एक खिड़की थी, अशोक ने उसे खोला और कागज के पुर्जे बाहर फेंककर खिड़की दोबारा बन्द कर दी। वह फिर बोला—"एक बात और सुनो! पार्टी में

एक नया रंगरूट भर्ती होना चाहता है, शायद तुम उसे जानते हो। दफ्तर के नीचे किराये के जो छोटे-छोटे कमरे हैं, वहां डेढ़-दो साल से रहता है। कभी किसी सयासी सरगर्मी मे हिस्सा नही लिया, राजनीति की बात पढने समझने में भी इसकी रुचि नही। जानेक्रांति का यह प्रेम अब अचानक उसके मन म कैसे पैदा हुआ ?"

"वही तो नही जिसके मुह पर चेचक के दाग हैं और नाक चपटी है।' ताया ने तनिक सोचकर कर कहा।

"बिलकुल ठीक।" अशोक ने समर्थन किया।

'और उसका नाम" ताया न दाढी खुजलाते हुए सोचना शुरू किया, "याद नही आता, मन मे घूम रहा है। है कुछ भिखारी राम सा।"

अशोक हसा और ताया का कन्धा थपथपाते हुए बोला—' खैराती-राम!'

हा, हा। खैरातीराम!" ताया को भी याद हो गया—"खैरातीराम हुआ या भिखारी राम एक ही बात है। मैं उसे जानता हू।'

बस फिर ध्यान रखना।"

अशोक जब मकान स बाहर निकला तो खुफिया सिपाही कागज के पुर्जे बटोरने मे व्यस्त था। ताया अशोक को छोड़ने दरवाजे तक साथ आया। जब अशोक ने विदा मागने के लिए हाथ उठाया, तो वह बोला—'दो मिनट रुको। बेचारे को कागज तो चुन लेने दो।"

सिपाही का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। उसने कागज के पुर्जे झट-पट जेब मे डाल लिये और वह खिन्न भाव से मुस्कराया।

पड़ोस के मकान से एक स्त्री बाहर निकली और बहुत सा कूड़ा करकट गली म ढेरी करके लौट गई। एक मुर्गा जो गली मे घूम रहा था, इस ढेर को पकड़ा और चोंच से कुरेद कुरेद कर खुराक तलाश करने लगा।

: 12 :

टी-पार्टी

म्युनिसिपल ग्राउंड में टी-पार्टी का प्रबन्ध किया गया था। नगर कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी लाला देसराज दरवाजे पर खड़े मेहमानों का स्वागत कर रहे थे। जब कोई बड़ा आदमी आता तो वे हाथ कुहनियों तक जोड़कर दूर ही से नमस्ते करते और उसके साथ-साथ चलकर तकल्लुफ से सजाई गई बड़ी मेज पर बैठा आते। और जब कोई सामान्य व्यक्ति अथवा वालंटीयर आता तो बड़ी मेज के इधर-उधर बैठने का संकेत कर देता। मेजों और कुर्सियों की कमी नहीं थी, बहुत बड़े पैमाने पर व्यवस्था की गई थी।

पंडित बदरीनाथ ने असेम्बली की सदस्यता से इस्तीफा दिया था। वे सदस्य तो निर्वाचित हो गए थे; लेकिन हर वक्त परेशान रहते थे। कांग्रेस के रचनात्मक-कार्य के लिए उन्हें तनिक भी अवकाश नहीं मिलता था, बस पार्लमेंटरी बखेड़ों में उलझ कर रह गये। वे इस प्रान्त में सबसे बड़े गांधी-भक्त थे, उन्होंने देश-सेवा के लिए जीवन अर्पित कर रखा था। अगर वे साधारण कारोबारी आदमी बनकर सांसारिक धन्धों में उलझ जायें और रचनात्मक-कार्य की ओर कोई ध्यान न दें, तो कांग्रेस का क्या बनेगा? देश का क्या बनेगा? यह प्रश्न उनकी आत्मा को प्रतिक्षण कोसता रहता था। जब अंतर्वेदना असह्य हो उठी, तो उन्होंने गांधी जी को एक्सप्रेस तार भेजा और पूछा कि मैं असेम्बली की सदस्यता से त्यागपत्र दे कर पूरा समय रचनात्मक कार्य में लगाना चाहता हूं, आपकी क्या राय है?

जब गाधी जी का उत्तर आया तो उससे राय निकाली गई। उन्होने लिखा था—'मैं कुछ नही कह सकता, हर एक आदमी अपनी बाबत आप बेहतर समझ सकता है। हम अन्तरात्मा की बात सुननी चाहिए, जो अन्तरात्मा कहती है, वही दुरुस्त है। मैं आपका मार्ग नही रोकूगा।' पडित बदरीनाथ की अतरात्मा वही कहती थी, जो गाधी जी ने लिखा था और गाधी जी ने ठीक वही लिखा था, जो बदरीनाथ की अतरात्मा कहती थी। अतरात्मा की—अत करण की बात कभी टाली नही जा सकती, अतएव उन्होने त्याग पत्र दे दिया।

सेठ रतनचन्द ने पडित बदरीनाथ के इस महान त्याग के उपलक्ष में टी-पार्टी का आयोजन किया था। काग्रेसियो को तो आना ही था, उसके अतिरिक्त बैको और इन्श्योरेन्स कम्पनियो के डायरेक्टर, पत्रकार, अहरारी, अकाली और हिन्दूसभाई नेता और शहर भर के भद्र जनो को निमत्रित किया गया था। शहर मे हर रोज पार्टिया होती रहती हैं, लेकिन उनमे सिर्फ खाना पीना ही अभिप्रेत होता है। उनका और कोई उद्देश्य नही होता। इस पार्टी मे भी खाने-पीने की व्यवस्था अत्युत्तम थी। फल, मिठाई, चाय और आईसक्रीम किसी चीज की कमी नही थी। पर यह सब बातें गौण थी, इस समारोह का एकमात्र उद्देश्य काग्रेस के महान् आदर्शों का प्रचार था। पडित बदरीनाथ ने इतना महान् त्याग किया था इसकी जितनी अधिक प्रशसा हो उतनी थोडी। उनकी कर्त्तव्य निष्ठा, देश भक्ति और सत्य पर दृढ रहने की तत्परता दूसरो के लिए अनुकरणीय थी। स्वार्थ त्याग और कर्त्तव्य निष्ठा सिर्फ काग्रेस तक ही सीमित क्यो रहे, यह सबके लिए अभीष्ट है और सब को साथ लेकर ही देश आगे बढ सकता है।

जनसाधारण कुछ पहले आ गए थे। नेता ठीक समय पर पधारे। मोटरो और तागो की भीड लग गई। लाला देसराज का काम असामान्य रूप से बढ गया। वे फिरकी की तरह घूम रहे थे और घूमने के साथ साथ जो बार-बार कुहनियो तक हाथ जोडने पडते थे, वह योग की एक कठिन और असाध्य क्रिया थी, पर वे बराबर किए जा रहे थे। विचित्र कौशल

था। अनुपम अभ्यास था !

सहसा सब की आंखें दरवाजे की ओर उठ गईं, स्वयं पंडित बदरीनाथ का शुभागमन हुआ था। सेठ रतनचन्द ने दौड़कर उन्हें बाहुपाश में भर लिया और बड़े तपाक से अपनी बगल में ला बिठाया। इसी समय मदन भी आया और लाला देसराज के भृकुटि-संकेतों की परवा न करते हुए बड़ी मेज पर आ विराजमान हुआ। लाला जी को यह बात बहुत अखरी; लेकिन नाक भौं चढ़ाकर रह गए। बड़ी मेज पर अब सिर्फ यही एक कुर्सी खाली थी, जो उन्होंने अपने लिए सुरक्षित रख छोड़ी थी।

पार्टी शुरू हुई। लाला देसराज बड़ी मेज की बगल में एक छोटी मेज पर आ बैठे। गोपाल उन्हें अपने करीब बिठाते हुए मुस्कराया। इस मुस्कराहट में प्रतिकार, व्यंग और विद्रूप का मिश्रण था। कारण, लाला जी ने गोपाल को बड़ी मेज पर बैठने से मना किया था। अब उन्हें अपने पास बैठते देखकर वह बहुत खुश था।

"लीडर साहब आ गये। खूब मजे रहेंगे। जो चीज मांगेंगे फौरन आयेगी। क्यों न लाला जी ?" गोपाल ने मुस्कराते हुए कहा।

"जरूर" लाला जी ने आते ही सेवा-कार्य सम्भाल लिया था। गोपाल के प्याले में चाय उंडेलते हुए बोले, "कहो, तो तुम्हारे आगे-पीछे चीजों की दीवार चुनवा दें।"

गोपाल ने होंठों पर हाथ रखकर हंसी को बिखरने से रोका। लाला देसराज ने सेवा-कार्य से निपट कर चाय की एक चुस्की ली और फिर कहा-- "पंडित जी बस पंडित जी हैं। ऐसे ही लोगों के महान त्याग ने कांग्रेस को महान् बनाया है।"

सब ने गर्दनें हिलाकर लाला जी की बात का समर्थन किया।

"लाला जी, आपने भी तो कुछ कम त्याग नहीं किया।" गोपाल ने गम्भीरता से कहा।

"हम से भी जो बन पड़ता है, कर रहे हैं। पर इन लोगों के पांव की धूल हैं, आप लोगों के दास हैं।" लाला जी ने विनम्रता प्रकट की।

"अच्छा लाला जी।" गोपाल के सामने बैठे एक नौजवान ने पेस्टरी

की ओर हाथ बढाते हुए कहा—"आपने कांग्रेस मे काम करना कब से शुरू किया था ?"

गोपाल ने कनखियो से नौजवान की ओर देखा, उसका नाम बूटासिंह था।

"वैसे तो जब से होश सभाला, तभी से मन मे देश-भक्ति की लगन थी।" लाला जी ने अपने हाथ का क्रीम-रोलर वापस रख दिया और बात जारी रखी, "जब हम स्कूल मे पढते थे, लोकमान्य तिलक, दीनबन्धु सी० आर० दास और पजाब केसरी लाला लाजपतराय प्रसिद्ध नेता थे। हम उनके नाम सुनते तो बडे खुश होते, मन मे उमग उठती कि हम भी कुछ करें और उनके पद-चिह्नो पर चलें। अब सोचता हू तो इसी निष्कर्ष पर पहुचता हू कि यह पूर्वजन्म के सुसस्कारो का प्रभाव और भगवान की कृपा ही थी कि मैं दूसरे नौजवानो की तरह व्यसनो मे न पडकर देश-सेवा की ओर प्रेरित हुआ।" लाला जी ने दार्शनिक भावुकता से कधे हिलाये और आखें मिचका कर आगे कहा, "फिर देश के इतिहास मे वह महान् समय आया जब एक पवित्र आत्मा—महात्मा गाधी का नाम हिमालय से रासकुमारी तक गूज उठा। असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ। हमने भी कॉलेज छोड दिया। उस समय मैं एफ०ए० म पढता था। सब विदेशी वस्त्र जलाकर खद्दर धारण किया। खद्दर भी यह नही, जो आप लोगो ने पहन रखा है। अब तो यह मशीनी कपडे की तरह महीन और मुलायम है। उस समय हमने जो खद्दर पहना था, वह इतना मोटा और खुरदरा था कि उससे शरीर छिलता था।"

लाला जी ने यो मुह बिचकाया, जैसे बात कहते कष्ट हो रहा हो, जैसे उस समय खद्दर पहनने से शरीर पर जो खराशें आई थी, उनमे टीस उठी हो।

"खद्दर पहनना देश-भक्ति तो उस समय थी।" बूटासिंह ने लाला जी की ओर श्रद्धा और आदर से देखा।

लाला जी की गर्दन गर्व से ऐंठ गई; पर पहले से भी अधिक विनम्र स्वर मे बोले—

"देशभक्ति अब भी कम नहीं। मेरा मतलब है कि उस समय खद्दर बहुत मोटा होता था और बहुत कम लोग पहनते थे। हमने वह खद्दर रंगा कर पहना था और साधुओं का सा भेस बनाकर कांग्रेस का प्रचार करने घर से निकल पड़े थे··"

"हिन्दुओं से कहीं ज्यादा फर्ज़ मुसलमानों पर आयद होता है कि वह वतन की आज़ादी के लिए लड़ें।"

लाला जी की बात इस ऊँची आवाज़ में डूबकर रह गई। लोगों ने घूमकर देखा, बड़ी मेज़ पर ख्वाजा नूरुद्दीन देश-भक्ति का प्रचार कर रहे थे। वे एक संक्षिप्त व्यक्ति थे, पतला-दुबला शरीर, छोटा-सा सिर, गाल अन्दर को पिचके हुए, दमे के रोगी। कांग्रेस क्षेत्र में कौन व्यक्ति उनसे परिचित न होगा। वे न सिर्फ हर जलसे में भाषण देते थे, बल्कि एक स्थानीय अंग्रेज़ी अखबार में उनके बयान भी प्रायः छपते रहते थे, जिनमें मुसलमानों को कांग्रेस मे भर्ती होने की सीख दी जाती थी। कांग्रेस के किसी भी समारोह को सफल बनाने के लिए उनकी उपस्थिति अनिवार्य समझी जाती थी और लोगों को उनकी उपस्थिति का ज्ञान आप ही आप हो जाता था क्योंकि अपनी बात कहने में वह फेफड़ों का सारा ज़ोर लगा देते थे। उनका एक-एक शब्द फिज़ा में गूँज उठता था। इस पार्टी में उन्होंने शायद यह पहली बात कही थी और आस-पास की मेज़ों पर बैठे हुए सभी लोग उनकी ओर आकर्षित हो गये थे।

"ख्वाजा साहब! कोई और चीज़ आये?" लाला जी ने टोका।

"मेहरबानी है।" ख्वाजा साहब ने जल्दी से कहा और रसगुल्ला मुंह में रखकर हाथ फिर प्लेट की तरफ बढ़ाया। बात करने में जो हर्ज हुआ था, अब उसकी पूर्ति होने लगी।

"लाला जी, अब यह सीट किसे मिलेगी?" गोपाल ने पूछा।

"अभी कुछ पता नहीं। पहले दरख्वास्तें ली जायेंगी, फिर बोर्ड फैसला करेगा।" लाला जी ने उत्तर दिया।

"वैसे आप किसे हक़दार समझते हैं।"

"हक़दार वही है, जिसने कांग्रेस के लिए अधिक त्याग किया है।"

लाला जी ने कहा और आखें झपका कर निष्काम भाव से इधर-उधर देखने लगे ।

' मैं समझता हूँ कि अब आप ही सबसे ज्यादा हकदार है । आपकी देश सेवा और आपका त्याग सबसे अधिक है ।"

' हम तो सेवक हैं ।" लाला जी निर्लेप भाव से मुस्कराये, "कांग्रेस जिस सेवा के योग्य समझेगी, हम करने को तैयार हैं ।"

सहसा शोर मचा । परे किसी मेज पर कोई झगड़ा हो गया था । लोग उठ-उठकर उस ओर जाने लगे । गदमी रग और भरे शरीर का एक व्यक्ति, जिसने तग पायजामा और अचकन पहन रखी थी, क्रोध के मारे मुह से झाग उगल रहा था और उसकी पगडी जमीन पर जा गिरी थी ।

"कमीना कहीं का ।" दूसरी ओर एक अग्रेज महिला बिफरी खडी थी ।

वह औरत अपने पति के साथ अभी आई थी और आते ही उस मेज पर पहुचकर अचकन वाले व्यक्ति से उलझ गई ।

"आप ही का नाम मिस्टर शिवदयाल है ? ' महिला ने पूछा ।

"जी हा, फरमाइये ।" उत्तर मिला ।

"और मेरा नाम मेरी डोरथा है ।"

शिवदयाल ने सुना और चट से एक चपत उसकी बाएँ गाल पर आ पडा । वह बौखला गया । सम्हलने से पहले ही एक और चपत दूसरे गाल पर पड चुका था ।

वह एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादक था । पिछले दो महीने से मेरी डोरथा के विरुद्ध लिख रहा था कि वह आवारा और दुराचारिणी है, फला-फला व्यक्तियो से उसका अनैतिक सम्बन्ध है। पति की आजीविका—का कोई साधन नहीं, औरत की कमाई पर गुजर-बसर करता है । जिन कुल्टाओ को अपने देश मे कोई नही पूछता, वे हिन्दुस्तानियों के साथ भाग आती हैं ।"

मेरी डोरथा ने आज भरी महफिल मे इस अपमान का बदला लिया था । शिवदयाल से कुछ कहते-करते न बन पडा । इज्जत धूल मे मिल

गई थी। यह अपमान उस औरत ने किया था, जिसे वह दुराचारिणी, कुल्टा, आवारा और न जाने क्या कुछ लिखता रहा था। उसके तन में आग लगी हुई थी और क्रोध के मारे झाग उगल रहा था।

मेरी डोरथा और उसका पति जिन कदमों आये थे, उन्ही कदमों लौट गये। और लोग फिर अपनी-अपनी जगह पर जा बैठे।

खाने का प्रोग्राम खत्म हो चुका था। दूसरा असल प्रोग्राम शुरू हुआ। बहुत से लोगों ने पंडित बदरीनाथ की सेवाओं की शत-शत कोटि प्रशंसा की और इस महान् त्याग के लिये उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। बोलने वालो में ख्वाजा नूरुद्दीन प्रमुख थे। उन्होने पडित जी को श्रद्धांजलि अर्पित करने के अलावा यह विश्वास भी दिलाया कि मुसलमान कांग्रेस के साथ हैं और रहेगे। मुस्लिम लीग रईसो, नवाबों और जागीरदारों की जमात है, सरकार की पिट्ठू है, उसे कोई नही पूछता।

अंत मे महाशय बदरीनाथ ने सेठ रतनचन्द और दूसरे लोगों को धन्यवाद देते हुए कहा—"मैं किस योग्य हू। मैं तो गांधी का अकिंचित सेवक हूँ और ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि मैं इससे भी अधिक अंधविश्वास के साथ उनका भक्त बना रहूं। मैंने यह इस्तीफा उन्ही के आदेश से दिया है…"

लाला देसराज ने ताली बजाई और फिर बहुत सी तालियों से वातावरण मुखरित हो उठा।

: 13 :

बुक़रात

राजेन्द्र और पद्मा एक ही कालेज मे पढते थे, लेकिन वे सहपाठी नहीं थे, राजेन्द्र दो साल आगे था। यो वे एक कालेज मे पढते हुए भी शायद एक-दूसरे से अपरिचित रहते, राजनीतिक कार्य ही एक ऐसा माध्यम था, जो उन्हे एक-दूसरे के निकट ले आया। वे स्टूडेंट यूनियन के सगठन मे सक्रिय भाग लेते, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को बदलने के मनसूबे बाधते और उज्ज्वल भविष्य के स्वप्न देखते थे। इस प्रकार एक ही वातावरण मे रहते, एक ही ढग से सोचते और एक ही प्रकार के स्वप्न देखते देखते उनमे घनिष्ट सम्पर्क स्थापित हो गया। लोग जिसे प्रेम कहते है, उसका बीजारोपण यही से होता है। जैसे जैसे विचारो मे प्रौढता आती है, बीज मे अकुर फूटता है, कोपलें निकलती हैं—यह सुन्दर पौधा विकसित होता है और उसकी मृदुता और मनोहरता आखो से झाकने लगती है।

राजेन्द्र और पद्मा एक-दूसरे को प्रेम करते हैं। यह बात किसी से छिपी न रही।

शीला भी जानती थी और प्रसन्न थी। उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि उनका यह प्रेम फले-फूले। पिता ने अपने पत्र मे लिखा था कि पद्मा को हर तरह की स्वछन्दता और स्वतन्त्रता प्राप्त हो। वह पढ़ लिख कर सियानी हो और अपना वर आप तलाश करे। स्वाभाविक बात है कि मनुष्य जब अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय करता है तो उसके परिणाम से

हर तरह सन्तुष्ट रहता है, किसी भी कठिन परिस्थिति में उसके माथे पर बल नही पडता। प्रचलित विवाह-प्रथा समय के अनुकूल नहीं थी। उससे विवाह का उद्देश्य पति-पत्नी का विकास पूरा नही होता था।

पिता ने जो कुछ लिखा था, शीला ने उससे कहीं अधिक अपने अनुभव से सीखा था। और अनुभूति सार्थिक सत्य है, उसे कोई झुठला नहीं सकता। प्रकाश का उदाहरण उसके सम्मुख था। एक दिन भी ब्याह का सुख नही देखा, ब्याही जाने के बावजूद वह कुंवारी थी। अगर पद्मा और राजेन्द्र एक-दूसरे को प्यार करते हैं, तो शीला को कोई आपत्ति नहीं थी, वह प्रसन्न थी। पद्मा को देखकर राजेन्द्र का चित्र आप ही आप उसके कल्पना-पट पर उभर आता, और वे उन्हें दूर—बहुत दूर, एक सुन्दर उपत्य में फूलों से लदे-फुदे मुस्कराते हुए देखती। वह बैठी सोचती रहती, यह चित्र और यह उपत्य निकट आ जाती और वह उल्लास में भर उठती।

उसने अपने ब्याह की ऐसी ही कल्पना की थी—ऐसा ही चित्र बनाया था। उसने एक ऐसे वर की कामना की थी, जो देश-भक्त और वीर हो और अंग्रेज से भाई का बदला लेने में उसका सहयोगी बन सके।

जब कहीं जाना होता राजेन्द्र और पद्मा साथ-साथ जाते। अगर किसी कारणवश पद्मा कभी अकेली आती, तो नारायण झट पूछता—

"सुनाओ पद्मा, राजेंद्र को कहां छोड़ आईं?"

पद्मा एक बार लजाई पर धीरे-धीरे लजाने के बजाय मुस्कराने लगी। अब वह नारायण के स्वभाव से भली-भांति परिचित हो चुकी थी। उसका जीवन हमउम्र सखियों में गुजरा था, मजाक करना और सहना उसकी आदत बन गई थी। फिर जब शीला के साथ घर पर रहने लगी तो और भी खुला और स्वच्छंद वातावरण मिला। कालेज में वह लड़कों के साथ पढ़ती और उनके साथ राजनीतिक कार्यों में भाग लेती थी। लड़कियों की तरह लड़के भी जीवन-संगी और हमराही थे। घरों में बन्द अलग-अलग रहने वाली लड़कियों को लड़कों से बात करने में जो संकोच होता है, वह उसे नहीं था। और नारायण तो एक मुंह-बोली सखी के सदृश उसके बहुत

निकट था। दोनों में हंसी मजाक और आत्मीयता थी।

"पद्मा! यह बताओ कि इतने लड़कों में तुम्हें राजेंद्र ही क्यों पसंद आया?" एक दिन नारायण ने पूछा।

'और क्या तुम्हें पसन्द करती?" पद्मा ने आंखें तरेर कर उत्तर दिया।

"कहने का मतलब तो यही था।"

"कभी आईने में शक्ल भी देखी है?"

पद्मा हंसने लगी और नारायण भी हंस पड़ा।

'शक्ल की पख तो तुमने योंही लगादी। राजेंद्र में कोई और गुण है जो शायद मुझ में नहीं और तुम मुझे इसलिए बताना नहीं चाहती कि कहीं वह गुण मैं अपने अन्दर पैदा न कर लूं।"

"कहे देती हूं।" पद्मा चचल हो उठी, "लाख गुण पैदा कर लो, पर मेरी ओर से मुंह धो रखो।"

बड़े दिनों की छुट्टियां थीं। महिला कांग्रेस के सिलसिले में शीला दिल्ली गई थी। पद्मा को भी साथ जाना था, लेकिन जुकाम और ज्वर आ जाने के कारण न जा सकी। शीला को लेडी वालंटीयरों के संगठन-कार्य से दिल्ली के अतिरिक्त दो चार जगह और भी जाना था, इसलिए छुट्टियां खत्म होने से पहले लौटने की सम्भावना नहीं थी। पद्मा ने अपनी एक सखी उर्मिला को पास बुला लिया था। दोनों छत पर बैठी धूप सेंक रही थीं कि नीचे दस्तक हुई।

"कामरेड पद्मा!"

पद्मा ने आवाज़ पहचान ली। वह दौड़कर नीचे उतरी और किवाड़ खोलकर नारायण को ऊपर ले गई। उर्मिला ने नमस्कार कर उसका अभिवादन किया।

"अच्छा तुम भी यहीं हो, सेहत तो ठीक है ना?" नारायण ने पूछा।

"मैं तो ठीक हूं। पद्मा को तीन-चार दिन से जुकाम था, तुमने खबर तक नहीं ली।"

"मालूम ही नहीं हुआ, खबर क्या लेता! और फिर जुकाम भी कोई

बीमारी है।" नारायण पद्मा की ओर देखकर मुस्कराया, वह भी मुस्कराई और नारायण ने फिर उर्मिला की ओर पलट कर पूछा—

"तुफैल और मक्खनसिंह कैसे हैं?"

"अच्छे हैं।"

उर्मिला का रंग काला, आंखें छोटी-छोटी और नाक चपटी थी, होंठों की कोमलता और उन पर यदा-कदा प्रकट होने वाली मुस्कान मुखाकृति को मनोहर और आकर्षक बनाती थी। वह पार्टी के गुप्त छापेखाने में, जहां क्रांतिकारी साहित्य छपता था, काम करती थी। और वह यह काम इतनी लगन से करती थी कि छापेखाने से बाहर दुनिया में क्या हो रहा है इससे कोई दिलचस्पी नहीं थी। एक बार कुछ आवश्यक सामग्री खरीदने के लिए पार्टी के पास पैसा नहीं था, उसने अपने सब आभूषण उतार कर दे दिये थे, अब सिर्फ सादगी ही उसका गहना थी।

उसके माता-पिता हिन्दुस्तानी ईसाई थे और दक्षिणी भारत के रहने वाले थे। अंग्रेज़ी राज्य में ईसाई मत में परिणत होने वालों को सरकारी नौकरियां मिलती थी। उर्मिला के दादा ने कुछ आर्थिक कठिनाईयों और कुछ रूढ़िगत सामाजिक बन्धनों से तंग आकर ईसाई मत ग्रहण किया था। आर्थिक अवस्था तो अवश्य सुधर गई, लेकिन हिन्दू समाज उसे पहले से भी अधिक घृणा करने लगा। उसने इस समाज से सम्बन्ध विच्छेद करके अपना एक छोटा-सा समाज अलग बसा लिया था। उसका बड़ा लड़का एडवर्ड श्यामदास पढ़-लिखकर जवान हुआ और सरकारी नौकरी के सिलसिले में तब्दील होकर पंजाब आ गया। जिन दिनों राजनीति में वामपक्षी विचार-धारा फैल रही थी और वामपक्षी दल स्थापित हो रहे थे, उन दिनों श्यामदास लाहौर में रहता था। उर्मिला एडवर्ड श्यामदास की लड़की थी। एक बार उर्मिला और उसके भाई एडवर्ड रामदास की भेंट अशोक से हुई। उसके सामाजिक विचार इतने स्पष्ट और बात करने का ढंग इतना सीधा और संवेदनापूर्ण था कि दोनों इस संक्षिप्त भेंट में उससे बहुत अधिक प्रभावित हुए। यों अशोक से सम्बन्ध स्थापित हुआ और सम्पर्क जितना बढ़ता गया, उतना ही उनकी भटकती आत्माओं को सांत्वना और शान्ति

प्राप्त होती रही। बाप-दादा ने आर्थिक कठिनाइयों और सामाजिक विडम्बना से मुक्त होने के लिए जो मार्ग अपनाया था, वह उन्हें पसन्द नहीं था। ईसाई सम्प्रदाय मे छोटे-बड़े का अन्तर काले-गोरे का जाति-भेद उन्हे बहुत अखरता था। यहा भी वही सदियो पुराना वातावरण था। सभ्यता की विडम्बना, कृत्रिमता और खोखलेपन के मारे दम घुटा जाता था। वे गोरे बन सके थे और न कालो से कोई सामाजिक और सास्कृतिक सम्बन्ध रह गया था। शांति और सहृदयता का अभाव था। ईसा के पवित्र नाम पर हविस परस्ती और धर्म की आड मे साम्राज्य का प्रचार होता था। उर्मिला और रामदास को नौजवान रुहें इस वातावरण से भाग जाने के लिए छटपटाया करती थी। असतोष ने शून्य को जन्म दिया, जो दिन-दिन बढता जा रहा था। अशोक ने उन्हे नव समाज, नव मानव और नव-युग के सुनहले सपने प्रदान किये थे। इन सपनो को सार्थक करने के लिए वे दिन रात राजनीतिक कार्य मे रत रहते थे। उन्हे सघर्ष म—आदोलन को आगे बढाने मे आध्यात्मिक आनन्द का आभास होता था। बाप तब्दील होकर यू० पी० चला गया था, मगर बहन भाई का घर से कोई सम्पर्क नही रह गया था—उर्मिला लाहौर मे और रामदास दिल्ली मे पार्टी का काम कर रहा था।

उर्मिला मे प्रेस का सब हाल पूछ लेने के बाद नारायण पद्मा से मुखातिब हुआ—

"मैं तुम्हे यह शुभ समाचार सुनाने आया हू कि राजेंद्र का पत्र आया है और उसने ··"

"दो पुस्तक मगवा भेजी हैं।" पद्मा ने उसके मुह की बात छीन ली।

"इसका मतलब है कि पत्र तुम्हारे पास भी आया है ?"

"जी हा, आया है।" पद्मा ने मेज पर पडी हुई एक कापी मे स राजेन्द्र का पत्र निकालकर दिखाया।

"पुस्तक मैं तुम्हें दे दूगी। मगर यह बताओ कि तुम्हारे पत्र मे और क्या लिखा है ?"

"क्या घर के काम काज के लिए नौकरानी रख ली है?" उसने फिर पूछा।

"जी हां।" पद्मा ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया "दीदी मुझे काम में हाथ नहीं लगाने देती, इसलिए सब कुछ उन्हें ही करना पड़ता था। अब इसे रख लिया है ताकि उन्हें कष्ट न हो।"

"बहुत अच्छा किया आपने।" मदन ने भारी कंधे हिलाकर कहना शुरू किया, "आदमी को यह देखना होता है कि वह अपने समय का सर्वोत्तम प्रयोग कैसे कर सकता है। मान लीजिये चाय बनाने में आपका आध घण्टा खर्च होता है अगर आपके बजाय आपसे कम योग्यता का कोई दूसरा व्यक्ति—मेरा मतलब है जिसका काम ही भोजन आदि बनाना है—आपके लिए चाय तैयार कर दे, तो आप उस समय में एक अच्छा भाषण तैयार कर सकती हैं, कोई सुन्दर लेख लिख सकती हैं, पढ़ सकती हैं अथवा थके हुए दिमाग को आराम दे सकती हैं। चाय बनाने के बजाय इस तरह आप सोसाईटी के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होंगी।" उसने भारी कंधे एक बार फिर हिलाये और छाती तान कर कहा—"अर्थशास्त्र का यह एक सामान्य नियम है, जो प्रत्येक व्यक्ति को भली प्रकार समझ लेना चाहिये।"

नारायण कुर्सी पर पांव रखे और घुटनों में हाथ दिये चुप बैठा था। लेकिन पद्मा यों सिर हिला रही थी जैसे कह रही हो कि अर्थशास्त्र के इस सुनहले नियम को और किसी ने चाहे समझा हो या न समझा हो, मैंने अवश्य समझ लिया है।

कुछ क्षण मौन रहा। मदन मेज पर पड़ी कापी को अनमना-सा खोलता और बन्द करता रहा।

"क्या नाम है इसका?" उसने फिर पूछा।

"सुन्दरी।" पद्मा बोली और नारायण ने कनखियों से उसकी ओर झांका।

"वाह, क्या खूब नाम है। मानना पड़ता है कि है वाकई सुन्दरी।" मदन ठहाका मारकर हंसा, उसके फूले हुए गाल और फूल गये, पहले

से कहीं अधिक लाल हो गये। उसे हंसता देखकर पद्मा केवल मुस्करा दी और उस मुस्कराहट में चंचलता थी। मदन ने इसे अपनी बात की दाद समझा। मगर नारायण उसी तरह चुप बैठा रहा। वह दार्शनिकता से प्रभावित हुआ और न हास्य ने उसे गुदगुदाया। यह उपेक्षा-भाव मदन को अखरा।

"सुनाईये हज़रत, आप क्या सोच रहे हैं?" उसने नारायण से पूछा।

"मैं" नारायण ने मानो नींद से जगते हुए शरीर को जुंबिश दी, बड़े इत्मीनान से पांव ज़मीन पर रखे और कुहनियां मेज़ पर टेक कर कहा—"मैं सोच रहा था कि आप जिस अर्थशास्त्र की बात कर रहे हैं। वह बुर्जुआ अर्थशास्त्र है—मेहनत करने वालों को दास बनाये रखने का सिद्धान्त है।"

मदन हंसा, व्यंग्य और विद्रूप की हंसी, और पलटकर पद्मा से कहा—

"आजकल के नौजवानों में यह एक नया फैशन चल पड़ा है कि जो बात समझ में न आये, उसे झट बुर्जुआ कह दो।"

"मिस्टर मदन!" नारायण ने दृढ़ स्वर में कहा, "बेसमझी की बात मैंने नहीं आपने की है।"

"इसका मतलब है कि मैं बेसमझ हूं।" मदन ने उत्तेजित होकर पद्मा से शिकायत की, "देखा आपने इन्हें कल्चर्ड सोसाइटी में बात करने का सलीका तक नहीं आता।"

"न आये, मामूली बात है।"

"किसी को बेसमझ कह देना आपके नज़दीक मामूली बात है?" मदन ने आक्रोश प्रकट किया।

नारायण हंसा। मदन ने अपने आप उसका हाथ अपनी दुखती रग पर रख लिया था और वह उसे ज़ोर से दबा देना चाहता था।

"आप आपे से बाहर क्यों हो रहे हैं? बेसमझ मैंने आपको कहा नहीं, अगर आप समझते हैं, तो ठीक है।"

"बेसमझ न कहा हो, लेकिन जो कुछ कहा उसका अर्थ तो यही था ?"

"यह तो मैं अब भी कहूंगा कि बेसमझी की बात आपने की है।" नारायण ने 'बेसमझी' पर खास जोर दिया, "आपने जिस सिद्धान्त की बात की है, वह सदियों पुरानी है। प्लाटो की रिपब्लिक में दर्ज है। पूंजीवादी लेखक इसे वर्तमान व्यवस्था और वर्ग-विभाजन को उचित ठहराने के लिए इस्तेमाल करते हैं। फिर बताइये यह बुर्जुआ सिद्धान्त हुआ कि नहीं ?"

मदन ने ऐसे मुंह बनाया, जैसे कह रहा हो, मुझे तुम्हारी बात ही सुनना पसन्द नहीं है। लेकिन नारायण सुनाना चाहता था, फिर बोला—"बुर्जुआ कहना नौजवानों का फैशन है, क्या आप नौजवान नहीं ?"

"मैं नौजवान अवश्य हूं।" मदन ने दायें हाथ की मुट्ठी भींचकर मेज पर पटकते हुए कहा, "मगर मेरे कंधों पर बूढ़ों का गम्भीर और प्रौढ़ सिर है।"

"यह तो वाकई ठीक है।" पद्मा की आंखों में चंचलता मुस्करा उठी।

मदन ने उसकी ओर देखा और खुश होकर बोला—"मैंने सुकरात, प्लाटो और अरिस्टोटल सबका दर्शन पढ़ा है। प्लाटो ने एक जगह लिखा है, "सुन्दरता स्वर्ग में रहती है, सुन्दर वस्तुओं में वास करने कुछ देर के लिए इस संसार में आती है। जब नश्वर वस्तुओं का विनाश होता है, तो सुन्दरता स्वर्ग में लौट जाती है।"

"प्लाटो ने तो लिखा है, पर इस बारे में आपका क्या मत है ?"

"विद्वानों के लिखे में मीन-मेख निकालना मूर्खों और सिर-फिरों का काम है।" वह अपनी बात नारायण के बजाय पद्मा को सुना रहा था।

"इसका यह मतलब हुआ कि जब एक फूल मुरझा जाता है तो उसकी सुन्दरता उससे अलग होकर प्लाटो के स्वर्ग में चली जाती है।"

मदन ने होंठों को गोल बना लिया था और वह दूर—मकानों से परे

क्षितिज पर देख रहा था। नारायण ने भी अपनी बात पद्मा को सुनाते हुए कहा—"हमारे मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों में एक जीव बहुतायत से पाया जाता है। अंग्रेजी में इस जीव को फिलस्टाईन (Philistine) कहते हैं और हम अपनी भाषा में बुकरात कह सकते हैं। सुन्दर वाक्य उसका मन-भाता खाजा है और वह यह खाजा इतनी अधिक मात्रा में खा लेता है कि पचा नहीं पाता और बदहजमी से डकारता रहता है।"

कहने के अन्दाज पर पद्मा हंस पड़ी। मदन चिढ़ गया।

"अच्छा, मैं चलता हूं, बाई, बाई!" वह जाने के लिए उठ कर बोला।

"बैठिए, चाय आती है, पीकर जाइयेगा।" पद्मा ने उसे रोका।

"बहुत अच्छा, आपकी चाय तो जरूर पियेंगे, चाहे देर ही क्यों न हो जाए।"

मदन फिर बैठ गया और उसने जो 'देर' का शब्द प्रयोग किया था उसकी व्याख्या करते हुए बताया कि शाम को तांगा-ड्राइवर यूनियन का जलसा है, हड़ताल की बात चल रही है। जलसे के प्रबन्ध और सलाह-मशविरे का सारा बोझ उसी के कन्धों पर है।

पद्मा और नारायण जानते थे कि तांगा-ड्राईवर फ्रन्ट पर पार्टी ने रजाक को लगा रखा है और वही यूनियन के लिए दिन-रात काम करता है। मगर उन्होंने मदन की बात का प्रतिवाद नहीं किया। चुपचाप सुनते रहे।

इतने में सुन्दरी चाय ले आई और पद्मा ने बनाने में उसका हाथ बंटाया।

: 14 :

कानून

अगले दिन नारायण जब सुबह उठा, राजेन्द्र को पुस्तकें भिजवाने की बात एकदम भूल गया। वैसे वह हर छोटी-बड़ी बात का ध्यान रखता था। दफ्तर की डाक के उत्तर देना, प्रेस को खबरें भेजना, कौन-सी चीज कहां रखी है, किसे क्या देना है और कहां से क्या आना है—आदि बातों के अलावा पार्टी के गुप्त छापाखाने को सामान पहुंचवाने और वहां छपने वाले "लाल ढंढोरा" अखबार के बांटने की व्यवस्था करता था। कभी किसी काम में ढील नहीं होती थी। वह लेनिन के इस सिद्धांत में विश्वास रखता था—छोटे कामों में कभी कोताही न करो क्योंकि छोटे कामों से ही बड़े कामों का निर्माण होता है।

मगर उस दिन वह बहुत व्यस्त था, दूसरे [illegible] में बड़ी आवश्यक काम उसे करना था। हाईकोर्ट में बलवन्त के मुकदमे की अपील पर बहस होनी थी। बलवन्त को एक भाषण के सिलसिले में छोटी अदालत से पांच वर्ष का कठोर दंड मिला था, जो सेशन में घटकर तीन साल रह गया था और अब हाईकोर्ट में अन्तिम फैसला होना था। कल शाम पद्मा के घर से लौटते समय वह वकील से मिलने गया था ताकि उसे मुकदमे की फाईल देकर बहस तैयार करने को कहे। मगर उस समय वकील घर पर नहीं था। उसे लौटने में देर हो गई और वह राजेन्द्र को चीजें न भेज सका।

सुबह घर से चलते समय वह वकील के मकान पर फिर गया। वकील

रामदास चोपड़ा इसलिए पब्लिक में प्रसिद्ध था कि वह राजनीतिक नेताओं और कार्यकर्ताओं के मुकदमे मुफ्त किया करता था। अब उसके पास काम अधिक बढ़ गया था, जिन मुकदमों की फीस नहीं मिलती थी, उन पर विशेष ध्यान नहीं देता था और अक्सर बिना तैयारी ही के अदालत में जा खड़ा होता था। बहस कामयाब नहीं होती थी और कई बार पेश होने की तारीख तक भूल जाता था। इस बार भी वह वाकई भूल गया था, उसे मालूम तक न था कि आज बलवन्त की पेशी है। नारायण के पहुंचने पर उसने फाईल मंगवाकर देखी और बहस तैयार की।

नारायण वकील के मकान से लौटा तो नौ बज चुके थे। वह जल्दी-जल्दी नहा-धोकर तैयार हुआ और हाईकोर्ट की ओर चल पड़ा। लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वह माल रोड पर जा रहा था कि पीछे से किसी ने पुकारा—"कामरेड नारायण।"

घूमकर देखा तो लोगों की भीड़ में खड़ा प्रह्लाद उसे बुला रहा था।

पटरी पर पीपल के पेड़ तले एक बूढ़ा भिखारी बैठा था। टांगें ज़रा फैली हुई थीं, सिर नंगा था और उसने पांव से कंधों तक एक मैली-सी चादर पहन रखी थी, जिसमें से वह दायां हाथ बाहर फैला-फैलाकर भीख मांग रहा था। हाथ कछुए की गर्दन की तरह कभी चादर से बाहर आता और कभी भीतर चला जाता।

एक आर्टिस्ट इस बूढ़े भिखारी का चित्र बना रहा था। इतने ही में वहां लोगों की भीड़ लग गई। उनके नजदीक भीख मांगना और उसका चित्र बनते देखना एक तमाशा था। भिखारी जब हाथ चादर के भीतर खींचकर सिर घुटनों पर रख लेता था, चित्रकार को उस समय अपना काम बन्द कर देना पड़ता था।

"इसे कहो न, ज़रा हाथ फैलाये बैठा रहे।" भीड़ में से किसी ने कहा।

"हिश! हिश!!" चित्रकार ने मना किया। उसकी त्यौरियां चढ़ गईं।

उसे ज़िंदगी को भीख मांगते दिखाना था, उसका यथार्थ चित्र उरेहना

था, बूढे की भावनाओ को तूलिका और रगो द्वारा व्यक्त करना था। उसे हाथ फैलाने को कह दिया जाये तो चित्र मे स्वाभाविकता नही रहेगी, यथार्थ विकृत हो जायेगा।

नारायण और प्रह्लाद आगे बढे तो एक और आदमी मुह से धुआं उगलता हुआ, भीड से निकलकर उसके साथ हो लिया। वह पराशर था। बलवन्त से उसकी घनिष्ठ मित्रता थी। वह शुरू ही से मुकदमे मे दिलचस्पी ले रहा था और अब हाईकोर्ट मे बहस सुनने जा रहा था।

"आइये, आइये।' नारायण और प्रह्लाद उसे देखकर बहुत खुश हुए।

माल रोड के दोनो तरफ बडी बडी फर्में थी, जिनम लाखो रुपये का माल भरा पडा था और बैंको की भव्य इमारतें थी। लोग शॉपिंग करने, बैंको मे रुपया निकलवाने और जमा कराने आ-जा रहे थे। खूब चहल-पहल थी और भीड-भाड थी। कारोबारी लोगो से कही अधिक सख्या भिखारियो की थी। मर्द औरतें, बच्चे, बूढे, पुराने और गलीज चीथडे पहने अथवा नग-धडग भीख माग रहे थे। न मिलने पर साथ साथ चलते, तागो और मोटरो के पीछे दौडते, गिडगिडाते, मिन्नतें करते और दुआयें देत थे। दाया हाथ सर्वदा फैला रहता, जैसे फैले रहना उसका स्वभाव बन चुका हो।

आओ आर्टिस्ट, बना लो इनके चित्र यह हाथ फैले ही रहेगे और मागने वालो क चेहरे कभी ठोस और भावरिक्त नही होगे।

क्या बनेगा इन चित्रो से ? जब लाग जिदगी को नही देखते—जिदगी के इस चित्र को— अधूरे प्रतिबिम्ब का क्यो देखते हैं ? उनकी दिलचस्पी जिदगी को भीख मागते दिखाने ही मे क्यो है ?

"बाबूजी पैसा ! भगवान के लिए एक पैसा ! '

"हटो, हटो। कुछ नही मिलेगा। खुद हमारे पास पैसा नही है।" पराशर ने पीछे लगे हुए तीन-चार भिखमगो को दुत्कारा—"सरमायेदारो से मागो। इन बैंकों को लूट लो।"

"दो साल हुए" नारायण बोला, "केन्द्रीय धारा सभा में प्रस्ताव पेश हुआ था कि भीख मागना कानूनन बन्द किया जाये। अगर यह प्रस्ताव

पास हो जाता तो मैं समझता हूं हमारी आज़ादी कुछ निकट आ जाती, लेकिन सरकार ने प्रस्ताव पास नहीं होने दिया।"

"सरकार!" पराशर मुस्कराया। फिर बीड़ी का तवील कश लगाकर और धुआं ऊपर छोड़कर बोला, "सरकार किसी की किस्मत ब···तो नहीं बदल सकती। भगवान ने इन लोगों की किस्मत मे भीख मांगना लि··· लिखा है और वे भीख मांगते मरेंगे। भगवान का कानून सरकार के कानून से बड़ा है, वह इस कानून में द···दखल नहीं द···देना चाहती।"

जब वे हाईकोर्ट के फाटक मे घुसे, पांच-सात भिखमंगे इधर-उधर से एक साथ लपके। एक भिखारिन अपने मैले-कुचैले बच्चे को बाजू से पकड़े सबसे आगे थी।

"बाबूजी मेरे बच्चे को पैसा दो, भगवान तुम्हें मुकदमा जितायेगा।" और बच्चा भी दांत निकालकर और हाथ फैलाकर कह रहा था—"पैसा! पैसा!!"

फिर बहुत-सी सदायें एक साथ आईं और एक-दूसरे में गड़मड़ हो गईं।

बार-रूम के दरवाजे पर उन्हें गोपाल और बलवन्त का बड़ा लड़का राज खड़े मिले और उनसे मालूम हुआ कि इस समय एक मुकदमा पेश है, उसके बाद हमारी अपील पर बहस होगी।

वे एक तरफ बेंच पर बैठ गए। गोपाल के हाथ मे अखबार था, नारायण लेकर पढ़ने लगा।

पहली खबर चीन-जापान युद्ध के बारे मे थी। नारायण पढ़ रहा था और उसके चेहरे से चिंता का भाव व्यक्त हो रहा था। खबर पढ़ लेने के उपरान्त बोला—"चीन से इलाका छिनता जा रहा है। जापान युद्ध के लिए पहले से तैयार था। उसके पास टैंक हैं, हवाई जहाज हैं और सभी आधुनिक अस्त्र-शस्त्र हैं। वह चीन को रौंदता, कुचलता आगे बढ़ रहा है। शहरों और देहातों पर बमबारी करते तनिक नहीं झिझकता। फिर कहता है कि मैं चीन से लड़ नहीं रहा, उसे पश्चिमी साम्राज्य के चंगुल से मुक्त करा रहा हूं। झूठा, मक्कार!"

"कामरेड ! आप खाह-मखाह न···नाराज होते हैं।" पराशर ने ठोढ़ी पर उगे बालों पर हाथ फेरते हुए कहा, "जापान के कथन में संदेह की तनिक भी गुंजाइश नहीं है। वह बहुत ही पवित्र काम कर रहा है। अगर उसने आज तक लड़ाई का ऐलान नहीं किया त···तो यह सचमुच स लड़ाई न···नहीं है। एक घटना है। जापान चीन को उसी प्रकार सभ्य और शिक्षित बना देना चाहता है, जिस प्रकार अंग्रेज ने हिंदुस्तान को बनाया है। हिन्दुस्तान में अंग्रेजी सभ्यता के द दर्शन तो हम सड़क पर कर आए हैं। अब जापान चीन को सभ्य बना रहा है, त···तो यह त· तमाशा भी देखिए। बेचारा बम फेंकता है, आग बरसाता है, शहरों और देहातों को नष्ट करता है ता· ताकि चीन की जनता कूप-मण्डूक न बनी रहे, उसकी भलाई से पूरा-पूरा लाभ उठाए। यह अपने लिए नहीं, एशिया, एशिया वालों के लिए सिद्धान्त स··सेवर लड़ रहा है।" पराशर ने बीड़ी का कश लगाया और फिर बोला—"वह जानता है कि दु·· दुनिया में बुद्धू मल बधाऊमल बसते हैं जो हर बात पर विश्वास कर ल···लेने को त··· तैयार रहते हैं।"

अन्तिम वाक्य किसी ने नहीं सुना। "बुद्धूमल बधाऊमल" पर कहकहा पड़ चुका था। गोपाल, राज और प्रह्लाद अधिक हंस रहे थे। पराशर चुप हो गया और इत्मीनान से बीड़ी पीने लगा।

"पराशर जी ठीक ही कह रहे हैं।" कुछ देर मौन रहने के बाद नारायण बोला, "अगर जापान का यह दावा गलत होता तो राष्ट्रसंघ उसके विरुद्ध जरूर कार्रवाई करता।"

"सन्देह की गुंजाइश ही नहीं।" पराशर ने नई बीड़ी सुलगाना स्थगित करते हुए कहा, "राष्ट्रसंघ बना ही इसलिए है कि शांति भंग न·· न हो। उसमें बड़ी-बड़ी त·· ताकतों के प्रतिनिधि मौजूद हैं। वे प्रतिनिधि बुद्धूमल बधाऊमल न···नहीं हैं। राजनीति के ऊंच न···नीच और द·· दाव-पेच खूब समझते हैं। अगर वे चीन में खून बहते दे···देख रहे हैं त···तो समझ तो इसमें चीन की भलाई है।"

पराशर बीड़ी सुलगाने लगा। लेकिन नारायण बोला, "एक बात

और भी है। राष्ट्रसंघ का सबसे बड़ा सदस्य अंग्रेज है और वह लड़ना नहीं चाहता।"

"अंग्रेज क्यों ल···लड़े ?" पराशर ने विचित्र ढंग से गर्दन हिलाई, "वह ईसा का भक्त है। वह हर हालत में शान्त रहेगा। उसका काम जाहिलों और वहशियों को त······तहज़ीब सिखाना है। अगर कोई दू··· दूसरा द···देश भी तहज़ीब सिखाने का काम करता है तो अंग्रेज खुश होता है, द···दखल नहीं देता। अतालवी त···तोपों ने अबेसीनिया के हब्शियों को तहज़ीब सिखाई, वह चुप रहा। अब जापान के बम चीन के बुद्धूमल बघारूमल अफीमियों को त···तहज़ीब सिखा रहे हैं तो वह चुप है और चुप रहेगा क्योंकि उसका काम त···तहज़ीब फैलाना है। वरना उसके पास ल······लड़ने का साहस भी है और शक्ति भी। बमों और हवाई जहाजों की कमी नहीं। वह उनसे काम भी ल···लेता है। कल की बात है कि फिलस्तीन के अरबों ने त···तनिक सिर उठाया तो अंग्रेजों ने वह बमबारी की कि होश ठि···ठिकाने आ गए। बोले तो सही हिन्दुस्तानी, अभी पता चल जायेगा अंग्रेज के साहस का।"

थोड़ी देर मौन रहकर गोपाल ने गम्भीरता से कहा, "मज़ाक की बात अलग है। मैं समझता हूं कि जापान शीघ्र ही सारे चीन पर छा जायेगा। यह चीन के हित की बात है और हमारे अपने हित की भी, क्योंकि अंग्रेज तो वहां से निकलेगा।"

पराशर नारायण की ओर देखकर मुस्कराया। वह चुप रहा और अखबार देखने लगा, लेकिन पराशर से न रहा गया, बोला—

"जापान जिंदाबाद ! एशिया, एशिया वालों के लिए का सिद्धान्त जिंदाबाद !"

"तनिक सुनिये।" नारायण ने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, "प्रधान रूज़वेल्ट ने एक प्रेस कांफ्रेंस में कहा है कि अमरीका की आबादी दुनिया की आबादी का चालीसवां भाग है, और उसका धन दुनिया के धन का छठा भाग, फिर भी अमरीका की एक-तिहाई जनता निर्धन है, हम इस निर्धनता को दूर करना चाहते हैं।"

"मैंने भी इस बयान को पढ़ा है और इसका कटिंग रखूंगा।' गोपाल बोला।

इसी समय वकील ने आकर बताया कि पहले मुकदमे की बहस लम्बी हो गई है। बलवन्त का मुकदमा अब लच के बाद ही पेश हो सकेगा।

नारायण, पराशर और प्रह्लाद चले कि किसी तदूर पर खाना खा आयें। दरवाजो पर भिखमगो ने फिर उन्हें आ घेरा—'बाबू तुम्हारी मुरादें पूरी हो।"

चौक से छकडा की एक पात गुजर रही थी इसलिए तागे और मोटरें रुक गई थी। भीड अधिक थी, उन्हे भी रुकना पडा।

"यह अमरीका की नही, हिन्दुस्तान की तस्वीर है। लेकिन अमरीका मे भी जो दुनिया का सबसे धनी देश है एक तिहाई जनता निर्धन है।'

"गाधी जी के रामराज्य मे न मोटरें होगी न ° न अमीर। छकडे होगे और गरीब।' पराशर बोला।

लच के बाद अपील सुनी गई। बलवन्त की उपस्थिति आवश्यक नही थी और न ही उसे बुलाया गया था। कोई कठिन समस्या नही थी। इनी-गिनी बातें थी। दो ढाई घटे की बहस के बाद सुयोग्य जज ने फैसला सुनाया—

'इस बात का सबूत मिलता है कि मुलजिम ने अपने भाषण द्वारा जनता को सरकार के विरुद्ध विद्रोह और हिंसा के लिए उकसाया इसलिए अपील रद्द की जाती है।

अपील रद्द हो गई। बलवन्त तीन साल के लिए जेल मे रहेगा। वकील, नारायण, पराशर और दूसरे साथी अदालत के कमरे से बाहर निकले और एक-दूसरे का मुह ताकते हुए चुप चाप चलने लगे। पराशर ने बीडी सुलगाई और दो तीन कश लगाकर बोला—

'यह होना ही था और ठी ठीक ही हुआ। बलवन्त को कोई हक हासिल नही कि उस सरकार के विरुद्ध जिसका काम शाति स्थापित रखना है, जिसके पास सेना है, कानून है और जेलें हैं नि निहत्थी जनता को हिंसा और विद्रोह के लिए उकसाये • • ।"

जब दूसरे लोग अपने-अपने ठिकानों की ओर चले, राज ने नारायण से कहा—"मुझे आपसे बात करनी है।"

"कहो।"

"मामी हर वक्त मां से लड़ती-झगड़ती रहती है। हमारा वहां रहना कठिन है।" उसने आर्द्र स्वर में कहा।

वे सब मामा के घर में रहते थे। बलवन्त पहले भी एक साल कैद काट आया था, उस समय भी वह मामा के घर चले गये थे। मामी का स्वभाव कठोर था। साल भर बड़ी मुश्किल से व्यतीत हुआ था। इस बार निचली अदालत का फैसला सुनते ही उसने ताने देना शुरू कर दिया था—"हम से दूसरों का परिवार नहीं पाला जाता।" उसके साथ तीन साल बिताना असम्भव था। नारायण ने राज से कहा, "तुम सब लोग हमारे पास चले आओ।"

उसने राज से तो कह दिया लेकिन रास्ता भर सोचता रहा, रहने की व्यवस्था कैसे होगी? खर्च क्योंकर चलेगा?

: 15 :

कथनी और करनी

रामदास दिन-रात यूनियन के कामों में व्यस्त रहता था, कभी जुलूस निकालता और कभी जलसे करता। धीरे-धीरे वह भाषण भी करने लगा। उसकी बातें सीधी-सीधी होती। वह मजदूरों की उन निजी तकलीफों का उल्लेख करता जो उन्हें अपने काम के सम्बन्ध में सहन करनी पड़ती थी। मैनेजर, बाबू और जाबर जो दुर्व्यवहार, अपमान और जुर्माने करते थे, नियत समय से अधिक काम लेते थे, उसकी ओर वह विशेष रूप से ध्यान दिलाता था। यह मजदूरों का अनुभूत सत्य था। रामदास की बातों में उनका अपना सुख-दुख निहित रहता था; इसलिए वे दिल में उतर जाती थी। जलसे और जुलूसों में दिन-दिन मजदूरों की तादाद बढ़ने लगी और यूनियन के कामों में वे अधिक दिलचस्पी लेने लगे। यूनियन की यह सफलता देखकर नौजवानों का जोश बढ़ रहा था, रामदास और उसके साथी थंनी और करमा हर एक काम बड़े उत्साह से करते थे। लाल झंडे ने पहली बार मजदूरों के जीवन में प्रवेश किया था, वे उसे बड़े शौक से इधर-उधर उठाये फिरते थे। नौजवानों ने छोटे-छोटे झंडे अपनी छातियों पर लगा लिये थे। लड़के जब स्कूल में पढ़ने जाते तो वहां से चाक उठा लाते और घर लौटकर हंसिया और हथौड़े के चित्र बनाते। बस्ती के हर एक दरवाजे पर अब हंसिया और हथौड़े बने हुए दिखाई देते थे।

मजदूरों में यूनियन का आन्दोलन जितना जोर पकड़ रहा था, राजेंद्र और इखलाक का काम भी उतना ही बढ़ रहा था। वे दिन-रात व्यस्त

रहते थे। उनका काम शिक्षा और संगठन था। जलसे और जुलूसों के प्रबन्ध की जिम्मेदारी रामदास और उसके साथियों पर थी, वे सिर्फ उनकी सहायता करते थे और इस बात का ध्यान रखते थे कि कोई अनुचित बात न हो, किसी प्रकार की उद्दण्डता न आने पाये जिससे मजदूरों में भ्रांति फैले और आपस का विरोध बढ़े, और आन्दोलन के गलत दिशा अपनाने की सम्भावना हो। इस प्रकार खुद मजदूरों में से उनके अपने नेता पैदा हो रहे थे और उनमें कार्य-कुशलता और वर्ग-चेतना की मात्रा बढ़ रही थी, और अपनी कठिनाइयों और कष्टों की भावना सजग हो रही थी। जब वे यहां से जायेंगे तो यूनियन अपने पांव पर खड़ी होगी। उन्होंने जो पौधा लगाया है, वह पेड़ बन चुका होगा और उसकी जड़ें धरती में इतनी गहरी बैठ जायेंगी कि कोई आंधी, कोई तूफान उसे उखाड़ नहीं सकेगा।

रामदास, करमा और बंसी जो समझदार और जोशीले नौजवान थे, उन्हें वे मजदूर-आन्दोलन की कहानियां सुनाते, पूंजीवाद के विकास और आंतरिक विरोध की बात समझाते, मजदूर-आन्दोलन के ऐतिहासिक महत्व और उसके उज्ज्वल भविष्य पर प्रकाश डालते थे। इसके अतिरिक्त यह देखते कि यूनियन के जलसे, जुलूसों और प्रदर्शनों का यूनियन से दूर रहने वाले मजदूरों, बाबुओं और अफसरों पर क्या असर पड़ रहा है; किन लोगों को यूनियन में लाया जा सकता है, कहां विरोध अधिक है और इस विरोध के असर को किस प्रकार कम किया जा सकता है।

योग्यता और सहृदयता उसके अपने चिंतन को दिशा प्रदान करती।

सदीक का पिता एक समृद्ध किसान था। समाज और बिरादरी मे उसका बडा नाम था। किसी भी समारोह और उत्सव पर वह खूब दिल खोलकर रुपया खर्च करता था। रस्मो-रिवाज और ठाठ-बाठ को बडा महत्त्व देता था। जब सदीक की दो बडी बहनो का ब्याह हुआ, तो पैसा पानी की तरह बहाया गया। सारे गाव को दावत दी, गरीबो मे खैरात बटी, मस्जिदों और खानकाहो मे दोशाले चढे। इतना रुपया खर्च हुआ कि जमीन रहन रखकर कर्ज उठाना पडा। उसने कर्ज चुकाने की हरचद कोशिश की; लेकिन जितना चुकाता था, उससे कही अधिक ब्याज बढ जाता था। परिणाम यह निकला कि जितना रुपया कर्ज लिया था, उससे कही अधिक ब्याज की शक्ल मे देना पडा और मूल चुकाने के लिए जमीन जमीदार के हाथ बेचनी पडी। बाप इसी चिंता मे घुलकर मर गया। जो थोडी-बहुत जमीन बच गई थी, सदीक कई साल तक उसी पर मेहनत करके गुजर-बसर करता रहा। लेकिन जब मदवाडा आया, अनाज भूसे के भाव बिकने लगा, जिंदगी की जरूरतें पूरी करना तो दरकिनार उसके लिए लगान चुकाना दूभर हो गया। जो जमीन बची थी, वह भी हाथ से निकल गई। सदीक जो पीढियों से किसान कहलाता चला आ रहा था और जिसके पिता की बिरादरी मे बडी इज्जत थी, खेत मजदूर बन गया। उसे जमीदार की कटुता और कारिंदो की झिडकिया सहन करनी पडती थी। जमीदार उसका सहधर्मी था, लेकिन उसकी जमीन औने-पौने हथियाते और उस पर अत्याचार करते समय उसका ध्यान कभी धर्म की ओर नही गया। इसलामी समता का सिद्धात सदीक के किसी काम नही आया। जमीदार के जुल्म और शोषण से सभी किसान तग आये हुए थ। वह बटाई नही करता था। सारा अनाज अपने जखीरो मे भरवा लेता था। किसानों को उसका चौथाई भाग भी नही मिलता था। वे आधे पेट जीते थे और जमीदार ऐश करता था।

आखिर बटाई का आन्दोलन चला। किसानो ने मांग की कि खेत मे जितना अनाज हो, उसे आधा-आधा बाटा जाये। यह बया बि ञ

सारा अनाज उठाकर अपने अन्दर भर ले और उन्हें कोई हिसाब-किताब न दे। सदीक इस आन्दोलन का अगुवा था। जमींदार ने अपनी सहायता के लिए पुलिस बुलवाई और आंदोलन असफल रहा। सदीक को बेदखल करके जमीन से निकाल दिया गया। उसने मजबूर होकर गांव छोड़ा और शहर में आ बसा।

"पैसे वाला हिन्दू हो या मुसलमान, अपने ही फायदे की बात सोचता है।" सदीक ने आपबीती सुनाने के बाद कहा था।

एक करुण-कहानी उसकी सुन्दर आंखों में अंकित थी। उसकी आंखें शायद इसीलिए सुन्दर थी। जो चाहता था कि आदमी उन्हें देखता ही रहे, उनमे समुद्र की गहराई थी। सदीक का रंग गोरा और चेहरा गोल था। उसने काले रंग का साफा बांध रखा था, सादा सफेद कमीज और नीले रंग का तहमद। इस वेष में वह बहुत ही भला मालूम होता था। कहानी सुनाने के बाद आंखों मे जो अवसाद, दु:ख और वेदना उभर आई थी, वह मानवता की करुण पुकार थी—उस मानवता की जो सदियों से शोषित और पीड़ित है।

"और फिर कहा यह जाता है कि अमीर और गरीब सब खुदा ने बनाये।" राजेन्द्र बोला।

"यह सब बहाना है। झूठी बात है।" सदीक ने विश्वास के साथ कहा। उसका स्वर स्थिर और दृढ़ था और सिर्फ अनुभूति ही मनुष्य की आवाज को दृढ़ बनाती है।

जैसे-जैसे यूनियन का प्रभाव बढ़ रहा था, वे लोग भी चौकन्ने हो रहे थे, जिनके लिए यूनियन का अस्तित्व भय का कारण था, जो पूंजीवादी हितों से बंधे हुए थे, जिनकी भलाई इस बात में निहित थी कि मजदूर असंगठित रहें और मिल-मालिक को मनमानी करने की खुली छूट हो। इनमें मुगली जैसे आवारा और निकम्मे लोग भी शामिल थे, जो खाते अधिक थे और उत्पन्न कुछ नहीं करते थे। उनका गुरु मुरारीलाल मनचढ़ा था, जो गत सविनय भंग आन्दोलन मे छ: महीने कैद काट आया था और कांग्रेसी नेता पंडित बदरीनाथ की सिफारिश से यहां लेबर वेलफेयर

आफीसर नियुक्त हुआ था। मिल मे मुलाजिम होने के बावजूद वह मशीनी कपडे का विरोध करता और शुद्ध खद्दर पहनता था। हर रोज सन्ध्या-प्रार्थना के उपरान्त घटा-पौन-घटा चर्खा कातता और ऐसा युग शीघ्र आने की बात कहता था। जब मशीन का वजूद ही खत्म हो जाएगा, मनुष्य सब काम अपने हाथ से किया करेगा और प्रसन्नता से जीवन वितायेगा।

लेकिन जब तक मशीन मौजूद थी, मिल-मालिक और मजदूर मौजूद थे, उनमे प्रेम सम्बन्ध स्थापित करना जरूरी था। आपस की खींचातानी से घृणा का जन्म होता है और घृणा ससार मे समस्त दोषो की जड है। मनचन्दा को घृणा से घृणा थी और वह प्रत्येक मनुष्य से प्यार करता था। वह मिल-मालिक का अकिंचित दास था और मजदूरो के साथ भी विनम्रता का व्यवहार करता और मीठा बोलता था। वह लेबर वेलफेयर आफिसर था और अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझता था। इसलिए मजदूरो की भलाई का ध्यान रखता था, उनमे सभ्यता और शिष्टता का प्रचार करता था। और उनके हित की कोई बात मालिक से कह सुनकर हो सके, तो करवा देता था। मिल-मालिक भी बहुधा मनचन्दा की कोई बात टालता नही था क्योकि वह धन का ट्रस्टी मात्र था, अपने लिए नही मजदूरो के लिए कमाता था। जब मालिक इतना सज्जन और उदार हो तो मजदूरो का फर्ज है कि वे उसके हित को अपना हित समझें। एक आदमी लाखो रुपया खर्च करके कारखाना लगाता है, हजारों बेकारो के लिए रोजगार का साधन जुटाता है तो वे उसके कृतज्ञ क्यो न हो? क्यो न मन लगा कर काम करें? मनचन्दा गीता के श्लोक पढ़कर मजदूरो को बताया करता था कि किसी से ईर्ष्या करना अथवा साधारण बातो के लिए झगडना व्यर्थ है, मनुष्य निष्काम भावना से काम करता रहे, फल भगवान के हाथ है।

यूनियन-वूनियन की बात उसे कुछ अच्छी नहीं लगी। उसका विश्वास था कि इससे मजदूरो और मिल-मालिको मे वैमनस्य बढ़ेगा, घृणा फैलेगी और घृणा संसार मे सब बुराइयों की जड है। इसलिए मनचन्दा ने रहमा, मन्दू और उनके दो-चार अन्य प्रमुख साथियो को

बुलाकर कहा—

"सुना है कि कुछ यूनियन वूनियन बन रही है, यह क्या चक्कर है ?"

"कुछ नही। दो-चार जोशीले छोकरे हैं, हम उन्हें समझा देंगे।"

"खुद मजदूर जो चाहें करें, हमें कुछ एतराज नही। लेकिन इस बहाने बाहर के बेकार और शरारती लोग मजदूरों में घुस आते हैं। उन्हें झगड़े के लिए उकसा कर आप अलग जा खड़े होते हैं, मुसीबत मजदूरों के सिर पड़ती है। जब मालिक सारी तकलीफें आप ही दूर कर देते हैं, फिर यूनियन की क्या जरूरत है ?"

यूनियन की जरूरत शायद थी क्योंकि नन्दू और रहमा का रसूख भी किसी काम नही आया। वे अपने घड़े के नौजवानों को भी यूनियन में शामिल होने से नही रोक सके। जब जुलूस निकलने और जलसे होने लगे तो मनचन्दा की चिन्ता और बढ़ी। उसने एक दिन रामदास को अपने पास बुलाया। डेढ़-दो घण्टे उसके साथ मीठी-मीठी बातें करता रहा, सरमायेदारों और मजदूरों के एक-दूसरे पर निर्भर होने का दर्शन बयान करता और जिन्दगी का ऊच-नीच और हानि-लाभ उसे समझाता रहा। रामदास ने उसकी बातें बड़े ध्यान से सुनीं और उसके हर एक नुक्ता को सराहा और स्वीकार किया। उसके व्यवहार से मनचन्दा को विश्वास हो गया कि रामदास चतुर और बुद्धिमान है, उसे सिर्फ गुमराह किया गया है, आगे को वह इन झगड़ों में नही पड़ेगा। उसने अपनी कमीज पर जो लाल झण्डा लगा रखा था, मनचन्दा ने उसकी ओर देखते हुए मृदु स्वर में कहा—

"लाओ अपना यह झंडा मुझे दे दो।"

"नही साहब, रहने दीजिए। यह तो हमें ही अच्छा लगता है। आप तो इसे टोपी में छिपा लेंगे।"

रामदास की आंखों में चंचल[illegible] ... । मनचंद[illegible] की आशा नहीं थी, वह मन-ही[illegible] ... रह गया, अपने बाहरी रूप में कोई अन्तर [illegible] ... मन में गई थी, उसे स्वर में व्यक्त नही [illegible] की ओर खुद रामदा[illegible]

जब रामदास उठकर चला गया, मनचन्दा ने एक लम्बी सास छोडी। यातो मे कुछ अधिक समय और शक्ति लग गई थी, इसलिए अब वह थक गया था और आराम करना चाहता था। उसने टोपी उतार कर एक ओर रख दी, कुर्ते के बटन खोल दिए, बाह पीछे को फैला दी और उन पर शरीर का बोझ डाल दिया। आखो मे चिन्ता और व्यग्रता भरी थी, पाच-सात मिनट इसी प्रकार बैठा सोचता रहा, फिर सहसा उठ खडा हुआ और होठो पर एक फीकी सी मुस्कराहट लाकर स्वत बोला—

"जो होना है, वह होकर रहेगा, भगवान की इच्छा को कौन टाल सकता है।"

उसने खूटी पर से मृगछाला उतार कर बिछाई और चर्खा कातने बैठ गया। जिस दिन वह कुछ परेशान होता था, चर्खा नियम से कुछ अधिक कातता था और उसको आत्मा को इससे वाकई शाति प्राप्त होती थी।

जिस समय वह चर्खा कात रहा था, मुरली उधर आ निकला और प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया।

"सुनाओ मुरली भक्त किस तरह आना हुआ?" मनचन्दा ने एक लम्बा तार खीच कर पूछा।

"आपके दर्शन करने चला आया।" मुरली मुस्कराया और फिर बोला, "नशे-पानी को पैसे नही थे, सोचा आप ही कुछ कृपा करेंगे।"

' देखो मुरली भक्त तुमसे कह रखा है, पैसे जब जरूरत हो, ले जाया करो। पर नशे-पानी की बात हमसे न कहा करो।"

"आप धर्मात्मा पुरुष हैं, आपके सामने झूठ नही बोला जाता। इसलिए खरी बात कहता हू। आदत बुरी है, मैं खुद मानता हू और छोडने की कोशिश कर रहा हू। आप देख रहे हैं, पहले से बहुत कम कर दी है। एक दम छोडी भी तो नही जाती।"

मुरली के सत्य-भाषण से मनचदा गद्गद हो उठा, मुस्करा कर बोला—

"मुश्किल-वुश्किल कुछ नही है। अच्छी सगति से वाल्मीकि ने डाके डालना छोड दिया और इतना बडा ऋषि बना।"

मनचन्दा ने जेब से दस रुपये का नोट निकालकर मुगली को दिया जो उसने प्रसन्न होकर ले लिया और वह प्रणाम करके जाने को उठा। मगर मनचन्दा ने उसे रुकने का संकेत किया। उसने पूछा।

"सुना है कि रामदास से कुछ झगड़ा-वगड़ा हो गया ?"

"हां, चींटी के पर निकल आये हैं और पर निकलना ही उसकी मौत है।"

"देखो तुम फिर क्रोध की बात करते हो। हमने तुम्हें कितनी बार समझाया है कि आपस का दंगा-फिसाद अच्छा नहीं होता।" मनचन्दा ने सदुपदेश दिया और पहलू बदल कर अर्थपूर्ण ढंग से कहा, "यह रामदास नहीं, उसमें कोई और बोलता है।"

"क्या मतलब ? गंवार आदमी हूं, समझाकर कहिये। कौन बोलता है उसमें ?"

"इतने भोले न बनो।" मनचन्दा कौतूहल से मुस्कराया, और बोला, उसमें यूनियन बोलती है और यूनियन बनाने वाले बोलते हैं।"

मुगली ने अपने हाथ में दस रुपये के नोट पर निगाह डाली, फिर मनचन्दा की ओर देखा और मुस्कराते हुए चल पड़ा।

: 16

ज्योतिषी

नारायण किसान सभा के दफ्तर मे पहुचा तो ताया अपनी रजाई मे लिपटा हुआ था और जगदीश पास बैठा अग्रेजी पढा रहा था।

"सुनाओ ताया खूब पढाई हो रही है?" नारायण ने प्रणाम करने के बाद पूछा और चारपाई पर बैठ गया।

"इनकी कृपा है कि सुबह-सुबह आकर पढा जाते हैं।" चेतसिंह ने जगदीश के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, 'एक बार दो-तीन किताब आखो से निकलवा दें, आगे मैं आप ही मेहनत करता रहूगा।"

उसकी आखो मे सीखने का उल्लास भरा था।

"देखो तुम्हे इनकी पढाई का तरीका बताऊ।" जगदीश ने एक कापी के पन्ने उलटते हुए कहा, "कल इन्हें कहा था कि पजाबी के ऐसे शब्द लिख छोडना जो आम इस्तेमाल मे आते हैं, मैं तुम्हें उनकी अग्रेजी लिखवा दूगा। अब जरा वे शब्द सुनिये।"

और जगदीश ने कापी मे से शब्द पढने शुरू किये—

"कट्टा, कट्टे, कट्टिया। बच्छा, बच्छे, बच्छिया। किल्ला, किल्ले, किल्लियां ' सारा पृष्ठ योही भरा हुआ है।"

"ठीक है।" नारायण बोला, "जब कट्टे-कट्टिया हैं तो उनको बाधने के लिये खूटे भी तो चाहिए।"

जगदीश ठहाका मारकर हस पडा, नारायण और चेतसिंह भी हसने लगे, जगदीश की हसी स्वच्छ और निर्मल थी। नारायण ने उसे घर पर

अपने बच्चों को भी पढ़ाते देखा। वह उनके साथ बच्चों के सदृश हिल-मिल जाता था, उनकी छोटी-छोटी बातों से प्रसन्न होता और गणित के प्रश्न को लतीफों की तरह दिलचस्प बना देता था।

जो पाठ पढाया जा रहा था, थोड़ी देर में समाप्त हो गया। जगदीश ने नारायण से हाथ मिलाया और चला गया।

"सुनाओ ताया ! देहात से कोई खबर आई ?" नारायण ने पूछा।

"खबर तो कोई नहीं।" ताया ने उत्तर दिया और अपने सिरहाने से एक लिफाफा निकालकर नारायण के हाथ में थमाते हुए कहा, "कृपाल का खत आया है।"

नारायण पत्र पढ़ने लगा। वह मोटे-मोटे अक्षरों और अधूरे वाक्यों में लिखा हुआ था, लेकिन मतलब यह था कि कान्फ्रेंस का प्रभाव इलाके पर बहुत अच्छा पड़ा। कान्फ्रेंस की सफलता किसान आन्दोलन की बढ़ती हुई शक्ति का प्रमाण है। अन्त में इस बात पर खेद प्रकट किया था कि प्रीतम-सिंह ने उनके साथ काम करना छोड़ दिया है।

"हूं !" नारायण ने पत्र ताया को लौटा दिया और सोचने लगा।

"बस ऐसा ही लिखता है। पढ़ा भी कुछ ज्यादा नहीं। आहिस्ता-आहिस्ता सीख जायेगा।"

इन शब्दों ने नारायण को चौंका दिया। ताया की मूछों के नीचे एक मृदु मुस्कान थी और वह बेटे के पत्र को बड़ी उत्सुकता से देख रहा था, जैसे उसे सीने में रख लेना चाहता हो, जैसे वह कोई अद्वितीय महाकाव्य हो उसके एक शब्द में माधुर्य और नवीनता भरी हो। ताया कवि की इस अमर कृति की दाद देना चाहता हो; मगर उसके पास समुचित शब्द न हों।

"बहुत अच्छा लिखता है कृपालसिंह।" नारायण ने ताया के मनोभाव को समझकर कहा।

पिता का हृदय गद्‌गद् हो उठा। जो मुस्कराहट होंठों तक सीमित थी वह अब पूरे चेहरे पर फैल गई। नारायण मौन बैठा ताया की ओर देखता रहा और पितृ-स्नेह का रसास्वादन करता रहा। ताया की अंगुलियां पत्र

को टटोल रही थी और आखें शब्दो पर घूम रही थी, जब वह जी भर कर देख चुका तो पत्र को सिरहाने तले रख लिया।

'कुछ मालूम है, प्रीतमसिंह ने काम क्यो छोड दिया ?"

'मालूम तो बस यही है।" ताया ने सरल मगर दार्शनिक भाव से कहना शुरू किया, "नौजवान था, जोश मे काम शुरू कर दिया। जोश ठडा पड गया फिर घर म जा बैठा।"

"उसमे बहुत से गुण थे।' नारायण बोला, 'काम करते कभी थकता नही था, लेकिन भावुक बहुत था।"

"उसकी इच्छा थी" ताया बोला, "हर वक्त आगे-आगे रहे। हर एक बात म उसकी पूछ हो, चोधरी कहलाये। कान्फ्रेंस का प्रधान या सकत्तर बने तो खुश रहता था।"

ताया थोडी देर चुप रहा। रजाई के एक धागे को अगुलियो मे बटते हुए फिर बोला—' आदमी जब आदर्श के लिए काम करता है, ऐसी बातें नही सोचता। उसे अपने आपको मिट्टी मे मिला देना होता है। अगर कोई साथी बुरा भी कहे तो चुपचाप सहना पडता है।"

ताया जो कुछ कह रहा था, वही भाव उसकी आखो और उसके चेहरे से भी व्यक्त हो रहा था। नारायण सोच रहा था—यही वे सुनहले सिद्धात हैं, जो वह पुस्तको मे पढता आया है। ज्ञान जिन्दगी की कोख से जन्म लेता है। मार्क्स और लेनिन ने मजदूरो और किसानो के चेहरे पढकर ही तो पुस्तकें लिखी हैं।

"दाना जब मिट्टी म मिल जाता है, तभी उसमे अकुर फूटता है, फूल खिलते हैं फल लगते हैं। विस्तृत अनुभव ने ताया की आत्मा म दर्शन और काव्य के सर्वोत्तम तत्त्वो का समावेश कर दिया था। उसके शब्दो मे जगली फूल की सुगन्ध और सुषमा थी।

"कामरेड, सच्च कहता हू। मुझे कई बार ख्याल आता है कि जब तक पार्टी मे काम करना शुरू नही किया था, तब तक जीवन व्यर्थ खोया। और जब से काम करने लगा हू ऐसा लगता है, जैसे जून सुधर गई है।" वह कह रहा था और मुस्करा रहा था। मुस्कराहटें शब्दों मे हल हो रही

थीं। वह रुका और आंखें दूर किसी शै पर गड़ाकर फिर बोला, "मुझे एक सीधा मार्ग दिखाई दे रहा है। जीते जी इस मार्ग से मुंह नहीं मोड़ूंगा।"

वह एकटक देखता रहा, मुस्कराता रहा। उसकी आंखों में एक दृढ़ संकल्प था। लगता था कि वह सृष्टि के आरम्भ से इसी मार्ग पर चलता आया है, चल रहा है और चलता रहेगा। रुकेगा नही; थकेगा नही।

"ताया, तुम कहां जाओगे? यह सीधा मार्ग किधर जाता है?" नारायण ने पूछा।

वह सोचने लगा। प्रश्न अप्रत्याशित था। तनिक रुककर बोला—

"मेरी बुद्धि इतनी तेज नही कि ठीक-ठीक बता सकूं। पर इतना जानता हू कि यह मार्ग ऐसी जगह जाता है, जहां अनाज के पके हुए खेत हैं, मीठे और रसदार फलों के पेड़ हैं, घी-दूध है और सतयुग बीत रहा है।"

उसके चेहरे से सुख और शान्ति झलक रही थी। वह अतीत के कथित सतयुग को भविष्य में मूर्तिमान हुआ देख रहा था।

"ताया, पर लोग कहते है कि सतयुग पहले बीत गया। अब कलियुग है और दुनिया विनाश की ओर जा रही है। फिर तुम्हारा सतयुग कैसे आयेगा?"

"आयेगा, आयेगा, जरूर आयेगा" चेतसिह ने एक-एक शब्द पर जोर दिया और मुट्ठी भींचकर बोला, "हमारी हिम्मत से, किसानों, मजदूरों के संगठन से। झूठा सतयुग बीत गया, सच्चा सतयुग आयेगा।"

नारायण को ताया की बातों में मजा आता था। इसीलिए कुरेद-कुरेद-कर प्रश्न पूछता और जान-बूझकर उसे छेड़ता था।

"यह सच और झूठ की बात समझ में नही आई, ताया।"

"झूठा मैं इसलिए कहता हूं" ताया बोला, "बीते हुए सतयुग की जितनी कहानियां मैंने सुन रखी हैं, उनमें कही भी सतयुग दिखाई नही देता, सब दिल बहलाने की बातें हैं। सारा सतयुग देवताओं और राक्षसों

के युद्धो से भरा पडा है। मैं समझता ▮ यह अमीरो गरीबो के युद्ध थे। अमीर देवता बन गये और गरीबो को राक्षस कह दिया ' ताया के स्वर मे आवेश था बनावट नही थी, वह सहज स्वर मे कह रहा था, "पिछले जमाने मे गरीबो के दो बडे जर्नल कुम्भ और सुम्भ हुए हैं। उन्होने सब राजे महाराजो को हरा दिया था। आखिर राजा इन्द्र की सात लडकियो ने उनसे युद्ध किया। वे जीत गईं, लेकिन मुकाबिले मे मारी गईं। जहा-जहा वे मरी राजाओ और अमीरो ने उनके मन्दिर बनवा दिये और पूजा शुरू कर दी। हम गरीब लोग भी अब तक उन्हे पूज रहे ह।"

नारायण का बचपन गाव मे बीता था। एक बूढा ब्राह्मण कथा करते समय कहानिया सुनाया करता था। उसकी जबानी यह कहानी नारायण ने भी सुनी थी, लेकिन इस ढग से सोचा नही था। उसे आश्चर्य हुआ कि ताया ने इन कहानियो म वर्गसघर्ष का पहलू ढूढ निकाला है। उसके अपन मस्तिष्क म भी एक कहानी उभर आई। जब वह स्कूल म पढता था, सातवी श्रेणी की अग्रेजी की पुस्तक म यह कहानी दर्ज थी।

एक धनी व्यक्ति ने भूखो मे रोटिया बाटी। भूखे एक-दूसरे पर टूट पडते थे। लेकिन एक लडकी सबसे पीछे मौन और शात खडी थी। उसे अन्तिम रोटी मिली। घर जाकर रोटी तोडी तो उसम से दो अशर्फिया निकली। ईमानदार लडकी उन्हे लौटाने आई लेकिन दानी सेठ ने कहा—"यह तुम्हारे सतोष का फल है।'

रोटिया बाटने वाला सेठ नारायण को वाकई देवता जान पडा था और वह लडकी के सदृश सतोषी और ईमानदार बनने की कामना करता रहा था। लेकिन अब—अब कहानी के याद आते ही भवें सुकड गईं, मन अवज्ञा से भर गया और वह सोचने लगा—' शब्दो म तीर, तलवार और तोप से भी अधिक शक्ति है। शोषको ने सब शक्तियो की तरह इस शक्ति पर भी अपना अधिकार जमा रखा है। वे कहानियो द्वारा अपनी उदारता और दानशीलता का प्रचार करते हैं और अपनी शोषण-वृत्ति को भिड के डक की तरह छिपा रखते हैं।

"ताया कोई और बात ?" उसने पूछा।

चेतसिंह को और बात कहने का अवसर नहीं मिला क्योंकि तारासिंह ने कमरे में प्रवेश किया और उसके पीछे-पीछे जो दूसरा व्यक्ति, आ रहा था उसकी ओर संकेत करके बोला—

"ताया हाथ दिखा लो, ज्योतिषी आया है। अच्छा आप भी यहीं हैं?" उसका ध्यान नारायण की ओर आकर्षित हुआ।

तारासिंह लपककर दूसरे कमरे से कुर्सी उठा लाया। ज्योतिषी जी उस पर विराजमान हुए और वह खुद नारायण के पास बैठ गया।

"इस बेचारे को कहां से पकड़ लाए। गलियों में जाने देते, औरतों के हाथ देखता और पेट का हीला करता। यहां इसे क्या मिलेगा?"

"बड़ा विद्वान् ज्योतिषी है, काशीजी से पढ़कर आया है। ऐसा प्रश्न लगाता है कि अगला-पिछला सब हाल बता देता है।"

"बाजार से दो पैसे की पत्तरी लेकर बगल में दबा ली और बन गये ज्योतिषी और दावा यह काशी से पढ़कर आए हैं। सब झूठ है। निरा पाखंड है।"

"न बाबा ऐसा न कहो", ज्योतिषी ने मूंछों पर ताब दिया और कृत्रिम स्वर में कहा, "जब तक भगवान् का नाम है, संसार से सत्य भी नष्ट नहीं हो सकता। सभी ज्योतिषी झूठे नहीं होते। और शास्त्र का कहना है कि अपना मन झूठा न हो तो कोई भी झूठा नहीं। तनिक हाथ दिखाओ, फिर देखना कि हमारे मुख से जो बात निकलती है, बावन तोले ठीक है।"

ज्योतिषी का कद ठिगना, चेहरा किताबी और उम्र चौंतीस-पैंतीस साल के लगभग थी। माथे पर चन्दन का लेप, सिर पर भारी पगड़, जिसने गर्दन और माथे का काफी भाग और दोनों कान ढंक लिये थे। हर एक ज्योतिषी का साफा इसी ढंग से बंधा हुआ होता है। कान ढांपने का कारण शायद यह हो कि दूसरों की बात सुनने के बजाय अपनी बात उन्हें सुनानी होती है।

ज्योतिषी ने ताया के हाथ की रेखाओं को बड़े ध्यान से देखा और फिर कहा—"सरदार जी, सच-झूठ तो परमात्मा जानता है और या फिर आपका मन! हमारी विद्या और बुद्धि में जो बात आती है, वह हम

बताते हैं। रेखाओं से प्रकट होता है कि यह आत्मा घूमने में प्रसन्न रहती है। समुद्र पार की यात्रा कर आए हो और कितने ही वर्ष परदेश में बिताये हैं।"

"ज्योतिषीजी, आप बिलकुल ठीक कहते हैं, बूढे ने बीस साल मलय में बिताये हैं।" तारासिंह ने समर्थन किया और पलटकर कहा, "अब बताओ ताया तुम कहते थे सब झूठ है, निरा पाखंड है।"

ताया झेंप गया; लेकिन दूसरे ही क्षण सम्भल कर बोला, "मालूम होता है कि तुम सब कुछ सिखा लाए हो।"

"वाह! मुझे क्या पडी थी कि सिखाकर लाता। तुम खुद कोई प्रश्न पूछो, अगर ठीक बता दिया, फिर तो मानोगे।"

"सरदारजी, आपकी आत्मा को बहुत कष्ट सहन करने पड़े हैं। इसी से भगवान पर और सत्‌विद्या पर आपका विश्वास नही रहा।" ज्योतिषी बोला।

"विश्वास, विस्वास जाने दो, यह बताओ कि मुझे अब किस बात की धुन है?" ताया ने प्रश्न किया।

ज्योतिषी ने ताया के हाथ को दो-तीन बार उलट-पलटकर देखा। अपनी अध-खुली आंखो को झपकाया और फिर आवाज को महीन बनाकर यों बोलना शुरू किया जैसे शब्द आत्मा की अथाह गहराइयों से निकल रहे हो, "मन बडा चचल है। उसमे नाना प्रकार के सकल्प-विकल्प भरे रहते हैं। अब आपके मन मे यह धुन समाई है कि कुछ भी हो फिरगी की भाषा सीखनी है।"

नारायण हसा। तारासिंह ने उसका हाथ दबाकर चुप रहने को कहा; लेकिन वह खुद मुस्करा दिया।

"यह सब तुम्हारी शरारत है।" ताया ने उसे मुस्कराते देखकर कहा।

"शरारत!" उसने आश्चर्य प्रकट किया, "मैं और ताया से शरारत करूंगा, शर्म नही आएगी मुझे। ज्योतिषीजी, इन्हें कोई आगे की बात बताइये। बात ऐसी हो जो शीघ्र सच होने वाली हो।"

"आगे की बात बताना तो हमारी विद्या का सबसे बड़ा गुण है। यही न बतायें तो हमारी बात कौन सुनेगा?" ज्योतिषी ने बगल से पत्रा निकाला और उसे एक विशेष पृष्ठ पर खोलकर ताया के सामने रख दिया। "लो, सरदार जी। इस पर सोने या चांदी का सिक्का रक्खो। हम तुम्हें प्रश्न लगाकर आगे की बात बतायेंगे।"

सिक्के की बात सुनकर ताया सकपकाया। तारासिंह ने उसे कन्धों से पकड़कर कहा—

"सोने का नहीं तो चांदी ही का निकालो। जब तक मुफ्त बताया, मजे से सुनते रहे। दछना मांगी तो लगे बगलें झांकने।"

"तुम जानते हो।" ताया बोला, "सोने का सिक्का देश में होता नहीं। दवन्नी-चवन्नी चांदी की थी, अंग्रेज ने वे भी नहीं रहने दी। फिर बताओ क्या निकालें? क्या रखें?"

"सरदारजी, सरदारजी! सोना-चांदी न सही, गिल्ट, जिस्त, तांबा—कुछ तो निकालो। हमें देश के सिक्के से मतलब है। आम खाने हैं, पेड़ नहीं गिनने।"

ज्योतिषी की आवाज बदल गई थी, ताया ने चौंककर उसकी ओर देखा और हठात मुंह से निकला—"तिलक!"

नारायण, तिलक और तारासिंह—तीनों एक साथ हंस पड़े। कमरा कहकहों से गूंज उठा।

तिलक भेस बदलने में पटु था। उसके साथ रहने वाले साथियों को भी धोखा हो जाता था। सबसे बड़ी पहचान कान पर चोट का निशान था और वह उसने पगड़ी से ढंक रखा था। एक बार पुलिस के मुकाबिले में पिस्तौल की गोली कान को छेदती हुई निकल गई थी। साफे को कान पर अच्छी तरह बंधा देखकर और तारासिंह की बातों से नारायण समझ गया था कि तिलक ने पुलिस की नजरों से बचने के लिए ज्योतिषी का भेस बनाया है।

"देखा ताया, बड़े चालाक बने फिरते हो।" तारासिंह ने कहा,

"इतनी बातें होने पर भी तिलक को नहीं पहचाना।"

"धोखा तो जरूर हुआ है।" ताया ने स्वीकार किया, "मैं तो समझा था कि सी० आई० डी० का कोई आदमी हमारा भेद लेने आया है।"

ताया ने अपनी बात विनोद-भाव से कही थी। कमरे मे फिर ठहाका पड़ा।

: 17 :

साम्राज्य

खुफिया पुलिस के सिपाही ने अशोक के फेंके हुए पुर्जों को जब घर आकर जोड़ा, तो वह एक छोटा-सा पत्र बन गया—

तिलक भाई,

मैं 24 दिसम्बर को ललानी आ रहा हूं। आशा है कि तुम मुझे वहीं मिलोगे।

तुम्हारा
अशोक

पत्र संक्षिप्त था; लेकिन सिपाही प्रसन्न था, जैसे उसे असीम धन मिल गया हो। पुलिस एक अर्सा से तिलक को खोज रही थी; मगर उसका कुछ पता नहीं चलता था। अब इस सिपाही को सुराग मिला था और उसने सोचा कि वह तिलक को गिरफ्तार करके पुरस्कार पायेगा और कोई ऊंचा पद पाने का अधिकारी अलग बनेगा।

उस दिन 24 दिसम्बर था। अशोक को जाने के लिए तैयार देखकर सिपाही ने अनुमान लगाया कि वह शायद खत नहीं भेज सका अथवा यह उसकी नकल है, जो फाड़कर फेंक दी है। निस्सन्देह अब वह ललानी जा रहा है, तिलक भी वहीं होगा। इन्हीं विचारों में मगन उसने दो सहायक सिपाहियों को साथ लिया और ललानी को चल पड़ा। वह चार-पांच दिन बराबर इधर-उधर भटकते रहे, न अशोक की कुछ खोज-खबर मिली और न तिलक गिरफ्तार हुआ। वह अपना-सा मुंह लेकर असफल लौट आए।

आशा उन्नति की लगा रखी थी उलटा कारगुजारी पर 'खराब' का निशान मिल गया। इन्चार्ज अफसर ने डाट अलग बताई और एक सख्त डयूटी पर तब्दील कर दिया। अशोक की निगरानी पर कोई दूसरा सिपाही नियुक्त कर दिया गया।

जब नारायण तिलक से मिलकर लौट रहा था, तो यह नया सिपाही चौक के मोड पर खड़ा खैरातीराम से घुसर पुसर बातें कर रहा था। सिपाही ने कोई सवाल पूछा था कि खैराती की नजर नारायण पर पड़ी और वह सहसा लाल-पीला होकर बोला—'मुझे क्या मालूम ? कुत्ते की तरह दूसरों के पीछे लगे रहते हो तुम भी कोई इन्सान हो।'

नारायण खैरातीराम को लडकपन से जानता था। वे दोनों एक ही स्कूल में पढ़ते थे। नारायण उससे सिर्फ एक दर्जा आगे था। मैट्रिक पास करने के तीन चार साल बाद जब खैराती जीविका तलाश में लाहौर आया तो रहने के लिए मकान की आवश्यकता थी और वह अधिक किराया भी नहीं दे सकता था। नारायण ने दफ्तर के नीचे उसे यह सस्ता कमरा ले दिया था। लेकिन दरवाजे पर खुफिया पुलिस का स्थायी पहरा देखकर उसकी रूह काप जाती थी, कहीं उसके विरुद्ध रपट न हो जाए, किसी मुकदमे में फास न लिया जाये। लेकिन दो चार महीने रहने के बाद जब मालूम हुआ कि जो लोग राजनीतिक कार्यों में भाग नहीं लेते, सिर्फ किरायादार की हैसियत से यहा रहते हैं उन्हें पुलिस कुछ नहीं कहती, तब उसकी जान में जान आई।

कोई सिपाही उससे कुछ पूछता तो वह बड़ी नम्रता और शिष्टता से अपनी अभिज्ञता प्रकट करता। शिष्टता और नम्रता का कारण यह नहीं था कि वह स्वभाव से ही नम्र था बल्कि रपट का भय उसे नम्र बना देता था। आज वह इतना उद्दंड और मुंह फट बन गया और पुलिस के सिपाही को—सरकार को—आखें दिखाने लगा तो उसका यह आचरण आश्चर्यजनक अवश्य था।

नारायण उसके बारे में उसी दिन से सशंक और संदिग्ध था जब पार्टी का सदस्य बनने की इच्छा प्रकट की थी। भाई ने उसे

रखा था, घर पर बूढ़ी मां, पत्नी और दो बच्चे थे, थोड़ी-सी तनख्वाह में खर्च मुश्किल से चलता था।

लेकिन खैरातीराम ने उस दिन बड़ा दिल निकाला और गनी को डेढ़ रुपया मक्खन और टोस्ट के लिए दे दिया। उसे दो-तीन साल वहां रहते हो गए, पहले कभी पैसे की गुंजाइश न निकाल सका, राजनीतिक कार्यों में कभी कोई दिलचस्पी नहीं ली, अपने कमरे में पड़ा बिलों में बन्द कीड़े-मकोड़ों के सदृश जीवन व्यतीत करता रहा। फिर सहसा यह उदारता कहां से आ गई? और पार्टी में भर्ती होने की सनक क्यों सिर पर सवार हो गई?

नारायण स्कूल की जो बातें भूल चुका था, हठात् स्मरण हो आईं। बहुत-सी छोटी-छोटी ऐसी घटनायें थीं, जिनके कारण स्कूल के तमाम लड़के खैरातीराम को धूर्त और ढोंगी समझते थे। एक घटना स्वयं नारायण से सम्बन्धित थी।

नारायण आठवें दर्जे में पढ़ता था। उसने कुछ साथियों के सहयोग से एक सभा स्थापित की थी, जिसका उद्देश्य लड़कों में संगठन-शक्ति और भाषण-कला को उन्नत करना था। धीरे-धीरे सभी कक्षाओं के लड़के इसमें भाग लेने लगे। किसी बात पर झगड़ा हो जाने के कारण बड़ी कक्षाओं—नवीं और दसवीं के विद्यार्थियों ने अपनी सभा अलग बना ली। दोनों सभाओं में मुकाबिला होने लगा, आपस की आलोचना और व्यंग-प्रहार भी।

एक बार दसवीं कक्षा के एक विद्यार्थी ने अपनी सभा में दूसरी सभा पर कुछ चोटें की। दूसरी ओर से उसका उत्तर आना आवश्यक था। खैरातीराम नारायण के पास आया कि मुझे एक करारा-सा मुंह-तोड़ उत्तर लिख दो, मैं सभा की बैठक में पढ़ूंगा। बहुत आग्रह करने पर नारायण ने उत्तर लिख दिया। लेकिन जब सभा हो रही थी, उसके विवशता प्रकट करने पर नारायण ने खुद वह उत्तर पढ़ा। विरोधी पक्ष के एक लड़के ने उसी बैठक में प्रत्युत्तर भी पढ़कर सुना दिया, जिसमें नारायण पर और उसकी सभा पर तीखे कटाक्ष थे और खूब खिल्ली उड़ाई थी।

कहना नहीं होगा कि खैरातीराम ने नारायण का लेख पहले ही से विरोधी पक्ष को पढा दिया था और उसी के आधार पर यह प्रत्युत्तर लिखा गया था।

बात छोटी थी, लेकिन छोटी बातो का बडी बातो पर असर पडता है। छोटे आईने म मनुष्य की जो शक्ल दिखाई देती है, बडे मे वह बदल नही जाती।

खैरातीराम ने जिस दिन से पार्टी का सदस्य बनने की इच्छा प्रकट की थी, नारायण को वह घटना सैकडो बार स्मरण हो आई थी और हर बार खैरातीराम का जो चेहरा उसने देखा वह चेचक के दागो से भरा हुआ, भद्दा और कुरूप था। उस दिन वह गनी से बडा घुल मिलकर बातें कर रहा था, लेकिन नारायण के आते ही छिपकली की भाति कमरे से निकल गया। आज भी अगर वह नारायण को न देखता तो सिपाही को कभी इस प्रकार का उत्तर न देता। माना कि उसे यही उत्तर देना था, फिर भी नारायण की ओर देख एक विशेष मुख मुद्रा बनाने की क्या जरूरत थी?

इन बातो के आधार पर नारायण को विश्वास था कि खैरातीराम पुलिस वालो से मिल गया है। अशोक से बात हुई तो उसे भी यह तर्क जच गया और वे खैराती से सावधान और सतर्क रहने लगे।

नारायण चाहता था कि वह खैरातीराम को स्कूल के साथी के नाते समझाये कि मेहनत मजदूरी से जो कमा लेते हो, उसी पर सन्तोष करो, इस नीचता से धन कमाओगे तो पचेगा नही। मगर वह जानता था कि खैरातीराम धूर्त है, मानेगा नही, बल्कि कहेगा कि नारायण उस पर झूठा आरोप लगा रहा है। अतएव ठोस प्रमाण की जरूरत थी।

नारायण यह सोचता हुआ आ रहा था कि एक नन्ही लडकी दौडती हुई आई और उसकी टागो से लिपट गई। नारायण ने चौंककर उसे देखा और प्यार करके पूछा—'ऊषा, तुम कब आई?'

'माताजी, राज, महेन्द्र और पूशी—सब आये हैं। अब हम यही रहा करेंगे।"

ऊषा बलवन्त की बेटी थी, उम्र सात-आठ साल होगी। राज उससे

बड़ा था, दूसरा लड़का महेन्द्र ऊषा से तीन साल छोटा था और सबसे छोटी पुष्पा डेढ़-दो साल की होगी। सब उसे पूशी कहते थे।

राज ने जब घर जाकर अपील रद्द हो जाने की बात सुनाई तो भाभी ने सहानुभूति प्रकट करने के बजाय बडबडाना शुरू कर दिया, शाम तक ननद-भावज में अच्छी खासी झपट हो गई। भाभी ने ननद को जी भरकर कोसा और साफ कह दिया कि जहां पति गया है, तुम भी जाओ, हमसे यह बोझ नही उठाया जाता। बलवन्त की पत्नी पार्वती भी सगर्वा और स्वाभिमानिनी थी, उसने सुबह उठकर सामान बांधा और यहां चली आई।

नारायण ने अदालत से लौटते ही नीचे का कमरा साफ करवा दिया था। गनी और बूटासिंह ने सामान भीतर रखवा दिया, जो इधर-उधर बिखरा पड़ा था। बच्चे सुबह से भूखे थे। पार्वती सामान योंही छोड़कर खाना तैयार करने लगी, उन्हें खिला-पिलाकर इत्मीनान से सामान जोड़ेगी। बरामदे में ईंटें रखकर चूल्हा बना लिया था, उस पर सब्जी पक रही थी, पार्वती आटा गूंध रही थी और गनी चारपाई पर बैठा बच्चों से खेल रहा था।

"देखो न गनी! अब तो हमारा घर भी बच्चों का घर हो गया। खूब रौनक रहेगी।" नारायण ने पार्वती को नमस्ते कहने और खैर-खबर पूछने के बाद कहा।

"पूशी महेंदी को मिद्दी कहती है।" गनी प्यार से पूशी की ठुड्डी पकड़कर बोला।

"मैं भी पूशी को फूसी कहता हूं।" महेंदी ने होंठों को गोल बनाकर उत्तर दिया। फिर उसने अपना मुंह पूशी के नंगे पेट पर रखा और उसे प्यार से गुदगुदाने लगा। वह मुस्कराई और उसके सिर को अपने नन्हें हाथों से पकड़कर दूर हटाने लगी। लेकिन महेंदी के प्यार में अधिक जोश आ गया और वह उसे पूरे वेग से गुदगुदाने लगा। पूशी ने मुंह बिसोर लिया और करीब था कि वह रोने लगती। इस स्नेह-सन्कट से उसका उद्धार करने के लिए गनी ने महेंदी को बांह पकड़कर अलग करते हुए कहा—

"यह बड़ा शरारती है।"

महेंदी ने भी अपने शरारती होने का झट प्रमाण दिया। वह होठ बिचकाकर मुह चिढ़ाने लगा। नारायण और गनी हस पडे, लेकिन पार्वती ने उसे डाटा।

"पगले! अपने से बडो का मुह नही चिढाया करते।"

महेंदी खिलखिलाकर हसने लगा। उसने मा की सीख को भी हसी मे उडा दिया।

पार्वती ने आटा गूधकर सब्जी मे कडछी फेरी और परेशान बालो को ठीक करते हुए नारायण की ओर देखा। वह कुछ कहना चाहती थी; लेकिन कहते हुए झिझक रही थी। आखिर उसने आचल के एक सिरे को अगुली पर लपेटते हुए कहा—

"क्यो नारायण, अब कही और अपील नही हो सकती?"

"नही! अपील अब कहा होगी? हिन्दुस्तान मे हाईकोर्ट से बडी अदालत और नही।"

"राज कहता है कि गवर्नर और वायसराय के पास भी दरख्वास्तें जाती हैं। तुम मेरी ओर से एक दरख्वास्त लिख दो कि वे उन्हे रिहा कर दें।"

नारायण ने पार्वती की ओर देखा। वह एक मा थी, उसे अपने बच्चो की चिंता थी। वह एक पत्नी थी और उसे पति का जेल मे बन्द रहना सहन नही था। उसकी आखो मे अवसाद था। वह किसी-न-किसी आशा पर जीना चाहती थी, अनहोनी-से-अनहोनी बात का सहारा लेना चाहती थी।

"दरख्वास्त देने से रिहाई थोडी हो जायेगी। शायद वे दरख्वास्त को पढें भी न।" नारायण ने गम्भीरता से कहा।

"अगर वे दरख्वास्तें नही पढते, तो किस लिए बैठे है? क्या काम करते हैं?"

पार्वती ने एक-एक शब्द पर जोर दिया। जैसे वह इन शब्दो मे अपने भीतर का सारा आक्रोश उडेल देना चाहती हो।

"गवर्नर और वायसराय का काम है, हिन्दुस्तान मे अग्रेजी राज्य की

रक्षा करना, अगर कोई कानून तोड़े तो पुलिस और फौज की सहायता से उसे गिरफ्तार करना। सजा अदालत देती है, लेकिन सिफारिश उनकी पुलिस करती है। अदालत जो फैसला कर दे, उसमें वे दखल नहीं देते?"

"दखल दे तो सकते हैं?" पार्वती ने सहज बुद्धि से कहा।

"दखल दे सकते हैं।" नारायण बोला, "मगर क्या जरूरत पड़ी है उन्हें दखल देने की। कानून उन्होंने बनाये, अदालतें उन्होंने बनाईं। सब काम उनकी इच्छा के अनुसार हो रहा है।"

"पर सारे जज अंग्रेज तो नहीं होते?"

"जज अंग्रेज न हों, कानून तो अंग्रेज का है। वह हमारे देसी जजों को भी मानना पड़ता है और वे उसे अंग्रेज जजों से भी अधिक मानते हैं क्योंकि उन्हें अंग्रेजी सरकार ने जज बनाया है।"

"क्या उनके आस-औलाद नहीं?" पार्वती ने आविष्ट स्वर में कहा, "क्या उन्हें अपने भाइयों पर तनिक भी तरस नहीं आता?"

"ध्यान आता है उन्हें अपनी तनख्वाह का, अपने पद का, अगर वे देश का ध्यान करने लगें तो क्षण-भर भी इस पद पर न रह सकें।"

"हाय, हाय! कितने निर्दय होते हैं यह लोग। हाईकोर्ट का वह जज मुझे मिल जाय तो पूछूं कि अगर तुम्हें कोई जेल भेज दे, तुम्हारे बच्चों का क्या बनेगा? मैं कहा ले जाऊं इन बच्चो को? अब सम्भालो तुम्हीं, मुझसे नहीं पाले जाते।" पार्वती का कोमल चेहरा कठोर पड़ गया। कुछ क्षण मौन के बीते। सब्जी को कड़छी से देखकर वह फिर बोली—

"अगर कोई अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध सच्ची बात कहता है, तो सांप क्यों सूंघ जाता है इन्हें? अपने भाइयों को सजा देते शर्म नहीं आती?"

पार्वती पुराने ढंग की अपढ़ स्त्री थी। उसने जीवन की उस अवस्था में पग रखा था जब जवानी ढलने लगती है। बच्चे जनते-जनते न सिर्फ उसका रूप ढल गया था, बल्कि शरीर भी कुछ ढीला-ढाला और तनिक स्थूल हो चला था। उसके जीवन का सबसे बड़ा [illegible] गृहस्थी चलाना और पति को प्रसन्न रखना था। ऐसा ही [illegible] गया था। पति बैंक में नौकर था, डेढ़ सौ रुपये महीना [illegible]

उन्नति करके मैनेजर बन जाने की आशा थी। लेकिन जब देश मे असहयोग आन्दोलन चला तो वह नौकरी छोडकर जेल चला गया। पार्वती को इस बात से बडा आघात पहुचा। उसके विचार घर की चारदीवारी तक सीमित थे, वह देश की बात कैसे सोचती ? उसे मालूम नही था कि अग्रेज का राज्य अदालतो और जेलो तक ही सीमित नही है, बडा लम्बा-चौडा जाल फैला हुआ है। लोग गरीब हैं, पेट के लिए आत्मा तक बेच देते हैं, अग्रेज से घृणा करते हुए भी उसकी ज़ालिम सरकार के कल-पुर्जे बने हुए हैं।

पार्वती को इन लोगो से और देश से कोई सरोकार नही था। उसे सिर्फ अपना, अपने पति और बच्चो का ख़याल था। उसे पति का जेल जाना कभी अच्छा नही लगा और उसके राजनीतिक कार्य के महत्त्व को भी उसने नही पहचाना। जब वह जेल से बाहर आता, लोग हार पहनाते, आदर-सम्मान करते, उसकी देश भक्ति और वीरता को सराहते, तो वह प्रसन्न होती। पर जब देश भक्ति के अपराध मे उसे जेल भेज दिया जाता, तो उसकी प्रसन्नता ऐसे उड जाती, जैसे तनिक धूप लगने से कच्चा रग उड जाता है। पहले जब बलवन्त जेल गया था, तो कैद की अवधि लम्बी नही थी और इतने झमट नही थे, वह मैके घर रह आई थी।

लेकिन अब यह चार साल कैसे व्यतीत होगे ? अपील रद्द होने के बाद गवर्नर और वायसराय को दरख्वास्त भेजने की बात सोची थी, नारायण का उत्तर सुनकर यह आशा भी न रही। वह थोडी देर झुझलाती और बडबडाती रही, फिर चुप हो गई। य चुप्पी आक्रोश और विवशता की सूचक थी।

"देखो चाचा जी मैं पूनी का स्वेटर बुन रही हू।" ऊषा बिखरे हुए सामान मे से ऊन और सलाइया ढूढ लाई।

अच्छा तुम भी बुन लेती हो ! बडी अच्छी लडकी हो, एक स्वेटर मुझे भी बुन देना।"

"हा, आपका भी बुनूगी।" ऊषा ने कहा। वह उसके समीप ही चारपाई पर बैठ गई और स्वेटर बुनने लगी। वह सलाइयो को जल्दी जल्दी चलते

रक्षा करना, अगर कोई कानून तोड़े तो पुलिस और फौज की सहायता से उसे गिरफ्तार करना। सजा अदालत देती है, लेकिन सिफारिश उनकी पुलिस करती है। अदालत जो फैसला कर दे, उसमें वे दखल नहीं देते?"

"दखल दे तो सकते हैं?" पार्वती ने सहज बुद्धि से कहा।

"दखल दे सकते हैं।" नारायण बोला, "मगर क्या जरूरत पड़ी है उन्हें दखल देने की। कानून उन्होंने बनाये, अदालतें उन्होंने बनाईं। सब काम उनकी इच्छा के अनुसार हो रहा है।"

"पर सारे जज अंग्रेज तो नहीं होते?"

"जज अंग्रेज न हों, कानून तो अंग्रेज का है। वह हमारे देसी जजों को भी मानना पड़ता है और वे उसे अंग्रेज जजों से भी अधिक मानते हैं क्योंकि उन्हें अंग्रेजी सरकार ने जज बनाया है।"

"क्या उनके आल-औलाद नहीं?" पार्वती ने आविष्ट स्वर में कहा, "क्या उन्हें अपने भाइयों पर तनिक भी तरस नहीं आता?"

"ध्यान आता है उन्हें अपनी तनख्वाह का, अपने पद का, अगर वे देश का ध्यान करने लगें तो क्षण-भर भी इस पद पर न रह सकें।"

"हाय, हाय! कितने निर्दय होते हैं यह लोग। हाईकोर्ट का वह जज मुझे मिल जाय तो पूछूं कि अगर तुम्हें कोई जेल भेज दे, तुम्हारे बच्चों का क्या बनेगा? मैं कहां ले जाऊं इन बच्चों को? अब सम्भालो तुम्हीं, मुझसे नहीं पाले जाते।" पार्वती का कोमल चेहरा कठोर पड़ गया। कुछ क्षण मौन के बीते। सब्जी को कड़छी से देखकर वह फिर बोली—

"अगर कोई अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध सच्ची बात कहता है, तो सांप क्यों सूंघ जाता है इन्हें? अपने भाइयों को सजा देते शर्म नहीं आती?"

पार्वती पुराने ढंग की अपढ़ स्त्री थी। उसने जीवन की उस अवस्था में पग रखा था जब जवानी ढलने लगती है। बच्चे जनते-जनते न सिर्फ उसका रूप ढल गया था, बल्कि शरीर भी कुछ ढीला-ढाला और तनिक स्थूल हो चला था। उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न समृद्ध गृहस्थी बसाना और पति को प्रसन्न रखना था। ऐसा ही गृहस्थ उसे मिल गया था। पति बैंक में नौकर था, डेढ़ सौ रुपये महीना तनख्वाह मिलती थी,

उन्नति करके मैनेजर बन जाने की आशा थी। लेकिन जब देश मे असहयोग आन्दोलन चला तो वह नौकरी छोडकर जेल चला गया। पार्वती को इस बात से बडा आघात पहुचा। उसके विचार घर की चारदीवारी तक सीमित थे, वह देश की बात कैसे सोचती? उसे मालूम नही था कि अग्रेज का राज्य अदालतो और जेलों तक ही सीमित नही है, बडा लम्बा चौडा जाल फैला हुआ है। लोग गरीब हैं पेट के लिए आत्मा तक बेच देते हैं, अग्रेज से घृणा करते हुए भी उसकी जालिम सरकार के कल पुर्जे बने हुए हैं।

पार्वती को इन लोगो से और देश से कोई सरोकार नही था। उसे सिर्फ अपना, अपने पति और बच्चो का खयाल था। उसे पति का जेल जाना कभी अच्छा नही लगा और उसके राजनीतिक कार्य के महत्त्व को भी उसने नही पहचाना। जब वह जेल से बाहर आता, लोग हार पहनाते, आदर सम्मान करते उसकी देश भक्ति और वीरता को सराहते, तो वह प्रसन्न होती। पर जब देश भक्ति के अपराध म उसे जेल भेज दिया जाता, तो उसकी प्रसन्नता ऐसे उड जाती जैसे तनिक धूप लगने से कच्चा रग उड जाता है। पहले जब वलवन्त जेल गया था, तो कैद की अवधि लम्बी नही थी और इतने झझट नही थे, वह मैके घर रह आई थी।

लेकिन अब यह चार साल कैसे व्यतीत होगे? अपील रद्द होने के बाद गवर्नर और वायसराय को दरख्वास्त भेजने की बात सोची थी नारायण का उत्तर सुनकर यह आशा भी न रही। वह थोडी देर झुझलाती और बडबडाती रही, फिर चुप हो गई। ये चुप्पी आक्रोश और विवशता की सूचक थी।

'देखो चाचा जी मैं पुशी का स्वेटर बुन रही हू।' ऊषा बिखरे हुए सामान मे से ऊन और सलाइया ढूढ लाई।

अच्छा तुम भी बुन लेती हो! बडी अच्छी लडकी हो एक स्वेटर मुझे भी बुन देना।'

"हा, आपका भी बुनूगी।" ऊषा ने कहा। वह उसके समीप ही चारपाई पर बैठ गई और स्वेटर बुनने लगी। वह सलाइयो को जल्दी जल्दी चलते

देख खुश हो रही थी। लेकिन नारायण का ध्यान उस ओर नहीं था, वह पार्वती को विषाद की मूर्ति बने देख रहा था।

पांच चिड़ियां चुग रही थी
एक चिड़िया उड़ गई; रह गई चार
चिड़िया, चिड़िया उड़ती जा!
उड़ती जा! उड़ती जा!!
चार चिड़ियां चुग रही थी
एक चिड़िया उड़ गई, रह गई तीन
चिड़िया, चिड़िया उड़ती जा!
उड़ती जा! उड़ती जा!!

ऊषा गाती और सलाइयां चलाती हुई बहुत ही भली लगती थी—बिलकुल नन्हीं चिड़िया-सी। उसे देखकर महेंदी भी प्रसन्न हो रहा था। लेकिन पार्वती अपने विषाद में डूबी हुई थी। बच्चों की प्रसन्नता भी उसे गुदगुदा न सकी। वह जेल में बन्द पति की बात सोच रही थी।

18

रूही

प्रात काल का समय था। रूही अपने पढने के कमरे में बैठी कुछ सोच रही थी। वह एक शाल में लिपटी हुई थी। सिर्फ सुन्दर चेहरा दिखाई दे रहा था जिस पर चिन्ता अंकित थी। सामने मेज पर एक पुस्तक खुली रखी थी। लेकिन जिस पृष्ठ पर खोली गई थी उसी पर खुली रह गई थी। वह पुस्तक कैसे पढे? मन कही और घूम रहा था। कोई मधुर स्मृति उसकी कल्पना को गुदगुदा रही थी और स्मृति का हल्का हल्का आलोक आखो से निकलकर कमरे में फैल रहा था। सहसा उसने शाल परे फेंक दिया और उठकर अलमारी खोली। उसमे से एक चित्र निकालकर देखने लगी।

ड्रेसिंग टेबल पर कदृदादम आईना रखा था और आईने के सामने खिडकी थी, जो सर्दी के बावजूद खुली हुई थी। थोडी देर पहले वह इस खिडकी मे खडी साथ वाले बाग का मनोरम दृश्य देख रही थी और खिडकी को उसी तरह खुला छोड दिया था ताकि शीतल समीर सुगध मे भरा हुआ भीतर आये। शीतल समीर के झोके भीतर आ रहे थे और वह उस चित्र को देख देखकर मुग्ध हो रही थी। चित्र का पौरुषत्व कितना आकर्षक था वह जितना उसे देखती थी उसकी आखो मे प्रेम और स्नेह की भावना गहरी होती जा रही थी। वह चित्र को देखते देखते आईने के सामने खडी हुई। शायद वह देखना चाहती थी कि इस प्रेम उद्‌गार ने उसे क्लोपीटरा से अधिक सुन्दर बना दिया है कि नही। आईने मे अपने

आपको देखा और वह मुस्कराई और चेहरे पर बिखरी हुई एक आवारा लट को संवारा।

ठीक उसी समय अपने प्रतिबिम्ब के पहलू में एक दूसरा प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। वह चौंकी और मुड़कर पीछे की ओर देखा। खिड़की खुली पड़ी थी—दूर तक पेड़-पौधे और फूल थे, कोई व्यक्ति दिखाई नहीं देता था। रूही ने सोचा मुझे धोखा हुआ है; दूसरा प्रतिबिम्ब भ्रांति मात्र है, अथवा उसकी अपनी कल्पना की परछाई है। लेकिन इस भ्रांति में भी आकर्षण था।

उसने अपनी आकृति फिर आईने में देखी, फिर वही प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। वह फिर मुस्कराई। प्रतिबिम्ब भी मुस्कराया। यह मुस्कराहट जानी-पहचानी थी। रूही की कल्पना ने ठोस यथार्थ का रूप धारण किया। लेकिन जब पीछे मुड़कर देखा तो खिड़की खाली थी; वहां कोई नहीं था। जिसका प्रतिबिम्ब था, वह फिर छिप गया था; रूही से आंख-मिचौनी खेल रहा था। वह लपक कर कमरे से बाहर आई। खिड़की के निकट जाकर देखा; लेकिन उसकी निगाहें जिसे ढूंढ रही थीं वह कहीं दिखाई नहीं दिया। वह चकित और अवाक् देखती रह गई। जी चाहता था कि जोर से आवाज दे। लेकिन उसके होठों पर मोर के मौन की छाप थी, बोलना चाहती थी, पर बोल नहीं सकी।

"मी आऊ! मी आऊ!" वृक्षों के झुंड में से मोर की मधुर ध्वनि गूंज उठी। मौन टूटा। रूही झूम उठी। उसने उल्लास में भरकर लम्बे-सयाह बालों पर हाथ फेरा और उसके समस्त शरीर में स्पंदन दौड़ गया। वह उन्मत्त-सी वृक्षों के झुंड की ओर बढ़ी, जैसे यह उसके पालतू मोर की आवाज हो और लपककर उसे गोद में भर लेना चाहती हो। आवाज स्नेह-सन्देश का मधुर आवाहन थी।

मगर जब वह झुण्ड में पहुंची, वहां कोई नहीं था और "मी आऊ" की आवाज तनिक परे से आ रही थी। वह आगे बढ़ी तो आवाज और आगे चली गई। आखिर वह बाग के ऐसे भाग में पहुंच गई, जहां सर्वदा एकांत था और सुन्दर फूल खिले हुए थे।

इखलाक सामने खडा मुस्करा रहा था। वे दोनो यही मिला करते थे।

रूही जिस आवाज के पीछे भाग रही थी, वह मोर की आवाज नही थी, बल्कि इखलाक खुद मोर की भाति बोल रहा था। वह पक्षियो के बोलने की नकल इस उत्तम रीति से करता था कि असल और नकल मे भेद करना कठिन था। रूही और वह बचपन से इकट्ठे खेले थे और वह उसके सामने पक्षियों की बोलिया बोलने का अभ्यास किया करता था। इसलिए वह उसके स्वर से भली भाति परिचित थी और यह जानने मे उसे तनिक भी कठिनाई नही होती थी कि इखलाक नकल कर रहा है, अथवा पक्षी बोल रहा है। बाग के सुन्दर वातावरण मे फूलो और पक्षियो के बीच खेलते हुए, उनके हृदयो मे एक दूसरे के प्रति प्रेम का स्वाभाविक विकास हुआ था और अब यह प्रेम इतना गहरा और गूढ था कि वे एक दूसरे को देखकर आध्यात्मिक सुख अनुभव करते थे।

राजनीतिक मतभेद के कारण जब इखलाक को घर छोडना पडा, तो वह रूही से छिप छिपकर मिला करता और उसे सदा मोर की आवाज से बुलाया करता था।

इखलाक आज बहुत दिनो के बाद आया था। उसे देख रूही खिल उठी। इखलाक की निगाहें उसकी आत्मा के कण कण को गर्मा रही थी, उसके भीतर आलोक भर रही थी। सूर्य की किरणो से प्रत्येक फूल-पत्ता चमक उठा था खिल उठा था। उसे अपनी बाहें फैलती हुई मालूम हुई, जैसे प्रेम उन्माद से लम्बी बाहे और लम्बी हो गई हो और वह उन्हें इखलाक के गले मे डाल देने के लिए विह्वल हो उठी हो। लेकिन सिर्फ बाहें ही क्यो उसका सारा शरीर इखलाक के बाहुपाश मे बध जाने के लिए तडप रहा था मचल रहा था। वह अपने सुन्दर, कोमल और अस्फुटित शरीर को मनोहर ढग से सम्भाले इखलाक के सम्मुख खडी उसकी ओर झाक्ती रही। सिर्फ होठ खुले—

"मैं कितनी देर से बैठी तुम्हें याद कर रही थी और तुम्हारी तस्वीर न्ख रही थी।"

इखलाक ने एकटक उसकी ओर देखा और मुस्कराया—"तभी तो कहा है कि दिल को दिल से राह होती है।"

"इतने सच्चे न बनो।" रूही ने पहलू बदल कर कहा, "अगर अम्मी खत न लिखतीं, क्या तुम फिर भी आते?"

"खत तो महज बहाना था रूही।" इखलाक की आंखें उसके सुन्दर चेहरे पर गड़ी हुई थी और बिना आंख झपकाये उसे देख रहा था, तुम्हारी मुहब्बत में इतनी कशिश है कि मुझे कहीं से भी खींच ला सकती है। फिर खत भी तो तुम्हीं ने लिखवाया था, अम्मी को तो मेरा पता ही मालूम नहीं था।"

वे कितनी ही देर खड़े एक-दूसरे की ओर देखते रहे और फिर हरी-हरी घास पर बैठ गये। रूही देख इखलाक की ओर रही थी और हाथ घास पर फेर रही थी, जैसे उसकी सूक्ष्मता और कोमलता को आत्मा में भर लेना चाहती हो। उसकी सुन्दर आंखों में जन्नत नाच उठी।

इखलाक ने जब से घर छोड़ा था अम्मी ने उसे पहली बार पत्र लिखा था और आग्रह किया था कि वह उसे मिलने आये। रूही ने बताया कि अम्मी याद करके तड़पा करती थी। नाराज वे इसलिए थी कि नाराजगी में बेटे की भलाई समझती थी। वे चाहती थी कि बेटा अपने नास्तिक विचारों को छोड़ दे और धर्म की राह पर चले और जैसे मां-बाप कहते हैं वैसा ही करे। लेकिन इखलाक ने घर छोड़ दिया, विचार नहीं छोड़े। कालेज का खर्च चलाने के लिए एक मित्र से सहायता लेता रहा और उसे जो मार्ग ठीक दिखाई दिया, उससे एक इंच भी इधर-उधर हटना गवारा नहीं किया। अम्मी तीन साल तक दिल कड़ा करके उसकी परीक्षा लेती रही। अब जब उन्हें विश्वास हो गया कि बेटा धुन का पक्का है, तो उसे अपने आप पर गर्व महसूस हुआ फैसला किया कि कुछ भी हो, वह मेरा बेटा है अगर वह अपने निश्चय पर दृढ़ है और उसके लिए घरबार छोड़ सकता है, माता-पिता का त्याग कर सकता है। तो मैं उसकी राह में रोड़ा नहीं बनूंगी।

तीन-चार दिन पहले वह रूही के कमरे में आई और उसके सुन्दर

कोमल बालो मे हाथ फेरते हुए बोली—"रूही बेटी ! मैंने इखलाक पर और तुम पर बडा जुल्म किया है। मा के लिए इस कदर सख्त रवैया मुनासिब नही था।" उसने बडे सयम से आसुओ को रोक रखा था। वह अधिक बात न कर सकी। सक्षेप मे कहा, "मुझे बताओ, वह कहा है, मैं उसे बुलाना चाहती हू।"

इखलाक रूही का फुफेरा भाई था। रूही उससे प्यार करती थी जब से उसने घर छोडा था, वह परेशान रहती थी। इखलाक तो अक्सर आकर मिल जाता था, लेकिन भविष्य धुधला दिखाई देता था और इस धुधलेपन मे फूफी के यह शब्द आशा की किरण बनकर आये। थोडी देर पहले वह फूफी के कठोर रवैया के बारे मे सोच रही थी। उसका ख्याल था कि यह रवैया कभी न बदलेगा। अब बदला देखकर उसे आश्चर्य भी हुआ और प्रसन्नता भी। श्रद्धा और स्नेह से उसने फूफी की ओर देखा, फिर बिना कुछ कहे वह हुमककर और सिमटकर उसकी गोद मे जा बैठी।

सरकार परस्ती उनके घराने की पुरानी रीति थी। सन् 1857 मे जब देशवासियो ने पहला स्वतन्त्रता-सग्राम लडा था तो उनके एक बुजुर्ग ने किसी बडे अग्रेज अफसर के प्राण बचाये थे और लडखडाती हुकूमत को सहारा दिया था। अग्रेज ने इस 'वफादारी' के एवज म उसे जागीर दी थी और नवाब की उपाधि से सुशोभित किया था। उसकी सतान को ब्रिटिश सरकार मे सदा उच्च पद मिलते आये थे। इस कुल का हर एक नौजवान फौज मे भर्ती होकर किसी-न-किसी बडे पद पर पहुच जाता था और फिर सिविल एडमिनिस्ट्रेशन मे भी ले लिया जाता था। इस समय रूही का पिता प्रात का करता-धरता बना हुआ था। उसे अग्रेज का विश्वास प्राप्त था, सरकारी हल्को मे बडा सम्मान था। उसका ख्याल था कि उसने जो उन्नति की है, इस विदेशी सरकार मे पहले किसी ने नही की और न आगे करने की आशा है।

इखलाक का पिता—रूही का फूफा भी बहुत ही बडा अफसर था और उनके साथ एक ही कोठी मे रहता था। चूकि सरकार द्वारा उनका इतना सम्मान होता था, इसलिए ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वफ़ादारी

उनका ईमान बन चुका था। इखलाक की क्रांतिकारी प्रवृत्ति ऐसा अपवाद थी जिसे वे किसी तरह भी सहन नहीं कर सकते थे। उसके बागी रुझान का ज्ञान होने पर घर में बड़ा तूफान उठा था। वे जिस पेड़ की छाया में बैठे जिंदगी के मज़े लूट रहे थे, वह उसी को जड़ से काट देना चाहता था। यह अक्षम्य कृतघ्नता थी। अगर वह उनका अपना खून न होता, तो एक क्षुद्र कीड़े के सदृश्य पांव तले कुचल दिया जाता। राष्ट्रवादियों के नारों से चिढ़कर इस कुल के एक बुजुर्ग ने कहा था—"अगर हमारी अंग्रेज़ी सरकार मेरे हाथ में बंदूक थमाकर मुझे खुली छुट्टी दे दे तो मैं इन सबको पागल कुत्तों की तरह गोलियों से भून दूं।"

इस कुल के किसी नौजवान के क्रांतिकारी बनने का अर्थ बर्फ से आग उत्पन्न होना था। घर वालों का विरोध सहन करना अत्यन्त साहस का काम था, और इखलाक ने इस साहस का परिचय दिया था। मां के नर्म व्यवहार से उसे प्रसन्नता हुई। वह उसे मिलने के लिए तरस रहा था, पत्र मिलते ही दौड़ा आया। रूही और इखलाक दोनों की राय थी कि अम्मी का विरोध खत्म हो जाने से सारे घराने का पचास प्रतिशत विरोध खत्म समझा जाये। वह दृढ़ संकल्प की स्त्री थी और उसे घर में बड़ा महत्व प्राप्त था। अब जो पचास प्रतिशत विरोध शेष रह गया था वह रूही के पिता के कारण था। बेटे की मुहब्बत ने मां को तो पिघला दिया; लेकिन बेटी की मुहब्बत शायद बाप को न पिघला सके। उसका सरकार से सीधा सम्बन्ध था; और 'वफ़ादारी' उसे घुट्टी में मिली थी।

रूही ने खुद इखलाक के विचारों का कभी विरोध नहीं किया था। वह जानती थी कि इखलाक मां के सदृश दृढ़ है और कोई प्रलोभन उसे अपने विश्वास से डिगा नहीं सकता। मगर आज उस यात्री की भांति जो आधा मार्ग चलने के बाद थक गया हो और चाहता हो कि मंज़िल शेष आधा मार्ग चले बिना ही उसके समीप आ जाये, रूही ने इखलाक से कहा—

"अगर अब्बाजान नाराज ही रहें तो क्या होगा ?"

"तुम्हीं बताओ।"

"मैं क्या बताऊ ?" रूही की पलकें झुक गईं, "मैं तो कुछ कह नहीं सकती, तुम्ही अपनी जिद छोड दो" और फिर आखो मे आंसू भर और पुतलिया घुमाकर कहा, "देखो इखलाक मेरी खातिर।"

इखलाक ने एक नजर रूही पर डाली। उसे देखा और देखता ही रहा। फिर गम्भीर और दृढ आवाज मे कहा—"अगर यह महज जिद है, तो मैं कहूगा कि तुम ने मुझे खाक भी नही समझा।"

फिर वह सहसा चुप और निश्चल हो गया। मुख-मुद्रा कठोर पड गई। आखो के बदले हुए भाव से पता चलता था कि उसें रूही की बात से दुख पहुचा है। जिस मनसूर ने दूसरो के ईंट-पत्थरो की तनिक परवा नही की, वह अपने दोस्त शिबली के फूल मात्र से तिलमिला उठा था। इखलाक को रूही के प्रेम पर गर्व था और वह समझता था कि यह प्रेम उसे नवशक्ति और साहस प्रदान करता है और आदर्श की ओर बढने मे समर्थ बनाता है।

उसने कई बार अपने विश्वास की व्याख्या रूही से की थी और उसे बताया था कि हम एक नया युग लाने और नया ससार निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील हैं। यह ससार तुम्हारी आंखो मे आबाद जन्नत की तरह सुन्दर और समृद्ध होगा। इस संसार मे मानव शोषण और शोषित नही होगा और उन्नति और आत्म-विकास के अवसर और साधन से वचित नही रहेगा।

रूही यह बातें सुनती तो आनन्द से झूम जाती और इखलाक की आखो मे आंखें डाल देती। कितना सुख और कितना आह्लाद भरा हुआ था उन आखो मे, जो नए ससार के सपने देखती थीं। वह उन आखो मे देखती रहती, उनके द्वारा अन्त करण मे झांककर देखती और दूसरे ही क्षण उसका सिर इखलाक के सीने पर टिक जाता, जैसे वह उसके हृदय की विस्तृता मे खो जाना चाहती हो, इन आंखो में समा जाना चाहती हो।

रूही का यह प्यार इखलाक के सपनो को सुन्दर मे सुन्दरतर बना देता था, उनमे मिठास भरता था और उसे आगे बढने मे सहायता देता था।

लेकिन आज स्वयं रूही कह रही थी—"तुम्ही अपनी ज़िद छोड़ दो !"

क्या उसके सपने महज़ ज़िद थे ?

उसने मां को नाराज किया, घर छोडा। कष्ट सहन किए और अब भी कर रहा था। एक रूही थी, जिसने सबके छोड़ देने पर भी उसे नहीं छोडा था। लेकिन आज उसी के मुख से वह यह क्या सुन रहा था।

"देखो इख़लाक मेरी ख़ातिर !"

वह जितना सोचता था, उतना ही उसका चेहरा भाव-रिक्त और कठोर होता जा रहा था। देखने को वह चुप और निश्चल था, परन्तु उसका मन चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था—"रूही तुम मेरा मार्ग नहीं रोक सकती। जब मैंने मां की मुहब्बत की ख़ातिर इन सपनों को नहीं छोडा तो तुम्हारी ख़ातिर भी नहीं छोड़ूंगा। मेरे यह सपने तुम्हारी आंखों से कहीं ज्यादा हसीन है।"

उसने एक दृष्टि रूही पर डाली और गर्दन दूसरी ओर घुमा ली। सामने फूल खिले थे, पक्षी चहचहा रहे थे, लेकिन इख़लाक की दृष्टि फूलों पर नहीं पड़ रही थी। वह शून्य में झांक रहा था। पक्षियों के गीत उसे सुनाई नहीं पड़ते थे।

इख़लाक की वह दृष्टि रूही के हृदय मे कांटे की तरह चुभ गई। उसमे कितनी चुभन और शिकायत थी। रूही चुप और निस्तब्ध बैठी इस चुभन और इस शिकायत को महसूस करती रही। इख़लाक की मनःस्थिति को समझने का प्रयास करती रही। लेकिन उसके अपने भीतर हलचल मची थी, उनसे यह चुभन सहन नहीं होती थी।

"इख़लाक !" सहसा रूही की आवाज वातावरण की निस्तब्धता में गूंज उठी जैसे उसने बहुत दूर से पुकारा हो।

"इख़लाक ने उसकी ओर देखा। रूही की निगाहें मिलीं और झुक गई और उसने अपने बायें हाथ की सुनहली चूडी को दायें हाथ से घुमाते हुए कहा—"नाराज हो गये मुझ से !"

"नाराज !" इख़लाक ने रूही की ठोढ़ी पकड़ कर उसका मुंह ऊपर उठाया। कितनी निरीहता थी रूही की आंखों में।

"नही, मैं तुम से नाराज नही हो सकता रूही।"

"फिर खामोश बैठे क्या सोच रहे हो?" रूही के स्वर मे मृदुता लौट आई।

"मैं सोच रहा था," इखलाक बोला "अगर हम माजी और हाल के बजाये मुस्तकबिल की बात सोचें और तमाम बनी नो इसान के फायदे की बात सोचें तो हमारे सपने कितने मीठे और हमारे इरादे कितने अजीम हो।"

इखलाक का यह रूप कितना प्यारा था। रूही उल्लास से झूम उठी। वह इसी इखलाक से प्रेम करती थी, उस पर गर्व करती थी। वह उसका मार्ग रोकने के बजाय उसकी सहायक बनना चाहती थी और उसके साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढना चाहती थी।

"इखलाक! मुझे अपना नही अम्मी का ख्याल था। वे हमारी खातिर कितनी दु खी रहती हैं।"

"मुझे भी उनका ख्याल है, रूही!" इखलाक बोला, 'वह मा है, बेटे से मुहब्बत करती है। लेकिन जितना तुम मुझे समझ सकती हो, वह नही समझ सकती, वह मेरे ख्यालात को जिद कह सकती हैं, तुम नही कह सकती।" इखलाक ने दृढ स्वर मे कहा। एक क्षण मौन रहा और फिर बोला, 'वह मजहब को मानती हैं, पर उसकी हकीकत को नही समझती।" इखलाक चुप हो गया और अपनी भावनाओ को सयत करके फिर कहा—"मुझे इस्लाम के उस इनकलाबी दौर पर नाज है जब हजरत मुहम्मद ने अरबो की बुतपरस्ती और बोसीदा समाज के खिलाफ आवाज उठाई थी। कुरेशी ताजरो और बुतपरस्तो ने उस आवाज को दबाने की लाख कोशिश की। लेकिन वह आवाज दब न सकी क्योकि वह किसी शख्स की नही, माहौल, हालात और वक्त की आवाज थी, हक की आवाज थी। गरीब और पसमादा अवाम ने उस आवाज को लवेक कहा और इस्लाम के झडे तले जमा हो गये। फिर इस आवाज ने जो तारीखी कारनामे सरअजाम दिये, वे किसी पोशीदा नही हैं। जो लोग महज फौजी कमियाबियो को देखते हैं और कहते हैं कि इस्लाम तलवार के जोर से फैला है, वे उसके

इनकलाबी पहलू (को भूल जाते है। असल चीज को नजर अंदाज कर देते हैं। इस्लाम ने दुनिया को नया ख्याल और नया फलसफा अता किया है। इस फलसफे को लेकर इंसान आगे बढा है, दुनिया आगे बढ़ी है और उसकी तहजीब आगे बढी है।"

इखलाक चुप हो गया। उसका चेहरा गम्भीर और शांत था। उसकी आंखो मे असाधारण चमक थी। उन विचारों की झलक थी, जिनके बल पर सैकड़ो साल पहले इस्लाम फैला था, जिन्होंने दुनिया को बदल दिया था। रूही इस असाधारण चमक को देखती रही, शांति की अमर अभिलाषा को अपनी आत्मा मे भरती रही।

"इस्लाम सिर्फ अबादत ही का मजहब नही था," इखलाक ने फिर कहा, उसका मुखमण्डल चमक उठा था, "इस्लाम ने वक्त की जरूरतों को समझा था, जागीरदारी समाज के मसलों का हल पेदा किया था। जब ईसाइयत बीमारियो को खुदाई कहर बताकर तवहुम्मात का प्रचार कर रही थी, दवाई इस्तेमाल करने वालो को दहरिया बताकर जिन्दा जला दिया जाता था, इस्लाम ने इब्नसीना को पैदा किया, जिसने जराहत और तबाबत पर मुस्तनिद किताबें लिखी। इस्लाम ने इब्न अरशद ऐसे फिलासफर को पैदा किया, उसने अपने फलसफे की बुनियाद साइंस पर रखी और उस वक्त ईसाई पादरी साइंस को मजहब का दुश्मन करार दे रहे थे।"

इखलाक ने एक निगाह रूही पर डाली। वह ध्यान से सुन रही थी और उसकी बातों से प्रभावित जान पड़ती थी। इखलाक फिर बोला —

"यह इस्लाम की आजाद ख्यालो का करिश्मा है। लेकिन हमने इस्लाम को इस आजाद ख्याली को, इनकलाबी पहलू को भुला दिया है; हमारे लिए यह सिर्फ अबादत का मजहब बनकर रह गया है। और अबादत भी महज दिखावा है। हम इस्लामी मसावात का ढिंढोरा पीटते हैं और बड़े फख्र से कहते हैं कि हम सब मुसलमान एक ही दस्तरख्वान पर खाना खा सकते हैं। लेकिन जानते हो कि आज हमारे इस देश मे लाखों-करोड़ों मुसलमान ऐसे भी हैं जिनके पास खाना ही नही है, दस्तरख्वान का सवाल

ही पैदा नहीं होता। जो भीख मागकर खाते हैं, जो आधे पेट और नगे बदन सोते हैं, हम उन्हें रौंद कर खुश हैं, अपनी इमारत पर नाज करते हैं। मगर इस इमारत की हकीकत क्या है ? फिरगी की गुलामी। हम फिरगी के हाथ के मुहरे बनते आये हैं और बने हुए है।" रूही इखलाक के नजदीक खिच आई, इखलाक ने उसे अपनी बाहो म थामते हुए कहा "मुझे यह मुहरा बनना पसन्द नहीं रूही ! इस्लाम ने इनकलाब की जो शमअ रोशन की थी, जो आजाद ख्याली दी थी, हमे उस रवायत को जिदा रखना है।

रूही ने उसके सीने पर सिर रख दिया। इखलाक चुप हो गया। दोनो चुप थे, फिजा के विस्तार मे झाक रहे थे। गुलाब के पौधो पर फूल खिले हुए थे, पक्षी चहचहा रहे थे और आकाश स्वच्छ और नीला था।

: 19 :

दवन्नी

दो दिन से तांगे वालों की हड़ताल थी। शहर का कारोबार, आमद-रफत और चहल-पहल मध्यम पड़ गई थी। जिन सड़कों और बाजारों में "बची माई" और "देखी ज्यून जोगिया" का शोर रहता था सूने-सूने पड़े थे। बहुत दिनों से मवाद पक रहा था, क्षोभ भीतर ही भीतर बढ़ रहा था और अन्त में उसने हड़ताल का रूप धारण कर लिया।

म्यूनिसिपल कमेटी का अफसर तांगा पास करते समय हजार हुज्जतें करता, सौ नुकस निकालता; जब तक जेब गर्म न हो जाती, तांगा पास न होता। और कोचवान को जो वर्दी पहननी पड़ती थी, उसे पहनकर अच्छा-भला मनुष्य बंदर दिखाई देता था, उसका अब तक का ऐतिहासिक विकास इन तानाशाही कानून से एकदम रद्द हो जाता था। फिर पीतल का पास पगड़ी में लगा लेने से तो शक्ल और भी बिगड़ जाती थी। म्यूनिसिपैल्टी ने किराये के जो दर नियत किये थे, वे भी थोड़े थे और उसमें से भी ट्रैफिक के सिपाहियों को हिस्सा देना पड़ता था, वरना तांगा चलाना असम्भव था। चौक में देर तक रुके रहना पड़ता; स्टेशन पर नम्बर न आता; कोड़े की जरबें अकारण ही शरीर पर उभर आती और फिर चालान होने से जो आर्थिक चोट पड़ती, वह कोडे की जरबों से कहीं अधिक कठोर और असह्य थी। कोचवानों की हालत खराब थी, वे किराया तनिक अधिक वसूल करने के लिए मुसाफिरों के आगे गिड़गिड़ाते, सिपाही की खुशामद करते, उसकी अनुचित गाली-गलौच और डांट-डपट सहते थे। उनके मन में

कटुता भर रही थी और घाव बढ रहे थे ।

इन घावो पर नमक छिडकने के लिए म्यूनिसिपल कमेटी ने नया कानून पास किया कि पहली अप्रैल से तागे वाले चार के बजाय सिर्फ तीन सवारिया बिठा सकेंगे क्योकि चार सवारिया बिठाने से कोचवान के लिए जगह नही रहती, बैठने वालो को कष्ट होता है और प्राय घटनायें भी इसी कारण होती हैं ।

तागे वाले भडक उठे । सवारिया कम होने से उनकी आमदनी भी कम हो गई थी । उन्हें यह छूट दी गई थी कि वे चार सवारियो का किराया तीन से वसूल कर सकते थे । लेकिन लोगो के पास पैसा कहा था ? बेकारी और बेरोजगारी का युग था । देश आर्थिक सकट मे से गुजर रहा था । अक्सर निचले और मध्यवर्ग के लोग ही तागो पर चढते थे, वे अधिक किराया दे नही सकते थे । इसलिए वे तीन सवारियो का कानून मनसूख करवाने पर तुले हुए थे । इसके साथ ही उन्होने वर्दी और अफसरो तथा पुलिस के रवैया के बारे मे भी अपनी शिकायतें कमेटी और सरकार के सम्मुख रख दी थी ।

हडताल मुकम्मिल थी । कही एक तागा भी चलता नजर न आता था । अपनी इस एकता पर तागे वालो को प्रसन्नता से कही अधिक आश्चर्य हो रहा था । उन्होने पहली बार हडताल की थी और पहली ही बार अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई थी । दिन मे तीन-तीन, चार-चार बार जलसे होते थे जिनमे रजाक अपने भाषणो मे उन्हें बताया करता था कि हिन्दू, मुसलमान और सिख सब कोचवान एक हैं और उनके हित एक हैं । इसके विपरीत शासकवर्ग और उन्हें लूटने वालो का दूसरा धडा है, उनमे हिन्दू, मुसलमान और सिख का कोई भेद-भाव नही, जैसे खाते समय पाचो अगुलियां एक होती हैं, वे खाने और लूटने मे एक हैं ।

जो ड्राईवर सयाने थे, जिन्हें बोलना आता था वे खुद दिल के फफोले तोडते थे । जब वे अफसरो की ज्यादतियो और पुलिस के जुल्मो का जिक्र करते, तो उनके शब्दो मे घावो की टीस ध्वनित हो उठती । कोचवान जब यह भाषण सुनते अपनी शक्ति और सगठन देखते, तो उन्हें जमाना

बदलता हुआ जान पड़ता और वे महसूस करते कि दुःखों के अन्त होने का समय आ गया है, अब हम जुल्म और दमन से नहीं झुकेंगे। जब खून-पसीना एक करके रोजी कमाते हैं, तो किसी के दबाव में रहने का क्या मतलब ? हमे भी शान से रहना आता है और रहना हमारा अधिकार है।

जब से हड़ताल शुरू हुई थी, गनी का काम बहुत बढ़ गया था। उसे एक क्षण भी फुर्सत नहीं मिलती थी। वह नियत समय से पहले जलसे के स्थान पर पहुंच जाता, दरियां बिछवाता, स्टेज बनवाता और फिर उस पर खड़े होकर बिगुल बजा-बजाकर लोगों को जमा करता। भाषण शुरू होने से पहले वह अपने गीत सुनाता और लोग उसकी प्रसिद्ध कविता "एन्हा टोडियां ने केहड़े पत्तन, मल्ले" सुन-सुनकर लोट-पोट हो जाते।

जब जुलूस निकलता, गनी जन सैनिक की वर्दी पहने, बिगुल बजाता हुआ उसके आगे-आगे चलता। उसकी छाती तन जाती और बिगुल के स्वर को ऊंचा उठाने के लिए वह फेफड़ों की समस्त शक्ति खर्च कर देता, लाल झंडे को हवा में लहराते देख खुश होता, उसका कदम फौजी ढंग से उठता और बहुत से लोगों को अपने पीछे कदम उठाते देखकर गर्व से फूल जाता, जैसे कोई अजित सेना किसी बड़ी मुहिम को सर करने बढ़ी चली जा रही हो। जुलूस नारे लगाता—"तांगा यूनियन जिंदाबाद !" "हड़ताली कोचवान जिंदाबाद !" वातावरण मुखरित हो उठता, जीवन की चंचल और विद्रोही तरंगें इधर-उधर फैल जाती।

जुलूस के लीडर भी जुलूस के साथ-साथ चलते। मदन आगे-पीछे दौड़ता-फिरता; कोचवानों को एक-दूसरे के पीछे पंक्तियों में चलने की सीख देता और नारे लगाने के लिए जोश बढ़ाता। एक नारा उसने खुद बनाया था—"म्यूनिसिपैलटी गर न झुकेगी, हड़ताल हमारी नहीं खुलेगी।" वह यह नारा बार-बार लगवाता और जब लोग इसे दोहराते तो उसका मन गर्व से भर जाता, अपनी इस उपज पर वह फूला न समाता और बड़ी शान से कहता—

"रज्जाक ! हमारी तनज़ीम बहुत अच्छी है। आदमी को काम करने

का आता हो तो कोई भी हड़ताल नाकामयाब नही हो सकती। मैं शर्त बदता हू कि हमारी यह हड़ताल कामयाब होगी और मैं इसे कामयाब बनाने के लिए अपनी जान तक लड़ा दूगा।"

लेकिन मदन को जान लडाने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। तीसरे दिन दोपहर के बाद हड़ताल यकायक खुल गई। हड़तालियो का सगठन अचानक टूट गया। वे चकित रह गये, जब उन्हे कुछ तागे सडको पर चलते दिखाई दिये। जब सेना की पक्तियो मे दरार पड जाती है तो शत्रु का साहस बढ जाता है, साहसी सैनिक भी निराश होकर मोर्चा छोडने लगते है। अब भी ऐसा ही हुआ। किसी के करते कुछ न बन पड़ा। न तीन सवारियो का कानून रद्द हुआ। और न कोई माग पूरी हुई। हड़ताल अपने आप टूट गई। जो लोग कल तक अपने सगठन और शक्ति पर फूले नही समाते थे, सहसा झुक गए। शोषको की जीत हुई और शोषित हार गये।

नारायण दफ्तर में बैठा खबरें लिख रहा था कि प्रेस को भेज दी जायें, इतने मे गनी वहा आ गया।

"क्यो गनी! कोई खास बात तो नही हुई?" नारायण ने पूछा।

"हड़ताल टूट गई।" गनी ने उत्तर दिया।

"टूट गई!" नारायण चौंका, "वह कैसे?"

"बस टूट गई।" कहकर गनी मुस्कराया जिसका अर्थ था कि इससे अधिक वह कुछ नही जानता। उसने अलमारी खोलकर बिगुल ऊपर के खाने मे रख दिया और वर्दी उतार सादे कपडे पहन लिए। उसके होठ मौन थे और मुखमुद्रा शात। सिपाही रणक्षेत्र से लौटा था। वह साहस से लडता रहा था, मुहिम को सफल बनाने के लिए उसने कोई कसर उठा नही रखी थी। मगर वह सफल न हो सकी, इसमे सिपाही का कोई दोष नहीं था। गनी बीसियो बार ऐसी मुहिमों पर जा चुका था, कई बार हार-जीत के खेल देख चुका था। एक ही मुहिम पर तो सफलता-असफलता निर्भर नही होती। उस मजिल पर पहुचने के लिए ऐसी कितनी ही मुहिमो का सामना करना पडेगा, कही हारेगा और कही जीतेगा। इसलिए वह

हताश और निराश नहीं था।

"नमस्ते।"

"नमस्ते।"

"ओहो महेंदी ! सुनाओ छोटे जर्नेल खुश तो हो।"

गनी कपड़े बदलते-बदलते चौंक उठा और नीचे झांककर खुशी से चिल्लाया – "अशोक भैया !"

अशोक देहात से लौट कर आया था और महेंदी को गोद मे लिए पार्वती से बातें कर रहा था। गनी और नारायण झट नीचे आये और अशोक से देहात की और किसान सभा की बातें सुनते दिन बीत गया।

दूसरे दिन पराशर को जब अशोक के लौटने की सूचना मिली तो वह उससे मिलने दफ्तर में आया; लेकिन अशोक वहां मौजूद नहीं था। उसने नारायण से बातें शुरू की।

"सुना है, अब सोशलिज्म की मु···मुख्तलिफ शाखें निकल रही हैं—ब्राह्मण-सोशलिज्म, खत्री-सोशलिज्म, मु···मुसलिम-सोशलिज्म, शीया-सोशलिज्म, और सुन्नी-सोशलिज्म—हर एक बुद्धूमल बघाऊमल अपना-अपना सोशलिज्म अलग बनायेगा।"

"पराशरजी ! यह तीरअन्दाजी कहां हो रही है ?" नारायण ने मुस्करा कर दरियाफ्त किया।

"कामरेड न···नारायण यह तीरअन्दाजी नहीं हकीकत है। जब हमने फैसला कर लिया है कि बुद्धूमल बघाऊमल बने रहना है, दु······दु······दुनिया की कोई ताकत कोई फलसफा हमें नहीं बदल सकता। हमने कसम खाई है कि हर एक चीज को मजहब के कांटे में त···तोलना है। अगर सोशलिज्म को भी इस कांटे में न तो······तोला गया त······तो हिन्दुतान किया हुआ।"

"जहां तक सोशलिज्म को धार्मिक रंग देने की बात है।" नारायण ने गम्भीरता से कहा, "वह हिन्दुस्तान ही में नहीं, दूसरे देशों में भी दिया गया है। जिस तरह यहां वेदों और शास्त्रों में वैदिक सोशलिज्म की खोज हो रही है और इसलामी किताबों के हवाले से इसलामी सोशलिज्म के चर्चे

हो रहे हैं, उसी तरह योरुप मे ईसाइयो ने ईसाई सोशलिज्म पहले ही से ईजाद कर रखा है। मगर उनका यह सोशलिज्म हवा मे बातें करने के अतिरिक्त और कुछ नही है। वे न वर्ग-सघर्ष को मानते हैं और न यह समझते हैं कि पूजीवाद के उपरात साम्यवादी व्यवस्था अनिवार्य है······"

"मजहबी लोगो की बात छोडिये, वे त   तो अपनी रट लगाते ही रहते हैं।" पराशर ने बीच ही मे टोका, "अब हमारे अपने अन्दर न ·· ··नये सोशलिस्ट पैदा हुए हैं।"

"वे कौन से सोशलिस्ट हैं ? यही मैं सुनना चाहता हू।" नारायण बोला, "मैंने तो पहले ही कह दिया था कि हजरत यह तीरअन्दाजी कहा हो रही है ?

"कामरेड ! मजाक की बात नही। मैं आपको सजीदगी से बताना चाहता हू कि तागेवालो की हडताल को असफल बनाने मे रजाक का हाथ है।"

"वह कैसे ?"

"म्यूनिसिपैलटी के मुसलमान एग्ज़ीक्यूटिव आफीसर ने रजाक को बुलाकर कहा कि तुम मुसलमान होकर भी यह ध्यान न · ·नही रखते कि एक मुसलमान भाई से ट   टक्कर ले रहे हो। फिर मेरी ही बात नहीं, तागो के ड्राईवर और मालिक अक्सर मुसलमान हैं, तुम उन्हें नु··· नुकसान पहुचा रहे हो। तागे बन्द होने से जहा मुसलमानो का रोजगार बन्द हुआ है वहा बसो के मालिक हिन्दू सरमायेदारो को फ·· ·· फायदा पहुच रहा है। इसलिए हडताल जल्दी ख·· · खत्म करो—जल्दी।"

और पराशर जल्दी-जल्दी बीडी के कश लगाने लगा।

'माफ कीजिएगा। अगर आप इस बात को सच मानते है, तो आप यकीनन इस मामले मे बुद्धूमल बघाऊमल बने हैं" नारायण मुस्कराया और फिर गम्भीर होकर बोला, "रजाक एग्ज़ीक्यूटिव आफीसर से मिला तक नही। हडताल असफल रही तो इसके दूसरे कारण हैं। तागेवालो को

बाल-बच्चों का पेट पालना होता है, वे ज्यादा दिन बेकार नहीं रह सकते। उन्हें सहारा देने के लिए यूनियन के पास काफी पैसा नहीं था और न इस बारे में हम लोग उनको कुछ सहायता कर सके। दूसरे हड़ताली कमेटी में ड्राईवरों के अलावा तांगों के मालिक भी शामिल थे। एक मालिक के पास पंद्रह-पन्द्रह, बीस-बीस तांगे हैं। वे घोड़ों और कोचवानों का खर्च बरदाश्त करने को तैयार नहीं थे। तीन सवारियां होंगी तो नफा पांच की जगह चार हो जाएगा। अब रकम जेब से जाती है। रजाक नहीं चाहता था कि हड़ताली कमेटी में मालिकों को भी लिया जाये, लेकिन मदन ने आग्रह किया।"

"और म···मदन ही ने मुझे यह बात बताई है कि ह···हड़ताल की असफलता में रजाक का हाथ है।"

"और आपने विश्वास कर लिया जिसका मतलब है कि आप बुद्धूमल बधाऊमल बने। ··· "

"यह त···तो वाकई गलती हुई।" पराशर ने मुस्कराते हुए स्वीकार किया। "इसका म···मतलब है कि मदन···"

उसकी बात अधूरी रह गई। ऊषा ने कमरे में प्रवेश किया और आते ही बोली—"देखो, बीबीजी मेरे लिए गुड़िया लाई हैं" और वह उचककर नारायण की गोद में जा बैठी।

"अच्छा, मुझे नहीं दि···दिखाओगी गुड़िया" पराशर ने कहा और ऊषा को पकड़कर अपनी गोद में बिठा लिया। वह पराशर को जानती तो थी; लेकिन नारायण की तरह उससे खुली नहीं थी। वह लजाती हुई उसकी गोद में चुप बैठी रही। पराशर बच्चों से प्यार करता था। उसने झिझक दूर करने के लिए एक दुवन्नी जेब से निकाली और ऊषा को देते हुए कहा—"लो, एक गुड़िया और मंगवा लेना। इस बेचारी का अकेले जी नहीं लगेगा। दोनों सखियां मिलकर खेला करेंगी।"

ऊषा उल्लास में भरकर नीचे दौड़ गई। लेकिन दूसरे ही क्षण लौट आई बिना कुछ कहे दुवन्नी पराशर को लौटाने लगी।

"क्यों ऊषा, क्या बात है?" नारायण बोला।

'बीबीजी मना करती हैं।"

पराशर ने दुवन्नी नहो ली, वह नारायण का मुह देखने लगा।

'चलो मैं कहता हू बीबोजी से। नारायण ऊषा को लेकर नीचे आया पार्वती से कहा—"भाभी, तुमने मना क्या कर दिया ? पराशर ने प्यार से दी है।"

'उनके प्यार का अपमान मैं नही करती।' पावती वोली, पर इस तरह बच्चो की आदतें बिगड जाती हैं। यहा बीसियो आदमी आते है हर एक से भिखारियो की तरह मागते फिरेंगे ? '

नारायण ने पार्वती को ओर खा। एक मिनट मौन रहा और फिर धीरे से बोला—

'अच्छा, अब रहने दो। आगे को हम ध्यान रखेंगे।

: 20 :

कुम्हार का गधा

सर्दी का यौवन ढल चुका था। खट्टों और शहतूतों पर नई-नई कोम्पलें फूट रही थी और बसन्त के आगमन की सूचना दे रही थी, इतवार का दिन और मार्च का महीना था। पार्टी की जनरल बॉडी की मीटिंग बुलाई गई थी, जिसमें लगभग सभी मेम्बर सम्मिलित हुए थे। खैरातीराम को भी दफ्तर से छुट्टी थी और वह चाहता था कि उसे मीटिंग में बैठने की आज्ञा दी जाये। मगर उसे अभी तक मेम्बर नहीं बनाया गया था, इसलिए आज्ञा न मिल सकी। वैसे उसके मन में आजादी की अभिलाषा और समाजवाद के उच्च आदर्शों के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया था। वह पार्टी के कामों में दिलचस्पी लेने लगा था और कुछ लोगों से निजी सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया था। वह उनके साथ मिलता-जुलता था, उनके राजनीतिक विचार सुनकर मुग्ध हो उठता था और आजादी के नाम पर उल्लास और गर्व से कहता था—

"मुझे तो अब मालूम हुआ कि मैं अंधेरे में भटक रहा था; क्लर्की करके, कीड़े-मकोड़ों की तरह रेंग-रेंगकर उम्र बरबाद कर रहा था। जीना तो आजादी के लिए संघर्ष करना और मृत्यु से आंखें लड़ाना है।"

हीरे में आभा न हो तो वह चमकता हुआ पत्थर है। नारायण ने खैरातीराम के मुंह से यह शब्द सुने, तो झट उसकी वह आकृति मस्तिष्क में उभर आई, जब उसने पुलिस के सिपाही को मुंह बनाकर उत्तर दिया था; शायद उसने मृत्यु को आंखें दिखाई थीं। यह शब्द सुनकर नारायण

का सदेह और भी दृढ हो गया। वह जानता था कि खैरातीराम म मृत्यु को आखें दिखाने का जीवट नही है। अगर शब्दो के पीछे सत्य न हो, चरित्र की पुष्टि न हो, तो वे व्यर्थ हैं, महज बकवाद हैं। शब्द मनुष्य को महान् नही बनाते मनुष्य शब्दो को महान् बनाता है।

खैरातीराम को जब मीटिंग मे जाने की आज्ञा न मिली तो वह बड के नीचे बेंच पर बैठ गया और नर्म-नर्म कोम्पलो को—उन कोम्पलो का देखने लगा, जिनकी रगों वसत का सुर्ख खून मचल रहा था—देखने लगा, देखता रहा। उसकी दृष्टि बार-बार पार्टी के दफ्तर की ओर भी उठ जाती थी। बरामदे के आगे साईनबोर्ड लटक रहा था। साईनबोर्ड पर लिखे हुए मोटे-मोटे अक्षर उसने कई बार पढे थे। पढने से प्रयोजन क्या था, यह वह खुद नही समझता था। शायद उसे समय बिताना था, शायद उसे इन अक्षरो से लगाव हो गया था। अचानक एक कोम्पल टूटकर उसकी झोली मे आ गिरी। उसने बोर्ड पढना छोड दिया और कोम्पल को चुटकी मे लेकर मसलने लगा। वह मन म कुछ सोचता और कोम्पल को बिना देखे ही मसलता रहा—इतना मसला कि वह एक बेढब गोली सी बन गई। उसे देख अनुमान लगाना असम्भव था कि एक मिनट पहले वह बे-रग और भद्दी गोली, जिसे खैरातीराम अनमना-सा मसल रहा था, नवजात कोम्पल थी—वसन्त का सुन्दर प्रतीक थी। उसकी अगुलिया तर थी। वे उस रक्त से भीग गई थीं, जो कोम्पल के हृदय से निकला था।

पूर्व से वायु का एक झोका आया, टहनिया हिली और उनसे एक सगीत फूटा। वायु का वेग बढता गया, जुबिश तेज होती गई और सगीत फैलता गया। वातावरण मुखरित हो उठा, जैसे तेज पत्ते और कोम्पलें मिलकर गा रही हों समस्त प्रकृति घोषणा कर रही हो, 'एक कोम्पल के मसल देने से वसन्त का आगमन नही रुक सकता। वसन्त आ रहा है।" झोका गुजर जाने के बाद फिर सब निस्तब्ध हो गया। पत्ते और टहनिया अचल थी वृक्ष शान्त और गम्भीर थे। उन्हें वसन्त के आगमन पर दृढ विश्वास था।

ग्यारह बजे के लगभग मीटिंग खत्म हुई। लोग नीचे उतरे और अपने-

अपने घरों को जाने लगे। खैरातीराम भी उठा और परिचित सदस्यों से बातें करने लगा, काफी दूर तक उनके साथ-साथ गया और जब लौटकर कमरे में आया तो किवाड़ बन्द करके किसी आवश्यक कार्य में व्यस्त हो गया।

एक बजे के करीब वह शाहआलमी दरवाज़े के बाहर एक होटल पर आया। यह एक सस्ता होटल था, जहां वह खाना खाया करता था। आज वह वहां से सीधा घर लौटने के बजाय शहर की ओर चला और दरवाजा पार करके बाजार में चलने लगा। वह बड़े ध्यान से इधर-उधर झांक रहा था और कभी-कभी मुड़कर पीछे भी देख लेता था। थोड़ी दूर चलने के बाद वह एक पंसारी की दूकान पर रुका, दो पैसों की छोटी इलायची खरीदी और मुंह में रखकर बाजार में आगे-पीछे दोनों ओर दूर तक देखा, खूब गहरी नजर डाली और फिर इत्मीनान से चलने लगा।

शहर की विभिन्न गलियों, बाजारों और मुहल्लों को पार करता हुआ वह हीरा मण्डी में से गुजर कर रावी रोड पर पहुंचा। उसने कोई चीज देखी नहीं, कहीं रुका नहीं, इस चिलचिलाती धूप में यों निरुद्देश्य घूमने से प्रयोजन ? अगर कोई परिचित मिल जाता और पूछता कि किधर से आए हो और कहां जा रहे हो ? तो शायद वह कोई उत्तर न दे पाता, आयें-बायें-सायें देखने लगता। वह जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से लौट सकता था, सदा लौटता था और आज भी लौट सकता था। फिर इतना लम्बा चक्कर काटने से मतलब ? अब भी वह सड़क पर चलने के बजाय मुर्दघाट के निकट से मोहनी रोड को जो रास्ता जाता है, उस पर चलने लगा। थोड़ी दूर चलकर फिर एक मोड़ आया, वहां से वह बाईं ओर घूम-कर बस्ती में घुस गया और गलियों में चलने लगा, जैसे कोई सौदाई हो, जैसे घूमना मात्र ही उसका काम हो।

वह सहसा एक गली की नुक्कड़ पर रुक गया। दाईं ओर के ऊंचे-ऊंचे मकानों पर नजर डाली। लाल रंग के एक मकान की ओर उसने खास नजर से देखा। जाने क्या सोचकर उसने अपने सर्द कोट की जेब से एक कागज निकाला, जो लिखा हुआ था; लेकिन लिखते समय शायद कोई

आवश्यक बात छूट गई थी। उसने कागज को दीवार पर टिका कर भूली हुई आवश्यक बात पेंसिल से लिख दी।

लिखने के बाद उसने गर्दन पीछे की ओर घुमाई और कागज को दोबारा जेब मे रखने के लिए तह किया। अचानक उसकी नजर ताया चेतसिंह पर पडी। वह जिस गली से खुद आया था, चेतसिंह उसी की नुक्कड पर खड़ा था। उसने ताया को पहले क्यो नही देखा ? क्या आँखें मीच रखी थी ? लेकिन शायद ताया ने उसे नही देखा क्योकि वह उस कुम्हार से बातें कर रहा था, जो मिट्टी से लदा हुआ गधा लिए इधर आ निकला था। औरतें लीपने-पोतने के लिए मिट्टी गिरवा लेती थी। कुम्हार इसी मतलब के लिए मिट्टी बेचने आया था। अधिक पैसे पा लेने की नियत से गधे पर इतनी मिट्टी लाद रखी थी कि बोझ के मारे उसकी टागें लडखडा रही थी।

"मिया ! गरीब जानवर पर भी कुछ रहम किया करो। इतनी मिट्टी इस पर लाद रखी है कि बेचारे से चला तक नहीं जाता।" चेतसिंह ने कुम्हार से कहा।

"सरदारजी, रहम-वहम सब कहने की बातें हैं। आपने इस पर लादी हुई मिट्टी तो देख ली, लेकिन इसे खाते नही देखा। अगर मैं मिट्टी लादते वक्त यह खयाल रखू कि बेचारा कमजोर है, उठा नही सकेगा, तो खाने के वक्त भी यह खयाल रखना पडेगा कि ज्यादा न दू, बेचारा कमजोर है, कही बदहजमी न हो जाये। मैं जितना पेट भरने को देता हू, उतना काम भी लेता हू।"

कुम्हार मुस्कराया और गधे को हाकता हुआ आगे चल दिया। और ताया निरुत्तर उसकी ओर देखता रह गया।

ताया जब कुम्हार से बातें कर रहा था, खैरातीराम तेज-तेज डग भरता हुआ, गली मे घुस गया। उतावली मे कागज जेब मे रखा तो वह घबराहट के कारण जेब मे न पड़कर कोट और कमीज के दर्मियान बाहर ही रह गया और दो कदम चलने के बाद जमीन पर गिर पड़ा।

खैरातीराम का यह खयाल गलत था कि चेतसिंह ने उसे देखा

वह मीटिंग शुरू होते ही, उसे देखने लगा था और अब तक बराबर देख रहा था। खैरातीराम ने इतना लम्बा चक्कर इसीलिए काटा था कि कोई उसे इधर आते देख न ले, लेकिन ताया परछाई की भांति उसके पीछे लगा रहा और अपने आपको उसकी दृष्टि से छिपाये रखा। यहां उसके सहसा रुक जाने के कारण वह सामने आ पड़ा। इधर-उधर छिपने का कोई स्थान नहीं था, अगर कोशिश करता तो नाहक संदेह होता। ताया वहां खड़ा रहा और कुम्हार से बातें करने लगा। खैरातीराम जब घबराकर गली मे घुसा, उस वक्त भी वह उसे देख रहा था। ताया ने उसे कागज निकालते और उस पर कुछ लिखते भी देखा था और फिर कागज जमीन पर गिरते भी देखा था······

लाल रंग के मकान मे सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर निरंजनदास रहता था खैरातीराम उसे मीटिंग की रिपोर्ट देने आया था। वह घर पर उपस्थित था। उसकी उम्र चालीसेक साल थी, कद पांच फीट पांच इंच था और सिर पर घुटा हुआ साफा बांध रखा था। देखने में सरल, निरीह और शिष्ट जान पड़ता था। खैरातीराम जब कभी सुबह-शाम आया तो उसे पूजा-पाठ में व्यस्त पाया। अब उसने बड़े आदर और सत्कार से खैरातीराम को अपने पास बिठाया और पूछा—

"कहो, क्या हाल है?"

"आज पार्टी की मीटिंग थी। मैं आपको रिपोर्ट देने आया हूं।"

"मीटिंग की इत्तला मुझे मिल गई थी और मैं जानता था कि तुम जरूर आओगे, इसीलिए मैं घर पर मौजूद रहा, दफ्तर नहीं गया।"

इन्स्पेक्टर बड़ा कार्यां था। दिन-रात रिपोर्टरों से काम पड़ता था और वह उनसे काम लेने का ढंग खूब जानता था। इसी कारण उसकी पद-वृद्धि हो रही थी।

खैरातीराम ने जेब मे हाथ डाला तो उसका रंग फक हो गया, जैसे बिच्छू ने डंक मारा हो। इन्स्पेक्टर को रिपोर्ट कहां से दे? कागज तो जेब में मौजूद नही था। गिर पड़ा, यह कहना भी उचित नही था। अतएव उसने बात बनाई।

"लेकिन मैंने रिपोर्ट लिखी नहीं, आपको जबानी सुना देता हूं।"

"जबानी!" इन्स्पेक्टर के स्वर में कटुता और व्यंग का सम्मिश्रण था। उसने खैरातीराम के चेहरे का बदलता हुआ रंग देखकर भांप लिया था कि वह कोई बात छिपा रहा है—"रिपोर्ट जबानी देने का दस्तूर नहीं है और मैंने तुम्हें कह रखा है कि हमेशा लिखकर लाया करो। जो बात जिस समय सुनो, जो घटना जैसी देखो, वैसी लिख डालो, न कुछ मिलाओ, न घटाओ। जो कुछ लिखो, अक्षर-अक्षर ठीक हो। कोई बात गलत सिद्ध हो जाने में हमारे पेशे की बदनामी होती है। हमारे ऊपर यह जिम्मेदारी आती है कि हमारे हाथों किसी निरपराध को तकलीफ न पहुंचे। अगर हम अपने फर्ज को पहचानें तो जो लोग हमारे पेशे को नफरत और हिकारत से देखते हैं, इज्जत करने लगें। इसलिए मैं कहता हूं कि रिपोर्ट लिखकर लाओ और हर एक बात ठीक-ठीक लिखो।"

खैरातीराम चुप और निस्तब्ध निरंजनदास के मुंह की ओर देखने लगा। उसका भोला-भाला चेहरा एकदम भयानक और हिंसक बन गया। वह यह सारी बातें बड़े रौब से कह रहा था। धीरे-धीरे रौब का यह भाव लुप्त हो गया, मुख-मुद्रा फिर निरीह बन गई और आंखों में धार्मिक पवित्रता लौट आई। खैरातीराम ने सुख की सांस ली और भर्राये हुए स्वर में कहा—

"इस बार गलती हुई, आगे को ध्यान रखूंगा।"

"यह रिपोर्ट भी लिखकर देनी होगी।"

"बहुत अच्छा, कल या आज शाम तक दे जाऊंगा।"

"हां, कल तक जरूर दे जाना" इन्स्पेक्टर ने खैरातीराम की ओर देखा और कुर्सी की पुश्त से टेक लगाकर इत्मीनान से कहा, "खैर आये हो तो जरा सुनाओ कि क्या-कुछ हुआ।"

खैरातीराम ने मीटिंग के समय जो कुछ देखा था और बाद में जो सुना था, इन्स्पेक्टर से कह सुनाया। लेकिन सुनाते समय वह दो-तीन बार रुका, कुछ झिझका और अपनी बात ढंग से नहीं कह पाया। इन्स्पेक्टर ने उसके इस दोष की ओर संकेत करते हुए कहा—

"देखा तुमने, सुनाने के बजाये लिखना कितना आसान है। इसलिए हमारे यहां, हर एक बात लिखकर देने का रिवाज है। लिखने में कोताही नही होनी चाहिए।"

"जी हां।"

माया ने अगर यह "जी हां" सुनी होती तो उसे लगता जैसे खैरातीराम पर मनों मिट्टी लाद दी गई है और वह उसका बोझ चुपचाप सहन कर रहा है।

खैरातीराम जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। उसे डर था कि कागज गली में पड़ा रहने से कही गुम न हो जाये, लेकिन इन्स्पेक्टर ने उसे रोककर पूछा—

"तुम मेम्बर तो बन गये होगे?"

खैरातीराम के मन में आई कि कह दे—"जी, हां। बन गया हूं।" मगर झूठ-पर-झूठ बोलने का अभी उसे अभ्यास नही था। अप्रतिभ-सा होकर बोला—

"जी नही, अभी तो नहीं बना। आशा है कि जल्द बन जाऊंगा। मेम्बर बनने के लिए दो आदमियों की सिफारिश जरूरी है। मैं चाहूं तो दस से करवा लूं; लेकिन जल्दी इसलिए नही कर रहा कि कही उन्हें शक न हो जाये।"

"यह ठीक है। शक बिल्कुल न हो। इतना विश्वास पैदा करो कि वह तुम से कोई भी भेद छिपा कर न रखें। इसका सहज ढंग यही है कि अपने अन्दर जोश पैदा करो, सरकार को खूब गालियां दो, आजादी और इनकलाब की बात हर वक्त जबान पर रहे। तुम्हारे आचरण और तुम्हारी बातों से लोग यह समझें कि तुम देश पर मर-मिटने को तैयार हो। समझे?"

"जी हां।"

"अच्छा, अब तुम जा सकते हो। लेकिन एहतियात से जाना। कोई आदमी तुम्हें मेरे मकान से निकलते न देख ले। समझे?"

"जी हां।"

खैरातीराम ने दरवाजे पर खडे होकर इधर उधर देखा। कोई आदमी देख नही रहा था। वह इत्मीनान से बाहर निकला और गली मे अपना खोया हुआ कागज तलाश करने लगा। उसने एक सिरे से दूसरे तक दो-तीन चक्कर काटे, पर कागज न मिला। तीसरे चक्कर में वह इतना व्यग्र था कि उसे अपने आपकी और वातावरण की तनिक सुध न रही। वह बहुत परेशान था और सोच रहा था कि वह बात जो उसने यहा आकर लिखी, अगर पहले ही न भूलता, या दर्ज ही न करता तो यह परेशानी तो न उठानी पडती। इसी दुविधा म वह किसी व्यक्ति से टकराकर चौका और क्षमा-याचना करते हुए बोला—

"माफ करना, मेरा ध्यान दूसरी ओर था।"

"मालूम होता है, कोई चीज खो गई है ?"

'जी हा, एक कागज।"

'कागज या नोट ?"

'नोट नही, कागज ही था।'

'और नोट भी तो कागज ही से बनते हैं।'

वह मनचला रगीन व्यक्ति था, पान की पीक थूककर आगे बढ गया।

लकिन उसके यह शब्द 'नोट भी तो कागज ही से बनते हैं। वातावरण मे ध्वनित प्रतिध्वनित होते रहे। खैरातीराम चकित और अवाक् सुनता रहा—सोचता रहा।

: 21 :

फूट

शाम का वक्त था। राजेन्द्र और इखलाक बस्ती की ओर जा रहे थे। उन्होंने रेलवे लाईन पार ही की थी किसी ने पुकारा—

"ओ बाबू के बच्चे ! मुंह उठाये किधर को जा रहे हो ?"

वे रुक गये। मुगली उनकी ओर बढ़ा आ रहा था। उसने शराब पी रखी थी, आंखें लाल थी और हाथ में लाठी थी, जिसके एक सिरे पर लोहा मढ़ा हुआ था।

"क्या बात है ?" इखलाक ने पूछा।

"क्या मतलब है तुम्हारा यों घूमने से ?" वह छाती फुलाकर और ऐंठकर बोला।

"देखो भाई, यों अकड़ा नही करते। तुम्हें जो कहना हो, शांति से कहो।" राजेन्द्र ने उसे समझाया।

"मैं अकड़ता हूं। हां, मैं अकड़ता हूं। क्यों न अकड़ूं ? मेरी लाठी खून की प्यासी है।"

उसने लाठी के लोहेवाले सिरे को जमीन पर मारा।

"मेरी लाठी आज खून पियेगी तुम्हें दूसरो की बहू-बेटियो को ताकने का मजा चखायेगी। तुम इधर क्या करने आते हो ?"

"तुम नाने लगते हो पूछने के, हम आते हैं और आयेंगे।" इखलाक तनकर आगे बढ़ गया, "जरा चला लाठी, देखू यह किसका खून पीती है ?"

मुगली घबराया। उसका खयाल था कि मारपीट की नौबत ही नही आयेगी। शहर के छोकरे तनिक धमकाने से भाग जायेंगे। इसीलिए अपने

साथियो से कहा था कि तुम पीछे खड़े तमाशा देखो। लेकिन अब लड़ने के सिवा चारा ही नही था। उसने एक कदम पीछे हटकर लाठी घुमाई। लेकिन इसके पहले कि वह वार करता, इखलाक ने लपककर उसकी कलाई पकड ली। गिरफ्त इतनी सख्त थी कि मुगली के हाथ से लाठी छूट गई और वह बिलबिला उठा। इखलाक ने एक चपत उसके गाल पर रसीद किया और कहा, "देख अभी निकालता हू तेरी सारी जाबरी और यह शराब, जो तू हराम के पैसे से पीता है।

मुगली को पिटते देखकर उसके साथी बदमाश सहायता के लिए आगे बढे। इखलाक ने मुगली को तो धक्का देकर परे फेंक दिया और खुद उसकी लाठी उठाकर मुकाबले मे डट गया। वह विरोधी का वार रोककर ऐसा भरपूर हाथ चलाता कि बदमाश सिट्टी-पिट्टी भूल जाता। वे पाच थे। लेकिन शराब पिये हुए थे और पहले ही लडखडा रहे थे। दो भाग गये, तीन वही गिर पडे।

शोर सुनकर बस्ती के मजदूर घरो से निकल आये। रामदास, करमा और वसी क्रोध से उबल रहे थे और मुगली और उसके साथियो का खून पी जाना चाहते थे। लेकिन सदीक ने उन्हे शात किया और गम्भीर स्वर मे कहा—"मैं जानता हू यह किसकी शरारत है। हम उसे भी समझ लेंगे।"

मनचन्दा को इस घटना का पता चला तो वह बहुत सटपटाया। और यह जानकर उसे बडा दुख हुआ कि सदीक इस हमले का सम्बन्ध उसके साथ जोड रहा है। वह अहिंसावादी निष्पक्ष व्यक्ति है, किसी से भी झगडा मोल लेना नही चाहता। सदीक और बदरी चाहे उसे विरोधी धडे मे समझते है, लेकिन वह उनका शुभचिंतक है। वह न सिर्फ सदीक के पास गया और अपनी ओर से सफाई दी, बल्कि राजेन्द्र और इखलाक से भी मिला और इस घटना की निंदा करते हुए कहा—"अत्यन्त दुख की बात है कि आप जिन लोगो के लिए घरबार छोडकर मारे-मारे फिरते हैं, वही आप पर हमला करते है। इससे बडी नीचता और क्या होगी ? जब तक यह हालत दूर न होगी, देश का कुछ नही बनेगा। यह मुगली बडा निकम्मा

आदमी है। मैंने उसे बहुत समझाया कि शराब-वराब न पिया करो, भले आदमियों की तरह जिंदगी बिताओ। उस पर कुछ असर नहीं होता। मार-पीट से घृणा बढ़ती है। आपको चाहिये कि थाने में रपट कर दें।"

"जनाब! थाना हमारे लिए नहीं, आप लोगों के लिए है। फिर हमें थाने जाने की जरूरत ही क्या है? एक मुगली क्या दस मुगली हों तो हम उन्हें सीधा करने की हिम्मत रखते हैं?" इखलाक ने उत्तर दिया।

"ठीक है। और आपको थाने जाना भी नहीं चाहिये। मैं समझता हूं कि हमला आप पर नहीं, मुझ पर हुआ है। ऐसे लोगों को मिल में रखना ही नहीं चाहिए, हमारी बदनामी होती है। अच्छा, मैं मैनेजर साहब से बात करूंगा।"

इखलाक बोला नहीं, मनचन्दा की ओर देखकर सिर्फ मुस्करा दिया।

"आप शायद मुझे अपने से अलग समझते हैं। लेकिन मैं भी आप ही की तरह समाजवादी व्यवस्था चाहता हूं। मजदूरों का भला हम सब का भला है। मैं खुद मजदूर हूं, और उन्हीं की तरह काम करता हूं। अपनी आंखों यह भी देखता हूं कि सरमायेदार खुद ऐश करते हैं और हमें पेट भर खाने को भी नहीं मिलता। हमें सिर्फ अंग्रेज ही को नहीं, सरमायेदारों की गुलामी को भी खत्म करना है। आपको शायद मालूम न हो, मैं कांग्रेस में जेल जा चुका हूं।" मनचन्दा मुस्कराया और फिर बोला—"कहने का मतलब यह है कि अब मैं देश की आजादी के लिए जेल जाता हूं, आजादी मिल जायेगी तो सोशलिज्म लाने के लिए आपका साथ दूंगा। लेकिन मैं समझता हूं कि पहले अंग्रेज को देश से निकालकर आजादी हासिल करना जरूरी है।"

"आप ठीक कहते है। पहले हमें आजादी हासिल करनी है।" राजेन्द्र बोला—"लेकिन वह आजादी सिर्फ आपकी और हमारी क्यों हो, मजदूरों और किसानों की क्यों न हो? फिर आजादी हमें लड़कर लेनी होगी। उसके लिए मजदूरों का संगठित होना आवश्यक है।"

"ठीक है, इन्हें संगठित किया जाये। मैं खुद उन्हें इस काम के लिए तैयार कर रहा था और उनकी सभा बना देना चाहता था। लेकिन आप

लोग आ गये, इसलिए मैंने अपना इरादा मुल्तवी कर दिया। अगर मैं मजदूर सभा बनाता तो आप समझते कि आपके काम मे रुकावट डाली जा रही है। मुझे आपके काम से हमदर्दी है। मैं चाहता हू कि मजदूरो का सगठन हो। आपने यूनियन बनाई, उसमे थोडे से मजदूर शामिल हुए। लेकिन मैं जो मजदूर सभा बनाना चाहता हू, उसमे छोटे-बडे सब मजदूर शामिल होगे।

"लेकिन यह बताइये कि वह सभा मजदूरो की होगी या सरमायेदारो की ?" इखलाक ने पूछा।

"मजदूरो की होगी।' मनचन्दा ने उत्तर दिया - "मैं आपसे एक बात अर्ज कर दू। मैं खुद मजदूर हू और मजदूरो का भला चाहता हू, लेकिन मुझे सरमयेदारो से खाहमखाह की चिढ नही है। मैंने भी मार्क्सवाद पढा है और मैं मार्क्स की तारीफ करता हू। लेकिन यह फलसफा अब सौ साल पुराना हो गया है। गाधीजी ने हमे नया फलसफा दिया है। मैं गाधीजी का भक्त हू। मार्क्सवाद सिर्फ मजदूरो का भला चाहता है, लेकिन गाधीवाद मे मजदूरो और सरमायेदार दोनो का भला है "

"इसका मतलब हुआ कि मजदूर, मजदूर बने रहें और सरमायेदार, सरमायदार ?"

"अगर सरमायेदार अपना मुनाफा कम करके मजदूरी बढा दें, मजदूरो के हित को अपना हित समझें, अपने बच्चो और परिवार के सदस्यो की तरह उनका ध्यान रखें तो झगडा खत्म है। साप भी मर गया और लाठी भी न टूटी।"

मनचन्दा ने बडे गर्व से कहा और 'लाठी भी न टूटी' की लोकोक्ति प्रयोग करते हुए उसके होठो पर सानन्द मुस्कराहट दौड गई, जो गाधीवादी दर्शन के सौहार्द और मानवता-प्रेम की सूचक थी। वह अभी और बहुत कुछ कहना चाहता था, लेकिन रामदास ने कुछ नौजवानों के साथ कमरे मे प्रवेश किया। उनके स्टडी-सर्कल का समय हो गया था।

"क्या कह रहा था ?" रामदास ने पूछा।

"यूनियन के मुकाबले मे मजदूर सभा बनाना चाहता है।"

"बनाने दो। मैं इसे खूब जानता हूं, रंगा सयार है।"

मनचन्दा को रास्ते में मुगली मिल गया। वह उसे अपने साथ कमरे में ले गया। उसने टोपी उतारकर अलग रख दी, सिर पर हाथ फेरा और फिर बांहें पीछे की ओर फैलाकर तख्त पर बैठते हुए कहा—

"मुगली भगत ! यह क्या शरारत कर दी तुमने ?"

"शरारत कुछ नहीं। हम नशा पीकर आ रहे थे। उनसे इतना कहा था कि तुम यहां क्या करने आते हो ? वह छोकरा इतना तेज निकला कि झट गले पड़ गया। हमें नशे में अपना ही होश नहीं था, फिर लड़ना कैसा ? और वह अपने-आपको तीसमारखां समझ बैठा।"

"बना बनाया कुछ नहीं। तुम्हारे साथ मुफ्त में बदनाम हम भी हुए। तुम्हें लाख समझाया कि शरारत न किया करो।"

"शरारत अभी तक तो की नहीं, अब करेंगे।"

"देखो मुगली भगत, बड़ों का कहना है कि कुछ काम ताकत से निकलते हैं और कुछ अक्ल से। जो गुड़ देने से मर जाय, उसे जहर देने की जरूरत नहीं। हमें एक बात सूझी है।"

"हम कुछ नहीं जानते। हमारा अपमान हुआ है, हम उसका बदला लेंगे।"

"बदला भी मिल जायेगा, तुम मेरी बात सुनो। पहले इस यूनियन-यूनियन को खत्म करने की जरूरत है वरना यह तुम्हारे और हमारे लिए मुसीबत बन जायेगी। इसे खत्म करने का सीधा तरीका यह है कि तुम इसके मुकाबले में मजदूर सभा बनाओ और हमारे असर में जितने आदमी हैं, उसमें भर्ती कर लो।"

"बात तो ठीक है।" मुगली ने मनचन्दा का रुख पहचान कर कहा।

"बस फिर जाओ। कभी समझ से काम लिया करो।"

राजेन्द्र और इखलाक से बात करते समय मजदूर सभा बनाने का विचार मनचन्दा के मस्तिष्क में अनायास आ गया था और अब वह झटपट इसे कार्यान्वित करना चाहता था। इसके बाद उसने रहमा और नन्दू को बुलाया, उन्हें भी यह सुझाव पसन्द आया। फिर मनचन्दा मैनेजर के पास

गया और सभा बनाने की विस्तृत योजना उसके सम्मुख रखी। दोनों ने इस योजना के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया और दो-ढाई घंटे बातचीत होती रही। अन्त में जब सब तय हो गया तो मैनेजर बोला—

"मेरा ख़याल है कि आप ख़ुद शुरू करने के बजाय सभा बनाने का सारा काम ख़ुद मजदूरों को सौंपें। इस तरह सभा उनकी अपनी होगी और वे उसमें अधिक दिलचस्पी लेंगे। यह दूसरी बात है कि वे करता-धरता चाहे आप ही को बना लें।"

"यह सब बातें मैंने पहले ही से सोच ली हैं, आप इत्मीनान रखें।"

तीन दिन बाद इतवार आया। मजदूर एक खुले मैदान में जमा हो रहे थे। उनकी सभा हो रही थी और सभा का प्रबन्ध धूम-धाम से किया गया था। तख़्त बिछाकर स्टेज बनाई गई थी, स्टेज पर शानदार मेज और कुर्सी रखी हुई थी और तिरंगा झंडा फहरा रहा था। इस जलसे में सिर्फ़ नन्दू और रहमा के साथी ही नहीं रामदास और करमा आदि नौजवान भी आये। उनके अतिरिक्त जाबर और बाबू लोग भी भारी संख्या में विराजमान थे।

जब सब लोग इकट्ठे हो गये तो मुरारीलाल मनचन्दा भी आया। उसने हमेशा की तरह खद्दर का कुर्ता, धोती और चप्पल पहन रखी थी। नई बात यह थी कि आज कंधों पर एक बढ़िया चादर और हाथ में छड़ी थी। नन्दू और चार-पांच दूसरे मजदूरों ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया और सादर स्टेज पर ला बिठाया। फिर आपस में कानाफूसी होने लगी। आख़िर एक बाबू ने खड़े होकर कहा कि मनचन्दा साहब सदा हम लोगों की भलाई का काम करते आये हैं। यह जलसा भी हम लोगों की भलाई के लिए बुलाया गया है। वे पढ़े-लिखे अनुभवी व्यक्ति हैं और हमेशा हमारे हित की बात सोचते हैं। वे इस जलसे के प्रधान होंगे और अपने विचार हमारे सम्मुख रखेंगे।

किसी के समर्थन करते ही मनचन्दा उठा और तालियों के दर्मियान मुस्कराते हुए कुर्सी संभाली। उसने गांधी टोपी उतारी, सिर पर हाथ फेरा, टोपी दोबारा सिर पर रखी और फिर मजदूरों की ओर देखते हुए कहा—

"पहले मैं आप लोगों को धन्यवाद देना जरूरी समझता हूं क्योंकि आप लोगों ने श्रद्धा और विश्वास के साथ मुझे सभा का अध्यक्ष बनाया है। भगवान से प्रार्थना है कि मैं हमेशा आप लोगों के विश्वास का पात्र बना रहूं। जो फर्ज आप लोगों ने मेरे कमजोर कंधों पर डाला है, उसे ईमानदारी और जिम्मेदारी से निभाऊंगा।" वह एक मिनट के लिए रुका, इधर-उधर देखा और फिर कहना शुरू किया,

"भाई रहमा, नन्दू और कुछ दूसरे मजदूर साथी मेरे पास आये और कहा कि हम मजदूर सभा बनाना चाहते हैं। मुझे इस बात से बहुत खुशी हुई। जबसे मैं यहां आया हूं मजदूरों में यही विचार भरता रहा हूं कि यह लोकराज का युग है, हर एक आदमी को अपनी राय रखने और सभा बनाने का अधिकार है। महात्मा गांधी हमारे युग के सबसे बड़े आदमी हैं। उन्होंने हमारे अन्दर आजादी की भावना भरी है। उन्होंने हमें सचाई के लिए लड़ना सिखाया है। वे क्या अमीर और क्या गरीब सबका भला चाहते हैं। गीता में लिखा है कि जब-जब धर्म पर संकट आता है, धर्म को बचाने के लिए भगवान का जन्म होता है। भारत में यह संकट का—गुलामी का युग था; हमारे धर्म का नाश हो रहा था। हमें इस संकट से उबारने के लिए गांधीजी का जन्म हुआ। वे महापुरुष हैं; गरीबों की सेवा करते हैं। उन्हीं को अपना नेता मानते हुए हम यह सभा कायम कर रहे हैं और सत्य और अहिंसा के आदर्श पर इसे चलायेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमें इस शुभ कार्य में सफलता प्राप्त होगी।"

मनचन्दा कुर्सी पर बैठ गया। रहमा, नन्दू और उसके साथियों ने नाम लिखवाने शुरू किये। तीस-चालीस नाम एक साथ लिखे गये। मनचदा लिख रहा था और बार-बार कह रहा था—"हां, बोलते जाओ यह तुम्हारी अपनी सभा है, जो तुम्हारे हितों की रक्षा करेगी।"

जब आगे बढ़-बढ़कर नाम लिखाने वालों का जोश कम हुआ और मनचन्दा ने रामदास और उसके साथियों की ओर देखते हुए अपनी बात दोहराई—"हां, लिखाओ नाम, तुम्हारी अपनी सभा है···" रामदास उठ खड़ा हुआ। चारों ओर सन्नाटा छा गया। लोग चकित होकर देखने लगे,

जैसे कोई अनोखी बात होने जा रही हो। मनचन्दा ने गर्व से इधर-उधर देखा और उसका नाम लिखने के लिए कलम उठाया।

"ठहरिये, मैं एक बात पूछना चाहता हूँ।"

सभा मे हलचल हुई, जैसे घास पौधे हवा के एक झोके से हरकत मे आ जाते हैं।

"हां, पूछियेगा" मनचन्दा ने सजीदगी से कहा।

'क्या सभा यह मान रखेगी कि ईद की छुट्टी सबको हो ?"

इधर-उधर से शोर उठा, जैसे एक साथ बहुत सी जबानें यह सवाल पूछ रही हो।

"अगर यह बात न मानी गई तो क्या सभा उसके लिए लडेगी ?" रामदास बैठ गया और बैठे-बैठे फिर बोला "इस बात का उत्तर दो, फिर हम भर्ती होंगे।"

फिर सन्नाटा छा गया। मनचन्दा उठा। उसने गम्भीर और करुण स्वर मे कहना शुरू किया—"देखिये, मैंने सो बात की एक बात कह दी। मैंने सदा आप लोगो की भलाई के लिए काम शुरू किया है और भगवान की कृपा स आगे भी आप लोगो की भलाई के लिए ही काम करूगा। आप सब लोग समझदार है और हम सब काम समझदारी से करना होगा। जिस बात से आपको कुछ फायदा न हो और मालिक को नुकसान पहुचे, ऐसी बात करना बेकार है। आपका नुकसान मालिक का नुकसान और मालिक का नुकसान आप लोगो का नुकसान है। हम सबको यहां एक परिवार की तरह रहना है। दिलो मे प्रेम और मुहब्बत हो तो सब काम आप ही आप ठीक हो जाता है। प्रेम और मुहब्बत महात्मा गाधी के जीवन का आदर्श है। वे सत्य के अवतार हैं। वे मजदूरो और मालिको को प्रेम के बधन मे बाध देना चाहते है ··"

"इसका मतलब है, सबको छुट्टी नही होगी ?"

"क्यो बोलते हो ?"

'हम बात पूछते हैं।"

बहुत-से लोग एक साथ बोल उठे। "तू, तू", "मैं, मैं" शुरू हो गई।

शोर के मारे कयामत बरपा थी। मनचंदा मेज पर हाथ पटक-पटककर चिल्ला रहा था। लेकिन लोगों को चुप कराना और परिस्थिति पर काबू पाना कठिन था। मुगली और उसके साथी हाथापाई करने पर आमादा हो गये, लेकिन जब देखा कि रामदास और उसके समर्थक उनके अंदाजा से अधिक शक्तिशाली हैं और वे दबने को तैयार नहीं तो वे चुप हो रहे।

"देखिये," मनचंदा बोला, "आप लोग जरा भी समझ से काम नहीं लेते। इस तरह शोर मचाना बिल्कुल उचित नहीं। अगर आप कुछ करना चाहते हैं, तो अनुशासन और शिष्टाचार सीखिये। दूसरे की बात में टोकना और झट लड़ने को तैयार हो जाना हिंसक वृत्ति है। हमें इस हिंसक वृत्ति को छोड़ना है। मैं आप लोगों के बुलाने पर यहां आया हूं, आप लोगों ने खुद मुझे सभापति बनाया है और मैं आप ही के भले की बात कह रहा हूं। यह कहां की सभ्यता है कि आप लोग यों शोर मचाना शुरू कर दें। अगर आपको मेरी बात नहीं सुननी, तो आप खुद संभालिए अपना काम, मैं कुर्सी छोड़कर अलग हो जाता हूं।"

और मनचंदा सचमुच कुर्सी छोड़कर जाने लगा।

"नहीं, नहीं।" लोगों ने उसे रोका।

"अच्छा, मैं एकबार फिर आप लोगों की बात मानता हूं।" मनचंदा ने फिर कुर्सी सम्भाली और आंखों में महानता भरकर और गर्दन ऊपर उठाकर कहना शुरू किया—"कायदा यह होता है कि अध्यक्ष की बात मानी जाये। उसे सब लोग चुनते हैं। उसका कहा सब का कहा होता है।" मनचंदा ने टोपी उतारकर मेज पर रख दी और कंधों पर चादर को दुरुस्त करते हुए कहा—"मैं आपको मोटी बात बताता हूं कि आप लोग मेहनत करके जो रुपया कमाते हैं, वह मिल-मालिक का नहीं, आप लोगों का है। मिल-मालिक उस रुपये का ट्रस्टी है। वह उसे संभालकर रखता है और जरूरत के वक्त आप लोगों पर खर्च करता है। आपका कर्तव्य है कि आप लोग ज्यादा-से-ज्यादा रुपया कमायें। और मालिक का कर्तव्य है कि वह ज्यादा-से-ज्यादा रुपया आप लोगों पर खर्च करे। हमारी सभा इस सिद्धांत को

मानकर चलेगी। सिर्फ मजदूर मजदूर चिल्लाने और मालिक को गालिया देने से कुछ नही बनता। सब जानते हैं कि एक पहिए की गाडी कभी नही चलती। आपकी मेहनत और मालिक की बुद्धि से रुपया पैदा होता है और इससे दोनो का काम चलता है। एक के बिना दूसरे का कुछ नही बनता। यह बात तुम्हें समझ लेनी चाहिए।'

मनचदा रुक गया। उसने दर्शन की गहरी बात कही थी और वह मजदूरो पर उसका असर देखना चाहता था। उन्हें चुप देखकर उसकी आखें प्रसन्नता से चमक उठी।

"जो लोग यह बात समझ गये हैं", वह फिर बोला, वे अपने नाम लिखायें और सभा के सदस्य बनें। कोई मजबूर नही। लेकिन मैं अपनी ओर से एक बात कह देना चाहता हू कि कोई सदस्य बने या न बने सभा सब की भलाई के लिए काम करेगी। हमारा किसी से बैर विरोध नही।'

मनचदा ने कलम सभाला—' चलिए लिखवाइये नाम।'

जावरी और वलकों ने नाम लिखाने शुरू किए। पहले ही तय हो गया था कि अपने आदमी एक साथ नाम न लिखवायें, आधे पहले लिखवायें और आधे बाद मे। इस बार भी तीस पैंतीस आदमियो के नाम लिखे गये।

' मैं खुश हूं कि आप लोगो ने मेरी बात को समझ लिया है। यह सभा आप लोगो की भलाई के लिए बनी है। और यह तिरगा झडा, आपका झडा है। यह झडा मजदूरो के खून से रगा हुआ है ।

' मैं अपनी बाह पर चाकू मारता हू।" करमा बीच मे उठकर बोला। उसने बाया बाजू फैला दिया था और दायें हाथ मे चाकू थाम रखा था, "अगर तीन रग का खून निकला तो तिरगा झडा हमारा झडा है, और अगर लाल खून निकला तो यह लाल झडा मजदूरो का झडा है।"

उसने अपनी छाती पर लगे हुए लाल झडे की ओर सकेत किया और बैठ गया। इस बार किसी प्रकार का शोर नहीं मचा, साधारण खुसरपुसर हुई, क्योंकि मनचदा ने हाथ उठाकर लोगो को शात कर दिया था।

' यह कर्महीन की अपनी बात नही, उसके अन्दर से कोई और बोल

रहा है।" मनचंदा ने गर्दन हिलाते हुए धीरे-धीरे कहा, "ये सब मजदूरों को बहकाने और फूट डाने की बातें हैं। तिरंगा झंडा कांग्रेस का। हमारे अपने देश का झंडा है। यह शहीदों के खून से रंगा हुआ है। इसके नीचे हमने आजादी की जंग लड़ी है, कुर्बानियां दी हैं और यह गरीबों के खून से रंगा हुआ है। लाल झंडा हमारा नहीं, रूस का झंडा है। और हम रूस के एजेंट नहीं हैं।"

"नहीं, यह मजदूरों का झंडा है" बहुत सी आवाजें एक साथ उठीं।"

"यह सब गड़बड़ डालने की बातें हैं। गड़बड़ डालने वाले कहां नहीं होते ? आप लोग अपना काम करते जाइये। मैं अब जलसा बरखास्त करता हूं। जो लोग सभा के सदस्य बने हैं, शाम को उनकी मीटिंग होगी और पदाधिकारी चुने जायेंगे।

जलसा बरखास्त हुआ। मुगली और उसके साथी तिरंगा झंडा उठा-कर एक ओर चल दिये, रामदास और उसके साथी दूसरी ओर।

22

संघर्ष

मजदूर यूनियन और मजदूर सभा मे परस्पर संघर्ष छिड़ा। मनचन्दा का ख्याल था कि रहमा और नद् का सारा ग्रुप इस तरफ आ जायेगा, जाबरो और क्लर्कों को मिलाकर सभा के सदस्यो की सख्या बहुत बढ़ जायेगी। लेकिन जोड-तोड़ और दौड़-धूप के बावजूद उसे पर्याप्त सफलता प्राप्त न हुई। जो नौजवान यूनियन के सदस्य बन चुके थे वे उसे छोड़ने को तैयार न थे। पुरानी धड़े-बंदी की बुनियादें खोखली हो चुकी थी। लालच के भरोसे अदावत की जो दीवार खड़ी की गई थी, वह किंचित धक्का लगते ही ढह गई। अब उसे दोबारा खड़ा करना सम्भव नही था। मजदूर यूनियन की बुनियाद वाकई दृढ़ सिद्ध हुई। मनचंदा अब भी साम, दाम और दंड की नीति से काम निकालना चाहता था। लेकिन राजेन्द्र और इखलाक इन्सान को इन्सान बनाने के लिए मजदूर आंदोलन चला रहे थे और उन्होने यूनियन को उनके जीवन का अंग बना दिया था। मजदूर यूनियन को अपनी यूनियन समझते थे और उससे प्यार करते थे।

किसी भी आंदोलन को सफल बनाने के लिए औरतों का सहयोग आवश्यक है। इस जरूरत को महसूस करते हुए पार्टी ने शीला को ओकाढ़े भेजा ताकि वह मजदूर औरतो को सगठित करे।

बहुत कम औरतो को मिल मे काम मिला हुआ था। वे घर का काम करती थी और बच्चे पालती थी। आस पास खाक उड़ती थी और सफाई नही थी। इसके अतिरिक्त औरतों को बच्चे पालने का ढंग भी नही आता

था, इसलिए वे बचपन ही से बीमारियों के चंगुल में फंस जाते थे। किसी को पेचिस है; किसी की आंखें दुखती हैं और किसी का पेट बढ़ा हुआ है। शीला ने सबसे पहले इन बच्चों की ओर ध्यान दिया। उसने न सिर्फ बच्चों की बीमारियां दूर करने के उपाय बताये बल्कि वह स्वयं इस काम में योग देने लगी। उदाहरणत: जिन बच्चों को कुकडों का रोग था, उनकी आंखें वह सुबह-सुबह ठंडे पानी से धुलवाती, अपने हाथ से दवाई डालती और उनकी माताओं से उन्हें साफ रखने को कहती। शीला ने इन बच्चों की आंखों में झांककर एक बात और देखी कि प्राय: उनकी पुतलियां घूमती थीं। वह इसका कारण जानती थी। सिर्फ यही की बात नहीं यह रोग देश भर में फैला हुआ था। औरतों को बच्चे पालने के अतिरिक्त घर का सब काम करना पड़ता था। फिर मजदूर औरतों को तो मजदूरी भी करनी होती थी। वे बच्चों को अफीम खिलाकर सुला देती थीं। मायें नहीं जानती थीं कि अफीम का विष बच्चों के फेफड़ों, अंतड़ियों और रक्त में घुस जाता है और उन्हें पीला, निर्बल और आलसी बना देता है। शीला सोचती कि मातायें बच्चों को अफीम खिलाकर कब तक सुलाती रहेंगी। अब हिंदुस्तान के लिए सोने का नहीं जागने का समय है। उसने मजदूर औरतों की यह आदत छुड़ाने की मुहिम शुरू की।

ईद निकट आ रही थी। मजदूर यूनियन के जलसे होते थे, जलूस निकलते थे और सब मजदूरों की छुट्टी का नारा बड़े जोर से लगाया जा रहा था। दरअसल यह नारा मजदूर-एकता का नारा था और उन्हें बताया जा रहा था कि अगर सब मजदूरों को हरएक त्यौहार को छुट्टी हो तो वे उसे मिल-जुलकर मनायें ताकि आपस की छुआछूत और साम्प्रदायिकता दूर हो। शीला के आने के बाद जलसे और जलूसों में स्त्रियों की संख्या भी बढ़ने लगी। खूब गहमा-गहमी थी। जड़ता टूटी और लोग हरकत में आये।

इस बीच में एक स्त्री की ओर शीला का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ। उसका व्यवहार बहुत ही विचित्र था। वह हर एक मीटिंग में आती थी; लेकिन दूसरी औरतों से अलग बैठी रहती थी। किसी से बात तक न

करती थी। शायद दूसरी औरतो को उसके साथ मिल-बैठना पसन्द नही था। वह रग रूप की बुरी नही थी। शीला ने उसकी ओर विशेष ध्यान देना शुरू किया, उसने दो-चार मरतबा बात की। उसका स्वर सयत और गभीर था। फिर इस अलगाव का क्या कारण ?

इस स्त्री का नाम दूलन था। उसकी काली स्याह आखो मे एक दुखद कहानी अकित थी। इससे पहले वह एक भिखारिन थी। फजलू ने उसे अपने घर मे डाल लिया था। फजलू का भी अपना कोई नही था। इस भरी दुनिया मे तनहा और अकेला था। उसे अब एक जीवनसगिनी मिल गई थी। फजलू का एकाकीपन दूर हुआ और दूलन की सभ्रात आत्मा को शाति प्राप्त हुई। दोनो का जीवन आनन्द से कट रहा था। बस्ती की औरतो ने दूलन मे कोई दोष नही देखा। लेकिन जिस औरत का आगा-पीछा न हो, जो ठोकरें खाती फिरी हो और जिसने घाट घाट का पानी पिया हो, कोई सतवती और गृहस्थ स्त्री उससे मिलना क्यो पसद करे ? बस्ती की औरतें उसे देखकर नाक सुकेड लेती, जैसे वह बदबूदार छिपकली हो। उसे देखकर आपस मे कानाफूसी करती—'आ गई दूलन ?' सीधे मुह बात करना तो दरकिनार सदा उसके जख्मो को कुरेदती।

शीला समझ गई कि उसे सहानुभूति और स्नेह दरकार है और उसकी आहत आत्मा को सात्वना चाहिए। शीला ने उसकी ओर अतिरिक्त ध्यान दिया। वह उसे बुलाकर मीटिंग मे ले जाती और आदर से अपने पास बिठाती, जलस-जलूसो और मुहल्ले की सफाई मे उससे सहायता लेकर उसमे आत्म विश्वास की भावना को दृढ करती। जब बस्ती की औरतो ने दूलन के प्रति शीला का यह व्यवहार देखा तो उनका अपना रवैया भी बदलना शुरू हुआ। उन्होने अपनी आखो देखा कि शीला पढी-लिखी होकर भी उनमे यो मिल बैठती है, जैसे सदियो से उनके साथ रहती आई हो। वह बच्चो के मुह धोने और गदी नाक साफ करने मे भी सकोच नही करती। अगर एक बाहर से आई हुई शिक्षित महिला उनसे उनके बच्चो से इस तरह प्यार कर सकती है तो वे अपनी बस्ती की एक औरत से क्यो घृणा करें। घृणा मिटती गई और प्रेम बढता गया और दूलन के प्रति सब के व्यवहार

में परिवर्तन हो गया।

ईद आई। मैनेजर ने हिंदू मजदूरों को छुट्टी देने से इनकार कर दिया। उसने यूनियन की मांग पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह यूनियन के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करता था। मजदूर सभा मजदूरों की प्रतिनिधि संस्था थी और वह इस किस्म की व्यर्थ मांग रखने को तैयार नहीं थीं। लेकिन यूनियन के सदस्यों को मैनेजर की आज्ञा दरकार नहीं थी। वे त्योहार की छुट्टी मनाना अपना अधिकार समझते थे। मैनेजर की धमकियों के बावजूद वे काम पर नहीं गये।

मजदूर सभा के हिन्दू सदस्य काम पर गये; लेकिन उनका अंतःकरण उनसे सहमत नहीं था। आज से पहले उन्होंने छुट्टी की आवश्यकता नहीं समझी थी तो काम करते दुख नहीं होता था। लेकिन अब जब कि उनके साथी छुट्टी मना रहे थे और अपना अधिकार समझकर मना रहे थे, उनका इस प्रकार काम पर चले आना उचित नहीं था। दरअसल छुट्टी वे भी चाहते थे; पर एक जिद थी, जो काम पर ले आई थी। लेकिन मन में एक फांस थी, जो चैन नहीं लेने देती थी। सोचने पर जिद अपनी कमजोरी दीख पड़ी। उन्होंने अपने भाई मजदूरों को छोड़कर विरोधी पक्ष—सरमायेदार का साथ दिया।

मैनेजर को सारी रात नींद नहीं आई। सुबह जब मिल खुली तो वह क्रोध से बिफरा हुआ था। आते ही चपरासी पर बरस पड़ा कि उसने मेज क्यों अच्छी तरह साफ नहीं की। तुरंत जाबरों को बुलाकर हुक्म दिया कि कल जिन मजदूरों नें अपनी मर्जी से छुट्टी की थी, उन्हें उस वक्त तक काम पर न लगाया जाये जब तक कि वह माफी न मांगें। इसके अतिरिक्त रामदास, बंसी और कर्मा के विरुद्ध यह आरोप था कि उन्होंने मजदूरों को काम पर आने से रोका है, मिल में गड़बड़ फैलाई है। इसलिए उन्हें सदा के लिए काम से हटा दिया जाये।

मजदूर पहले से तैयार थे। उन्हें मालूम था कि मैनेजर हमला करेगा और उन्हें उसका उत्तर देना होगा। हुक्म सुनते ही यूनियन के तमाम सदस्य काम छोड़कर मिल से बाहर निकल आए और उन्होंने घोषित किया कि

अगर मैनेजर चौबीस घंटे के अन्दर सब मजदूरों को बिना शर्त काम पर वापस नहीं लेगा, तो वे आम हड़ताल करेंगे,जो उस समय तक नहीं खुलेगी जब तक दूसरी मांगें भी पूरी न हो जायें ।

मैनेजर समझता था कि मनचंदा ने सभा बनाकर मजदूरों की एकता को तोड़ दिया है । लेकिन जब अधिकांश मजदूर बाहर निकल गये, तो उसे पता चला कि मनचंदा और उसकी सभा कितने पानी में है । स्थिति गंभीर थी । मजदूरों के सामने झुक जाना मैनेजर की शान के विरुद्ध था । वह समझता था कि अगर एक बार मजदूरों की बात मान ली, तो वे हमेशा के लिए सिर चढ़ जायेंगे । और इस बार उन्हें नीचा दिखा दिया, तो इस विद्रोह-भावना का सर्वथा अंत हो जायेगा ।

समझौता संभव नहीं था ।

दूसरे दिन आम हड़ताल शुरू हुई । मजदूरों की मांग ये थीं—(1)नौकरी से हटाये गये मजदूरों को काम पर वापस लिया जाये,(2) हर बड़े त्योहार को सबकी छुट्टी हो,(3) हफ्ता 45 घंटे का हो,(4) डाक्टरी फीस बंद की जाये,(5)बस्ती में रहने वाले मजदूरों के लिए अच्छे क्वार्टर बनाए जायें ।

हड़ताल को सफल बनाने के लिए मजदूरों की ओर से पिकेटिंग शुरू हुआ । औरतें और मर्द मिल के दरवाजे पर खड़े थे, और यूनियन के फैसले का विरोध करके काम पर जाने वाले मजदूरों को भीतर जाने से रोक रहे थे । जो नहीं रुकते थे, उनकी मिन्नत आरजू करते थे । इससे भी काम नहीं चलता था, तो आगे लेटकर कहते थे—"अगर तुम्हें जाना ही है तो हमारे शरीर पर पांव रखकर जाओ ।" भैया लोग काम पर जाना चाहते थे लेकिन पिकेटिंग करने वालों का जोश और त्याग देखकर उन्हें भी रुकना पड़ा । निस्संदेह वे रोजी कमाने दूर से आए थे, लेकिन मजदूर थे और मजदूर एकता के महत्व को समझते थे ।

मुगली भी अपनी टोली के साथ आ पहुंचा । पिकेटिंग करने वालों ने रोका तो वह लड़ने पर आमादा हो गया । उसने उनकी मिन्नत-आरजू पर भी कोई ध्यान नहीं दिया । वह सिर्फ लड़ना चाहता था और क्रोध में

भरा हुआ आगे बढ़ रहा था। उसे किसी तरह भी रुकते न देख दूलन दौड़कर दरवाजे के आगे लेट गई और कहा—"जाना है तो मेरे शरीर पर से गुजरकर जाओ।" मुगली ने आव देखा न ताव, उसके सीने पर पांव रख दिया। पिकेटिंग करने वालों की आंखों में खून उतर आया, लेकिन वे शांत रहे। दूलन की देखा-देखी दो-तीन औरतें और लेट गईं। मुगली सबको रौंदता हुआ मिल के भीतर चला गया। लेकिन किसी दूसरे व्यक्ति ने उसका साथ नहीं दिया। जो लोग उसके साथ आये थे, खड़े सोच रहे थे कि अब क्या करें।

"बुजदिल ! आते क्यों नहीं ?" उन्हें असमंजस मे पड़े देखकर मुगली ने कहा।

"वे इन्सान हैं।" रामदास ने कहा।

"और मैं ?" वह लौट आया। औरतें उठ खड़ी हुईं।

"दरिंदा।" पिकेटिंग करने वालों मे से किसी ने कहा।

मुगली जो अपनी असफलता पर पहले ही झुंझला रहा था, आपे से बाहर हो गया और एक हड़ताली मजदूर पर लपकते हुए बोला—

"कौन साला मुझे दरिंदा कहता है, मैं एक-एक का खून पी लूंगा।"

"तैश में न आओ। होश से बात करो।" रामदास ने उसे रोका।

छोटे लड़के जुलूस निकाले घूम रहे थे। इस समय वे यहां आ पहुंचे और नारे लगाने लगे—

"हड़ताली मजदूर जिंदाबाद !"

"फूटपरस्त मुरदाबाद !"

लड़कों ने फूटपरस्त का नारा सिर्फ मुगली पर ही नहीं कसा बल्कि उसके साथियों की ओर मुंह करके उन्हें भी चिढ़ाना शुरू किया। यों अपमान होते देख उन्हें भी क्रोध आ गया और जो लड़का सबसे आगे जोर-जोर से नारे लगा रहा था, मुगली के एक साथी ने लपक कर उसके हाथ से झंडा छीन लिया। करीब था कि वह उसे फाड़ डाले; लेकिन रामदास का मजबूत हाथ तुरंत उसकी ओर बढ़ा।

"छोड झण्डा, वरना अभी तोडता हूं कलाई।" रामदास ने गरज कर कहा।

झण्डा बच गया। लेकिन राजेन्द्र और इखलाक जिस कलह से बचना चाहते थे, वह छिड गया। अब भी वे मुगली और उसके साथियो से लडना-झगडना और हाथापाई करना नही चाहते थे क्योंकि ऐसा करने से हडताल के टूट जाने का भय था। झण्डा ले लेने के उपरान्त राजेंद्र और इखलाक फिर बीच बचाव करने लगे। लेकिन रामदास, करमा, बसी और उसके दूसरे हडताली साथी कोई बात सुनने को तैयार नही थे। वे कहते थे कि सरमायेदार के पिट्ठू, इन्होंने हमारे झण्डे को हाथ क्यो लगाया?

शायद झगडा रुक जाता, लेकिन उसी समय पुलिस की दो लारिया घटनास्थल पर आ पहुची, उनमें से पच्चीस तीस सशस्त्र सिपाही निकले और उनके साथ एक गोरा अफसर था। मैनेजर ने थाने मे फोन किया था कि मजदूरो ने मिल पर हमला कर दिया है, हमारे आदमी उन्हें रोके हुए हैं।

गोरे अफसर ने आते ही राजेंद्र और इखलाक को गिरफ्तार कर लिया और हडताली मजदूरो को मिल के दरवाजे से हट जाने का हुक्म दिया। लेकिन मजदूरो ने यह नादिरशाही हुक्म मानने से साफ इनकार कर दिया। वे अपने नेताओ की रिहाई की माग कर रहे थे। और मिल के दरवाजे पर पिकेटिंग बदस्तूर जारी था।

गोरे अफसर ने लाठी चलाने का हुक्म दिया।

बस फिर क्या था, हुक्म मिलने की देर थी, औरतों, बच्चो और हडताली मजदूरो पर अन्धाधुन्ध लाठिया बरसने लगी।

मजदूर लाठिया खा रहे थे और नारे लगा रहे थे—

"मजदूर यूनियन जिंदाबाद!"

"लाल झण्डा जिंदाबाद!"

मुगली को बदला लेने की सूझी और लडके से झण्डा छीनने दौडा। लेकिन लडका झडे से लिपट गया जैसे वह उसकी देह और प्राण हो। मुगली जोर लगा रहा था और लडका झडा नही छोडता था। रामदास

ने मुगली को यह धूर्तता देखी तो वह चीते की तरह लपककर लड़के की सहायता को आ पहुंचा। उसने झंडा अपने हाथ में ले लिया और बोला—"बड़ा सूरमा बनता है। छीन मुझसे।"

इधर मुगली ने झंडा छीनने के लिए हाथ बढ़ाया और उधर सिपाही की लाठी रामदास के सिर पर आ पड़ी। रामदास ने लाठी की किंचित परवा नहीं की। एक हाथ से झंडा मजबूत पकड़े रखा और दूसरे हाथ से मुगली को धक्का देकर परे गिरा दिया। दो-तीन और हड़ताली मजदूर रामदास की सहायता को आये। मुगली ने उठकर फिर हमला किया। अच्छा-खासा हंगामा हो गया। लाठी बरसाने वाले सिपाही बीच में घिर गये। गोरे अफसर ने समझा कि सिपाहियों को पीटा जा रहा है, रिवाल्वर निकालकर तुरन्त दो-तीन फायर कर दिए।

रामदास और एक और मजदूर जख्मी हुआ। रामदास का घाव गहरा था। गोली उसकी छाती में लगी थी। वह हस्पताल पहुंचते ही मर गया।

हड़ताल टूटी नहीं, बदस्तूर जारी थी। दूसरे दिन शहीद की अर्थी का जुलूस निकाला गया, जिसमें न सिर्फ बस्ती के सब मजदूर और औरतें शामिल थीं, बल्कि शहर के लोग भी साथ थे। ठांठें मारता हुआ मीलों लम्बा जुलूस। सिर ही सिर दिखाई देते थे। सब लोग शहीद के प्रति श्रद्धा प्रकट कर रहे थे और पुलिस और सरकार की निंदा के नारे लगा रहे थे। यह पहला जुलूस था, जिसमें बस्ती के मजदूर और शहर के लोग एक साथ शामिल हुए थे। यह असाधारण एकता थी। शहीदों की याद इसी तरह मनाई जाती है।

शहर की कांग्रेस कमेटी ने भी हड़ताल का समर्थन किया और हड़ताली मजदूरों को हर तरह की सहायता मिलने लगी। मैनेजर और मनचन्दा घबराये और उन्होंने मजदूरों से समझौता कर लिया। सब मजदूर बिना शर्त काम पर वापस ले लिए गए; डॉक्टर की फीस छोड़ दी गई और बड़े त्यौहारों की छुट्टी मान ली गई।

यूनियन की नींव पक्की हो गई।

23

नारी

पद्मा का मन किसी चीज में नहीं लगता था। परीक्षा निकट आ गई थी और वह घर पर अकेली थी। मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। इन विचारों में कोई क्रम और कोई व्यवस्था नहीं थी। कमरे की चीजें भी अस्त व्यस्त थी। सुबह उठकर जो कपड़े उतारे थे, उन्हें उठाकर उचित स्थान पर रखा नहीं था। टूथपेस्ट और ब्रुश उसने मेज पर रख दिया था और अब भी वहीं पड़ा था। उसने अलमारी खोलकर एक के बाद दूसरी — चार पुस्तकें निकालीं। इतिहास, अर्थ और दर्शन किसी विषय में उसकी रुचि नहीं थी। आखिर उसने हार्डी का उपन्यास 'टेस' (Tess) निकाला। यह उपन्यास उसके कोर्स में शामिल था और उसे बहुत पसंद था। वह उसे कई बार पढ़ चुकी थी। लेकिन अब इसमें भी मन नहीं लगा। यों ही पन्ने उलटती हुई अंतिम पृष्ठ पर जा पहुंची। इस पृष्ठ की सब पंक्तियों के नीचे लाल रंग की पेंसिल से लकीरें खिंची हुई थी। यह लकीरें पद्मा ने खुद खींची थीं और हाशियों में अपने हाथ से अंग्रेजी में लिख दिया था—' एक्सालेंट!" कारण शायद यह था कि इन पंक्तियों में लेखक ने मानव-जीवन की भयानक ट्रेजडी की समस्त पीडा समो दी थी और कहानी को क्लाईमैक्स पर पहुंचाकर उसकी लेखनी आप ही आप रुक गई थी।

पद्मा ने इन पंक्तियों को पढ़ा और सूनी सूनी आंखों से शून्य में झांकने लगी। वास्तव में वह देख नहीं रही थी, सोच रही थी। नायिका की फांसी का दृश्य कितना भयानक था। अंधे कानून ने केवल उसके

अपराध को देखा, हृदय को नहीं। जब कानून भी पीड़ितों को कुचलने के लिए बनाया जाता हो और जब संसार पर इसी अन्धे कानून का शासन हो, तब लेखक का भगवान के न्याय पर व्यंग्य करना ठीक ही तो है।

लेकिन पद्मा लेखक के बजाय नायिका की बात सोच रही थी। उस बेचारी के दुखमय जीवन की करुण-कहानी मस्तिष्क में उभर आई थी। वह एक अकिंचित तृण की भांति समय की धारा के साथ बहती रही, कहीं भी पांव जमाने को स्थान न मिल सका। कोई भी बात उसकी इच्छा के अनुसार न हुई, क्योंकि वह समाज उसके लिए नहीं, एक ऊंचे और विशेष वर्ग के लिए बना था, क्योंकि शिक्षित और सहृदय व्यक्ति भी उसकी रूढ़िगत मान्यताओं और परम्पराओं से ऊपर उठने का साहस नहीं रखते थे। यह सोचकर पद्मा का मन विद्रोही हो उठा। वह पूछना चाहती थी—"ऐ ब्रिटेन के भद्र लोगो, यही वह लोकराज है, जिसके राग अलापते तुम कभी नहीं थकते ? यही वह सभ्यता और संस्कृति है, जिस पर तुम्हें इतना गर्व है ?"

प्रश्न पद्मा अपने आपसे पूछ रही थी और उत्तर में नायिका के जीवन की एक-एक घटना स्मृति-पट पर उभरती आ रही थी। वह सोच रही थी और एक अत्यन्त दारुण पीड़ा उसकी आत्मा को व्यथित कर रही थी, तड़पा रही थी। उसने देखा कि मानवजाति की एक बड़ी संख्या पर प्रत्येक युग, प्रत्येक काल और प्रत्येक देश में अत्याचार होता आया है और हो रहा है। अंत ?—अंत अवश्य होगा। इस अत्याचार ने विकास को कुंठित कर रखा है।

उसके चेहरे का रंग क्षण-क्षण बदल रहा था; आंखें कभी चमक उठती थीं, कभी उदास, और कभी सूनी-सूनी रिक्त में झांकने लगती थी। वह एक गम्भीर समस्या के बाह्य और भीतरी पहलुओं पर विचार करती हुई जान पड़ती थी और उसका हल ढूंढ रही थी। जब हल सुझाई न देता था, तो अपने ही विचारों पर खीझ जाती थी, सटपटा उठती थी, जैसे कोई घाव पर टिंचर रख दे।

उसकी सुन्दर आंखों में सहसा उठने वाली तरंगों से अनुमान होता

था कि उसके मन मे सुन्दर और महान विचार उठ रहे हैं; लेकिन वे शांतिप्रद नहीं, व्यग्रतापूर्ण हैं। तमाम उपन्यास पढ लेने पर भी पद्मा के मन की पहले कभी यह दशा नही हुई थी, क्योकि पहले उसने इन परिस्थितियों मे नही सोचा था, जिनमे आज सोच रही थी। इन विचारो की पृष्ठभूमि और थी, घटनायें और थी—उपन्यास के दर्पण मे वह उनका सिर्फ प्रतिबिम्ब देख सकती थी—अब यह विचार क्षण-क्षण साकार और ठोस होते जा रहे थे। जी चाहता था कि उन्हे व्यक्त करने के लिए कविता या कहानी लिखे अथवा चित्र बनाये।

पद्मा जब छात्रालय मे रहती थी तो उसे चित्रकारी का शौक था। लेकिन जब कॉलेज मे प्रवेश किया तो वह राजनीतिक कार्य में रत रहने लगी। चित्रकारी सर्वथा छूट गई। वह कल्पना के बजाय यथार्थ मे रहने लगी। लेकिन जब चेतना प्रौढ हुई, तो सोचा कि कविता अथवा चित्रकारी निरी कल्पना तो नही। कला जितना यथार्थ के निकट होती है, उतना ही सजीव, सुन्दर और प्रभावशाली होती है। इसलिए पुराने शौक ने फिर गुद्‌गुदाया, वह सोच रही थी कि परीक्षा से निपटकर अभ्यास शुरू करूंगी और किसी अच्छे कलाकार से सलाह लूगी।

जिस दिन से राजेन्द्र और इखलाक की, गिरफ्तारी, हड़ताल और मजदूरो पर गोली चलने की खबर पढी थी, उसके विचार स्थिर नही थे। जब महत्वपूर्ण घटनायें घट रही हो, जीवनाधिकारो के लिए संघर्ष छिडा हो, तो पुस्तक हाथ मे लेकर निठल्ले बैठे रहना व्यर्थ जान पडता था। वह चाहती थी कि राजेन्द्र और शीला की तरह संघर्ष में सक्रिय भाग ले। वह महसूस कर रही थी कि गोली मजदूरो पर नही, खुद उस पर चली है और उसे सिद्ध करना है कि जीवनाधिकारों के लिए जो संघर्ष छिडा है, वह गोलियो से शांत नही होगा।

जब भावुकता का वेग कम होता तो वह शांत और गम्भीर हो जाती और उसके विचारो मे गहराई और व्यापकता आ जाती। उसे लगता कि एक ही जगह क्यो, सभी जगह ऐसा हो रहा है। यह सामाजिक विधान ही ऐसा है। हर महाज पर लडने की जरूरत है।

इसी पृष्ठभूमि में वह उपन्यास की नायिका को देख रही थी। उसने *अपने मस्तिष्क में टेस का जो चित्र बनाया था, वह अपने ही समाज की* हजारों लाखों लड़कियों का चित्र था। यह लड़कियां जीवनाधिकारों से, सपनों और अभिलाषाओं से वंचित थीं और अंधी परम्पराओं के बंधन में जकड़ी हुई समय की धारा के साथ तृणवत बहती चली जा रही थीं, कहीं पांव जमाने को जगह न थी···

जब वह इन विचारों में ऊब-डूब रही थी, अचानक दरवाजे पर दस्तक हुई। उसने किवाड़ खोले और उर्मिला को सामने खड़े देखा।

"बहुत खूब। तुम्हारे आने की तो तनिक भी आशा नहीं थी।" उसने सखी का स्वागत किया।

"किसानों के आन्दोलन के बारे में एक पम्पलेट छप रहा है। नारायण से मसौदा लेने आई थी। सोचा, तुमसे भी मिलती चलूं।"

वे दोनों भीतर गईं। उपन्यास वैसा ही खुला पड़ा था। उर्मिला ने *उठा लिया और उसके पृष्ठ पलटते हुए पूछा—"इम्तहान की तैयारी हो रही है?"*

"तैयारी क्या खाक हो रही है, एक शब्द नहीं पढ़ा जाता। तबियत परेशान रहती है।"

पद्मा की सुन्दर आंखों से वाकई परेशानी झलक रही थी। उर्मिला एक क्षण मौन बैठी उसकी ओर देखती रही और फिर उसकी परेशानी का कारण समझकर बोली—

"हालात ही ऐसे हैं।" उर्मिला ने धीमे से कहा और सखी की ओर देखने लगी।

पद्मा को मालूम भी नहीं हुआ कि उसने बोलना बन्द कर दिया है। वह उसके मुंह की ओर यों देख रही थी, जैसे उसके होंठ फिर हरकत में आयेंगे और वह फिर कुछ कहेगी। बात सीधी और साधारण थी, लेकिन मन से निकली थी और उसमें संवेदना और गहराई थी; पद्मा को अच्छी लगी। वह कुछ और सुनने को उत्सुक थी। दरअसल वह अपनी परेशानी का इलाज चाहती थी। *उसका देखना निष्प्रयोजन नहीं था। वह एक रोगी*

की दृष्टि थी, जो उस डाक्टर की ओर देख रहा हो, जिसे रोग का निरीक्षण करके नुस्खा लिखना हो। लेकिन उर्मिला मौन रही उसने और कुछ नही कहा।

"क्या यह दुनिया ऐसे ही चलती रहेगी?" पद्मा ने कातर स्वर मे पूछा।

'ऐसे ही क्यों चलती रहेगी!" उर्मिला ने तुरन्त, मगर धीमे और दृढ स्वर मे कहा—"हम जो दिन-रात काम कर रहे हैं, हमारा प्रयास व्यर्थ तो नही जायेगा।"

वह मुस्कराई उसके चेहरे पर एक मनोहर आकर्षण था। यह आकर्षण अटल विश्वास से उत्पन्न हुआ था।

पद्मा उर्मिला को उस समय से जानती थी, जब वह पार्टी मे भर्ती हुई थी। वह काले रग की साधारण लडकी थी, उसके मन मे पहले यह विश्वास नही था और आत्मा मे यह आकर्षण नही था। जिस ईसाई धर्म ने पिता की आर्थिक आवश्यकताओ को पूरा किया, उसके समस्त सिद्धान्त भी इस लडकी को अध्यात्मिक शांति प्रदान न कर सके। उसके अन्त करण मे उपेक्षा और अवज्ञा के काटे चुभते रहे। महात्मा मसीह ने सैकडो साल पहले दुनिया वालो की शांति और तृप्ति के लिए जो स्रोत खोजा था, उसका स्नेह-जल सूख चुका था। अब उससे प्यास बुझाने की आशा करना व्यर्थ था।

पद्मा उर्मिला की ओर देख रही थी, और मन-ही मन उसकी पूर्व अवस्था और वर्तमान अवस्था की तुलना कर रही थी। उसके चेहरे से जो शांति झलक रही थी, वह उसके आत्म-विश्वास की सूचक थी। वह पद्मा के बाद पार्टी मे आई थी, लेकिन उससे कही अधिक सीख लिया था। कारण यह कि उसने अपने अस्तित्व को पार्टी के अस्तित्व मे विलीन कर दिया था और वह दिन-रात को सफल बनाने मे व्यस्त रहती थी। उसकी अपनी अभिलाषायें निजी न रहकर जनसाधारण—समस्त मानवता की अभिलाषायें बन चुकी थी। जो देस समय की धारा के साथ बहती रही थी,

24

प्रदर्शनी

अक्तूबर के महीने का पहला दिन था। लाजपतराय हाल में प्रदर्शनी की व्यवस्था की गई थी। इस प्रदर्शनी का उद्घाटन पंडित बदरीनाथ ने किया था। अब लाला हंसराज दर्शकों को तमाम चीजें बड़े प्रेम से दिखा रहे थे। उन्होंने गांधी टोपी, धोबी का धुला हुआ खद्दर का सफेद कुर्ता, बारीक धोती और चप्पल पहन रखी थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनका यह सारा पहनावा सिर से पांव तक देशी था और हाथ का बना हुआ था। प्रदर्शनी की सब चीजें भी देशी थीं और हाथ की बनी हुई थीं। यह प्रदर्शनी पंजाब ग्राम सुधार सेवक मंडल के आयोजन से हो रही थी। इसका मंशा देशी और हाथ की बनी हुई चीजों का प्रचार करना था, ताकि लोगों के मन में देश की बनी हुई चीजों के प्रति प्रेम उत्पन्न हो, और घरेलू उद्योग-धन्धों की उन्नति हो। हाल की दीवारों पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखे हुए जो मोटो लगा रखे थे, उनमें इस उद्देश्य का स्पष्टीकरण भली-भांति हो जाता था। उदाहरण के तौर पर एक मोटो के शब्द थे—

"भारत की उन्नति घरेलू उद्योग-धंधों की उन्नति पर निर्भर करती है।'

अक्तूबर के महीने में स्वदेशी-प्रचार के प्रोग्राम को विशेष रूप से तेज कर दिया जाता था, क्योंकि इस प्रोग्राम का गांधीजी के जीवन से सीधा सम्बन्ध था और इस महीने के दूसरे दिन उनका जन्म-दिन पड़ता था, जो प्रतिवर्ष धूम-धाम से मनाया जाता था और इस साल भी मनाया जा रहा

था। इसी उपलक्ष में प्रदर्शनी की व्यवस्था की गई थी, जिसे तीन दिन तक जारी रहना था।

इसके अतिरिक्त और भी सरगर्मियां थीं। सुबह-सवेरे पंडित बदरीनाथ और लाला देसराज कुल कार्यकर्ताओं को साथ लेकर हरिजन बस्ती में खद्दर बांटने गये थे। इस शुभ अवसर पर वे हर साल खद्दर बांटने जाते थे; लेकिन इस बार बस्ती के जमादार सुन्दर के सिर पर जाने क्या भूत सवार हुआ, कि उसने किसी को गिरह भर कपड़ा नहीं लेने दिया। सब 'चौधरीजी' 'चौधरीजी' कहकर उसे समझाते रहे; लेकिन उसने किसी की एक न सुनी, तैश में आकर बोला—"साल भर कहां सोते हो? हमारी बात तक नहीं पूछते। एक दिन आ खड़े होते हो दो गज खद्दर लेकर। बड़े दानवीर बनते हो। ले जाओ। हमें नहीं चाहिए तुम्हारा खद्दर!"

वे लौट आये। जिन महानुभावों ने सेवा-व्रत ले रखा हो उन्हें ऐसी बातों का तनिक मलाल नहीं होता। सब कुछ सुनना पड़ता है। जितना न सुना जाये, उतना अच्छा। बस अपने काम से काम।

प्रदर्शनी कल शुरू हुई थी। दो दिन और होगी। फिर ठीक दस बजे इसी हाल में अखंड चर्खा शुरू होगा। पहले पंडित बदरीनाथ अथवा कोई और प्रतिष्ठित नेता चर्खे की फिलासफी और खादी के अर्थशास्त्र पर भाषण देंगे। वे स्वयं अपने करकमलों से चर्खा चलायेंगे, दो-चार महीन तार निकालेंगे और फिर वह चर्खा लगातार चौबीस घंटे चलता रहेगा, एक सेकण्ड के लिए भी बन्द न होगा। एक के बाद दूसरा आता जायेगा, चर्खा वहीं रहेगा और चलता रहेगा—चौबीस घण्टे लगातार, बिल्कुल अखंड!

लेकिन सिर्फ एक चर्खा नहीं, बहुत से चर्खे होंगे। कातने का मैच होगा। महीन और अधिक कातने वालों अथवा वालियों में तीन इनाम बांटे जायेंगे। यह इनाम हर साल दिये जाते हैं, हर साल मैच होता है, हर साल अखंड चर्खा चलाने की रस्म मनाई जाती है और महीन तार निकाले जाते हैं—प्रेम और श्रद्धा के तार!

चर्खा कातना हर कांग्रेसी नेता का धर्म है। उसके हाथ का कता हुआ

सूत मूल्यवान ही नही पवित्र भी समझा जाता है, प्रत्येक प्रदर्शनी मे आदर और श्रद्धा से दिखाया जाता है। इस प्रदर्शनी के लिए भी देश के महान नेताओ के सूत के नमूने मगवाये गये थे। लाला देसराज यह नमूने प्रत्येक दर्शक को विशेषरूप से दिखा रहे थे और बता रहे थे—"यह बापू के हाथ का कता हुआ सूत है, बहुत अच्छा कातते हैं, फिर तार हाथ मे लेकर कहते — देखिए तो सही, कैसा बारीक और मजबूत है।" कहते-कहते उनकी आखें चमक उठती। वे श्रद्धा और आनन्द मे भरकर बहुत-सी बातें कहते और अपने प्रवचन का अन्त इस वाक्य पर करते—' मैं तो समझता हू कि यह उनकी आध्यात्मिक शक्ति का चमत्कार है।"

गाधीजी के बाद पडित जवाहरलाल नेहरू के हाथ का सूत, राजगोपालाचार्य के हाथ का सूत, सरदार पटेल के हाथ का सूत, आचार्य कृपलानी के हाथ का सूत, खान अब्दुलगफ्फारखा के हाथ का सूत, पडित बदरीनाथ के हाथ का सूत—दर्जा बदर्जा और करीने से रखा हुआ था। दर्शक न केवल सूत देखते थे बल्कि लाला देसराज अपनी योग्यता के अनुसार प्रत्येक नेता के व्यक्तित्व की जो व्याख्या करते थे, उसे भी सुनते थे।

सूत के बाद हाथ के बुने हुए कपडे के नमूने थे, जिनमे पाच पैसे गज की मोटी और छिद्री खादी से लेकर, पाच रुपये गज तक का रेशम, बारीक धोतिया और साडिया मौजूद थी। लोग इन साडियो की महानता, सुदरता और हलका वजन देखकर चकित रह जाते, और ईस्ट इडिया कम्पनी के अत्याचारो की कहानी आखो मे भरकर कहते—"ढाके की महीन मलमल के किस्से, कि चालीस गज का थान अगूठी मे से गुजर जाता था, बिलकुल सही मालूम होते हैं।'

' जी हा, बिल्कुल सच्ची बात है।" लालाजी स्वर मे आर्द्रता भरकर बोल उठते, ' अग्रेज सौदागरो की बदमाशी ने सब कुछ नष्ट कर दिया, कारीगरो के अगूठे कटवा दिये। फिर भी देखिए हमने थोडे से अरसे मे कितनी उन्नति कर ली है। सन् बीस-बाईस की बात है, जब हम कालेज छोडकर असहयोग आदोलन मे शामिल हुए थे, उस वक्त खद्दर इतना मोटा

और खुरदरा था कि पहनने से शरीर छिलता था।" लालाजी ने नाक भौं सिकोड़ी, जैसे उस खद्दर के विचार मात्र से विशेष कष्ट हो रहा हो, "हमने उस समय से खद्दर पहनना शुरू किया है और उस समय खद्दर पहनना एक बात थी। अब तो जिसे देखो वही खद्दर पहने घूम रहा है, हमने वह खद्दर रंगवाकर पहना था और साधुओं का भेष......"

सबकी निगाहें लालाजी पर जम जातीं। वे उनका कुर्ता, बारीक धोती और चप्पल ध्यान से देखते, जैसे वे स्वयं भी प्रदर्शनी ही का एक अंग हों।

लेकिन लालाजी प्रदर्शनी का अंग नहीं, उसके इचार्ज थे। दर्शकों को प्रत्येक वस्तु भली-भांति दिखाना उनका कर्त्तव्य था और वे अपने इस कर्त्तव्य का पालन बड़ी मुस्तैदी से कर रहे थे। सूत और कपड़े के अतिरिक्त और भी बहुत सी चीजें थीं—जैसे हाथ का बना हुआ कागज, खरास का पिसा हुआ आटा और खजूर का गुड़—गुड़ जो लालाजी के मधुर सम्भाषण की तरह मीठा था। एक गीता रखी हुई थी जिसकी जिल्द खादी की थी और वह हाथ से बांधी गई थी और गांधीजी की एक छोटी-सी मूर्ति थी, जो उनके किसी श्रद्धालु ने अपने हाथ से बनाई थी।

ये सब चीजें दिखा देने के उपरांत लालाजी का अन्तिम प्रवचन होता था—"आपने देखा, हमें मशीनरी की बिलकुल जरूरत नहीं है। मशीनरी ने हमारे दिल और दिमाग को गुलाम बनाया है और हम मामूली-मामूल बातों के लिए दूसरों के मोहताज हो गये हैं..."

दर्शकों की भीड़ शाम को बढ़ जाती, क्योंकि लोग दफ्तरों से आकर और काम से निपटकर जब सैर को निकलते, तो प्रदर्शनी भी देखते थे। लालाजी हर वक्त हाल में मौजूद मिलते थे। वे अपना चर्खा वहीं उठा लाये थे। जब कोई देखने वाला नहीं होता था, तो कातने बैठ जाते थे।

इस समय ग्यारह बजे थे और लालाजी बैठे चर्खा कात रहे थे, कि प्रह्लाद और गोपाल उधर आ निकले। वे जैसे ही घूमने निकले थे, कल उद्घाटन के समय भी उपस्थित थे, और सब चीजें देख चुके थे। यदि ये चीजें पहले न देखी होतीं तब भी उन्हें किसी नेतृत्व की आवश्यकता नहीं थी। वे खुद कांग्रेसी थे, सारी बातें भली-भांति जानते और समझते थे।

इसलिए लालाजी कातने मे व्यस्त रहे। वे दोनो भी आकर उनके पास आ बैठे। गोपाल ने लालाजी के हाथ का सूत बड़े गौर से देखा और फिर मुस्कराते हुए कहा —

' लालाजी आप इस का नमूना भी तो प्रदर्शनी में रखिये !' [illegible]

"प्रदर्शनी ही मे तो रखा है, देख लो जी भरकर।" लालाजी ने झट उत्तर दिया।

'पर ऐसे नही। बाकायदा लीडरो के सूत के साथ पंक्ति मे लटका हुआ हो और उस पर चिट लगी हो—लाला देसराज के हाथ का कता हुआ सूत।"

गोपाल अब भी अपनी बात मुस्कराकर कह रहा था, लेकिन लालाजी गम्भीर होकर बोले—"देखो गोपाल, तुम अभी नौजवान हो। तुम्हे जिंदगी मे बहुत कुछ सीखना है। अगर सफलता चाहते हो तो मेरी एक बात सदा याद रखो।" फिर उन्होने तार को तकले पर चढाते हुए कहा, "आदमी काम मे बडा बनता है, दिखावे से नही।"

"माफ कीजिएगा लालाजी।" इस बार प्रह्लाद बोला, "यो तो आप की यह प्रदर्शनी भी दिखावा है।"

' नही, यह दिखावा नही, काम है। लोगो को पता चलता है कि हम मशीनरी के बिना गुजारा कर सकते है, जब मशीनरी नही थी तब हम अधिक खुशहाल और नेक थे" लालाजी न एक लम्बा तार निकाला और उसे तकले पर लपेटत हुए कहा— 'और लोगो को मालूम होता है कि काग्रेसी सिर्फ भाषण ही नही देते, काम भी करते हैं।"

' काम जो हो रहा है, वह आप भी जानते हैं और हम भी।' गोपाल ने एतराज किया और गम्भीर होकर कहा, "एक रस्म पड गई है, जिसे पीटा जा रहा है।'

अन्तिम वाक्य सुनकर प्रह्लाद क कान खडे हुए और वह गोपाल की ओर देखकर रहस्यपूर्ण ढग से मुस्कराया।

"काम क्या नहीं हो रहा।" लालाजी का स्वर ऊंचा और तीव्र हो गया था—"चर्खा सघ की शाखें खुली हैं, खद्दर भण्डार खुले हैं, लाखो

बेकारों का रोजगार चलता है और देश का रुपया देश में रहता है।...''

"और हर साल हजारों रुपये का जो नुकसान रहता है, वह बिड़ला पूरा करता है।"

गोपाल जब यह बात कह रहा था, नारायण भी आ गया। वे तीनों अभी जगदीश के पास बैठे थे। प्रदर्शनी की बातें हो रही थीं, जगदीश ने इसे एक रस्म बताया था। और फिर चर्खे और मशीनरी का जिक्र करते हुए कहा था कि चर्खा संघ में जो मजदूर काम करते हैं उन्हें मजदूरी लगभग साढ़े तीन आने मिलती है और काम दस घंटे से भी अधिक करना पड़ता है। फिर भी हजारों रुपये महीना का नुकसान रहता है, जो बिड़ला पूरा करता है।

ये आंकड़े 'खादी का अर्थशास्त्र' पुस्तक में दर्ज थे; जिसे नारायण ने भी पढ़ा था। जगदीश ने इसी पुस्तक के आधार पर वे सारी बातें कही थीं, जिन्हें अब गोपाल दोहरा रहा था।

"गलत, बिलकुल गलत!" देसराज ने प्रतिवाद किया, "नुकसान हरगिज नहीं रहता।"

"नुकसान तो रहता है लालाजी, और बिड़ला उसे पूरा भी करते हैं।"

नारायण ने धीमे, मगर दृढ स्वर में कहा। लालाजी उसके मुंह की ओर देखते रह गये और स्वर बदलकर बोले—"तुम्हारी ही बात सच मान ली जाये तो भी यह बापू की दानिशमंदी है कि उन्होंने सरमायेदारों को भी अपने साथ ले रखा है। इतने बड़े आंदोलन पैसे के बिना नहीं चलते। बापू का ही चमत्कार है कि जिन्हें तुम खून चूसने वाले कहते हो, वे भी आजादी की लड़ाई में सहयोग दे रहे हैं, देश के लिए त्याग कर रहे हैं।"

"त्याग तो आपके पंडित बदरीनाथ भी बहुत करते हैं।" गोपाल ने विषय से हटकर व्यंग्य किया।

गोपाल ने प्रह्लाद की ओर नहीं देखा। वह अपना निचला होंठ चबा रहा था और आंखों में तिरस्कार भरा था, जैसे वह सहसा चिढ़ गया हो,

उसका मन खीझ से सटपटा रहा हो। उसे मालूम था कि लालाजी की बात के उत्तर मे गोपाल आगे क्या कहेगा। वे जगदीश से जो बातें सुनकर आए थे, गोपाल उन्हे एक-एक करके दोहरा रहा था। दरअसल वे बातें दोहराने के लिए ही उसने यह प्रसग छेडा था। प्रह्लाद इन सब बातों से सहमत था, लेकिन गोपाल का यह छिछलापन देखकर वह उसका विरोधी बन गया और मन ही मन निश्चय किया कि किसी बात पर उलझकर उसे खरी खरी सुनाये और सारा बुकरातपन निकाल दे।

"जी हा, पडित बदरीनाथ भी त्याग करते है।" लालाजी ने छाती निकाल कर बडे गर्व से कहा, "कल ही की बात है कि उन्होने असेम्बली की मेम्बरी पर लात मार दी। मेम्बरी छोड देना कोई कम त्याग नही है।"

लालाजी क्रोध मे लाल-पीले हो रहे थे। कोई उनके अपने व्यक्तित्व मे लाख दोष निकाले, वह चुपचाप सुन लेते थे, कोई व्यक्ति पडित बदरी नाथ पर आक्षेप करे, यह उन्हें सहन नही था। "माफ करना।" वह फिर बोले, "तुमने चूकि नाम लिया है, मैं भी नाम लेता हू। तुम्हारा मदन इसी मेम्बरी के लिए मारा-मारा फिरता है, राजनीति मे भाग लेते जुमा-जुमा आठ दिन हुए नही और हालत यह है। पैदा होते ही मेम्बरी के स्वप्न देखने लगते हैं और बडे इनकलाबी बनते हैं।"

मदन पर चोट हो तो गोपाल प्रसन्न होता था, लेकिन इस समय व्यक्ति का नही, बायें दल की मान-रक्षा का प्रश्न था, जिससे गोपाल अपने आपको सम्बन्धित समझता था, बोला—

"हा, हमारी पार्टी का हर एक सदस्य इनकलाबी और बहादुर है। मदन ही को लीजिए वह भी इस समय किले मे बन्द है।" वीरता गोपाल के चेहरे से प्रकट थी, क्योंकि उसके गाल सुर्ख हो गये थे—"पडित जी ने किसलिए मेम्बरी छोडी है, यह ढोल की पोल भी हमे मालूम है।"

"क्या मालूम है तुम्हे ?" शब्द कटु और विषैले थे, जैसे उन्होंने अपने अहिंसावादी मन मे बिच्छू पाल रखा हो।

"हमे यह मालूम है कि विधान सभा के कांग्रेस सदस्य उन्हें लीडर

चुनने को तैयार नहीं थे। मेम्बरी छोड़कर लीडरी की शान कायम रखी है और यही उनका त्याग है।" गोपाल बोला।

बात सच्ची थी। लालाजी की चढ़ी हुई त्योरियां उतर गईं और मुंह जरा-सा निकल आया।

गोपाल हंसा-विद्रूप, कटु और विजयोन्मत्त हंसी। इस आशा में कि नारायण और प्रह्लाद भी हंसेंगे, उसने उनकी ओर देखा। लेकिन उनका ध्यान इधर नहीं था, जैसे उन्हें बहस से कोई दिलचस्पी न हो और बड़ी देर से प्रदर्शनी की चीजें देख रहे हों।

"तुम लोग बस दूसरों पर कीचड़ उछालते हो, बेकार बातें बनाते हो और काम कुछ नहीं करते।"

लालाजी के चेहरे की नसें तन गईं और नथुने फड़फड़ाये।

"अगर हर दस साल के बाद छः महीने कैद हो आना ही काम है, अगर हाल में बैठकर चर्खा कातना और साल में एक बार भंगियों में जाकर खद्दर बांट आना ही काम है, तो ठीक है हम लोग काम नहीं करते" गोपाल लालाजी को चिढ़ाने पर तुला हुआ था और तरकश से नया-नया तीर निकाल रहा था, "सब जानते हैं कि आप लोगों ने सियासत को दुकानदारी बना रखी है और उसे धर्म का रूप दे दिया है। जिस तरह दूसरे कारोबारी लोग गंगा में नहाकर पाप धो आते हैं और फिर कारोबार में लग जाते हैं, उसी तरह आप लोग खद्दर पहनकर, चर्खा कातकर और छः महीने कैद काटकर पाप धो लेते हैं, शुद्ध होकर फिर कारोबार में लग जाते हैं और देशभक्ति के नाम पर दुगुना और चौगुना कमाते हैं।…"

"और तुम क्या करते हो?"

गोपाल ने जो बातें सुनी थीं, वे खत्म हो चुकी थीं। और बहस को आगे बढ़ाने का उसका मन नहीं था। लेकिन एकदम बन्द भी कैसे करता? लालाजी के प्रश्न का उत्तर देना तो जरूरी था। तुनककर बोला—

"हम किसानों, मजदूरों का संगठन करेंगे और उनकी ताकत से इनकलाब लायेंगे।'

"ताकत का इस्तेमाल हिन्दुस्तान का नहीं, रूस का सिद्धान्त है, इस-

लिए तुम अपने देश का नही रूस का प्रचार करते हो।"

इस बार लालाजी ने गोपाल की कमजोर रग पर हाथ रखा था, वह झुंझला कर बोला—"यह झूठ है। हमे रूस से कोई सरोकार नही। साबित करो कि हम रूस का प्रचार करते हैं ?"

"साबित मैं करता हू।" प्रह्लाद बोल उठा, "गनी हमेशा लाल झंडा लेकर और बोलशेविक सिपाही की वर्दी पहन कर निकलता है और तुम सब बड़े गर्व से कहते हो कि गनी रूसी सिपाही है।"

"नारायण बैठा है पूछ लीजिए, मैं हमेशा इस बात का विरोध करता हू।" गोपाल ने सफाई पेश की।

"बात तुम्हारी नही, असूल की हो रही है।" लालाजी ने आखें झपकाई।

"असूल-वसूल कुछ नही।" नारायण बोला, "गनी अपने आपको रूसी सिपाही कहकर खुश होता है क्योकि वह समझता है कि रूस मे मजदूरो और किसानो का राज है और रूसी सिपाही उनके इस राज की, महनत और आजादी की हिफाजत करता है।"

"हम जानते हैं कि रूस के लोगो को कैसी आजादी हासिल है। स्टालिन के खिलाफ कोई जबान तक नही हिला सकता।" लालाजी ने प्रतिवाद किया।

"आप कहते हैं कि वहा मजदूरो का राज है; लेकिन जरा बताइये तो सही कि मजदूरो पर मजदूरो की डिक्टेटरशिप का क्या मतलब ?" प्रशाद बोला।

प्रह्लाद को यो तेज होते देख नारायण अवाक् रह गया। वह इसका कारण नही समझ पाया। एक मिनट चुप और मौन उसके मुह की ओर देखता रहा फिर आखो मे आखें डालकर पूछा—

"प्रह्लाद ! यह तुम पूछ रहे हो ?"

"हा, मैं पूछ रहा हू।" प्रह्लाद ने हर एक शब्द पर जोर दिया।

"नहीं, तुम नहीं पूछ रहे।" नारायण ने उत्तर दिया और स्वर बदलकर कहा—"तुम्हें तो मैं पहले ही बात चुका हूं।"

"एक बार फिर बता दो हर्ज क्या है?" लालाजी को कौतूहल सूझा।

मगर नारायण चुप बैठा हाल मे लगे चित्रों की ओर देख रहा था।

: 25 :

ताजमहल

चादनी रात थी। रूही बाग मे बैठी थी। आकाश पर बादलो के आवारा टुकडे घूमते फिर रहे थे। एक बडा टुकडा धीरे-धीरे और दबे पाव चाद की ओर बढ रहा था, जैसे कोई चोर नीद मे मस्त रमणी के माथे का मोती चुराने का प्रयत्न कर रहा हो। रजनी ऊध रही थी। बादल ने आगे बढकर चाद को अपने दामन मे छिपा लिया, लेकिन उसका दामन महीन था, चादनी उसमे से छन रही थी; बाग के फर्श पर, बेल-बूटो पर और रूही के सुन्दर शरीर पर मद्धम-मद्धम प्रकाश पड रहा था। प्रत्येक वस्तु उन्मत्त, जादू मे डूबी हुई सी दीख पडती थी, जैसे समस्त प्रकृति ने स्वर्ण-आलोक की एक हल्की-सी चादर ओढ रखी हो।

रूही ने एक सानन्द अगडाई ली और फिर वातावरण पर एक ऐसी दृष्टि डाली, जो बिजली की चमक की भाति धरती से आकाश तक घूम गई। वह मुस्करा उठी। उसका अग-अग मुस्करा रहा था। वह सिर से पाव तक पुष्प-वाटिका बनी हुई थी। वक्षस्थल मे, मन मे, बाहो मे और आखो मे फूल खिले थे, जिन की सुगन्ध से उसकी आत्मा का कण-कण महक उठा था। अभी इखलाक उसके साथ था। उसने रूही को स्पर्श किया था। कितना विचित्र था यह स्पर्श जिसने रूही के नारीत्व को जगा दिया था!

उसे इखलाक के साथ अपनी इस भेंट की एक-एक बात याद आ रही थी।

जब से रूही ने इखलाक की गिरफ्तारी की खबर पढ़ी थी, वह उसे देखने के लिए विकल थी और यों महसूस कर रही थी जैसे वह खुद परियों की कहानी की शहजादी हो और उसका प्रेमी शहजादा उसे प्राप्त करने के लिए कोई कठिन मुहिम सर करने गया हो और वह बैठी उसका इन्तजार कर रही हो।

पहले उसने इखलाक से इस मुहिम की—अपने कारनामों की कहानी सुनाने को कहा। इखलाक उसे मजदूरों के संगठन, उनके संघर्ष और उनके निजी जीवन की बातें सुनाता रहा। रूही बड़ी दिलचस्पी से सुनती रही और उसकी आंखों, चेहरे और हिलते हुए होंठों को देखती रही। उसके मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द महत्वपूर्ण था; हृदय में उतरा जा रहा था, उसमें आत्मीयता का रस था, आकर्षण था। वह प्रेमी शहजादे की आप-बीती सुन रही थी। कहानी लम्बी थी, लेकिन रूही उसे आदि से अन्त तक सुन लेना चाहती थी। उसके सामने नये जीवन के नये अनुभव बयान किए जा रहे थे और इन नये अनुभवों ने इखलाक को भी नया बना दिया था। मुहिम से लौटे हुए शहजादे के व्यक्तित्व में कितना आकर्षण और कितनी विलक्षणता थी। रूही उसे जी भरकर देख लेना और उसकी विलक्षणता को अपनी आत्मा में भर लेना चाहती थी।

"क्या तुम्हें कभी मेरी भी याद आती थी ?"

इखलाक ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह कुछ क्षण चुप बैठा रूही के सुन्दर सकोमल होंठों की ओर देखता रहा, जो प्रश्न कर चुकने के उपरान्त भी गुलाब की पंखड़ियों के सदृश हिल रहे थे, जैसे उन पर कोई गीत मचल रहा हो और कोई अन-सुनी, अन-गाई लय वातावरण को संगीत-माधुर्य से भर रही हो। रूही चाहती थी कि इखलाक उसकी ओर ऐसे ही देखता रहे। उसकी निगाहों से उसे अपने प्रश्न का उत्तर मिल चुका था। लेकिन उसके होंठ हिले और वह बोला—

"नहीं !"

निस्तब्ध वातावरण में एक अमर संगीत गूंज उठा, जैसे इखलाक खुद न बोला हो, बल्कि उसने रूही के होंठों पर कम्पित और विकल राग को

छेड़ दिया हो। रूही झूम उठी। यह एक 'नहीं' सौ 'हां' पर भारी थी और नकार के पर्दे में जो आत्मीयता निहित थी, वह बादलों में से छन-छनकर आने वाली चांदनी के सदृश मद्धम, कोमल और उन्मादपूर्ण थी। फिर मौन का एक चिरक्षण—और वे दोनों चुपचाप एक दूसरे की ओर देखते रहे।

इसी अवस्था में जैसे सदियां बीत गई।

देखने का वह ढंग कितना उल्लासमय था। उसकी कल्पना मात्र से रूही सिहर उठी थी। इखलाक को गए आध घण्टा से अधिक बीत चुका था, लेकिन रूही को लग रहा था, जैसे वह अब भी उसके पास बैठा हो और उसे वैसे ही देख रहा हो, जैसे उन क्षणों को अमरत्व प्राप्त हो गया हो।

"रूही, जब इन्सान के दिल में हुस्न और मौसीकी की कशिश बाकी न रहे, रूहानियत का एहसास मिट जाये, तो वह इन्सान नहीं रहता, हैवान बन जाता है।"

इखलाक ने बात शुरू की और आहिस्ता-आहिस्ता कहता रहा—"सदियों की गुलामी, भूख और इफलास ने हमारी हालत हैवानों-सी बना दी है। हमारे नजदीक जिन्दगी का मकसद पेट भरने के अलावा कुछ नहीं है। और हम पट भी अच्छी तरह नहीं भर सकते। हम जिस रूहानियत पर नाज करते हैं, और जिस आला तहजीब की डींगें मारते हैं। वे सब खाली पेट के डकार है। जब तक इन्सान को माद्दी सकून[1] हासिल न हो, रूहानियतें मयस्सर नहीं आ सकती। हम अपने ही खोल में मस्त हैं, हम अपने जेहनी उफक[2] को बुलंद करने और अपनी रूह में हुस्न भरने की जरा भी कोशिश नहीं करते। हमारी मौजूदा जद्दो-जहद का मकसद यह है कि खुदपसन्दी का यह खोल टूटे, और हम इस सतह से ऊपर उठें और सब मिलकर उस मंजिल की तरफ बढ़ें, जहां से एक नई जिन्दगी का आगाज

1 भौतिक शान्ति
2 क्षितिज

अब उसकी बाहें इखलाक के गले में नहीं थी। देर हुई, वह जा चुका था। लेकिन वह अब भी स्थिर बैठी थी, उन्माद में डूबी हुई सी। वह उन क्षणों को, इखलाक के स्पर्श को और उसकी गर्म सांस को अनुभव कर रही थी। वे क्षण अमर और अनन्त थे। उनका कोई ओर-छोर नहीं था। वह चुप और स्थिर बैठी थी और उसका अंग-अंग मुस्करा रहा था।

सहसा निस्तब्धता टूटी। एक झींगर की आवाज फिज़ा में गूंज उठी। रूही का ध्यान टूटा। हवा में ठंडक बढ़ गई थी। उसने एक कपकपी सी लेकर आकाश की ओर देखा। बादल का दामन चांद पर से सरकता जा रहा था। शायद उसे झींगर की आवाज ने चौंका दिया था और वह चोरी का माल वहीं छोड़कर भाग निकलने का मार्ग खोज रहा था। चांदनी निखर गई थी, प्रत्येक वस्तु चमक उठी थी स्वच्छ और उज्ज्वल दीख पड़ती थी।

रूही अब भी आकाश की ओर देख रही थी। बादल की ओट से निकला हुआ चांद मुस्करा रहा था, जैसे उसने किसी से आंख-मिचौनी खेली हो। तनिक परे जाकर बादल भी उसे मुस्कराता हुआ देखने के लिए ठहर गया। लेकिन हवा को उसका यह व्यवहार पसन्द नहीं था। वह उसे आगे चलने पर विवश कर रही थी। बहुरूपिया बादल मचल गया और उसे प्रसन्न करने के लिए झट एक सुन्दर भवन का रूप धारण कर लिया। रूही उसे विस्मय और आश्चर्य में भरी देखती रही, जैसे वह उसकी अपनी रचना हो। उसकी अपनी कल्पना ने ही यह सुन्दर भवन निर्माण किया हो। इखलाक और वह दोनों ही बाहों में बाहें डाले उसकी ओर बढ़ते जा रहे हों, आकाश में अटका और चांदनी में नहाया हुआ यह सुन्दर भवन ताजमहल से कहीं सुन्दर था।

फिर उसे ताजमहल से सम्बन्धित यह बात याद हो आई कि एक अंग्रेज स्त्री ने अपने पति से कहा था कि अगर वह उसकी कब्र पर ताज-महल बना सके तो वह तत्क्षण मरने को तैयार है। अहम्मय भावना की

होता है, इंसान मुस्कराना सीखता है और हुस्न और मुहब्बत के मानी समझने लगता है।"

उसने ऐसी बहुत सी बातें कहीं—और कहीं दृढ़ विश्वास और निश्चय के साथ। उसका स्वर इतना सहज और स्वाभाविक था, जैसे वह बातें न कर रहा हो, सांस ले रहा हो—"रूही! कोल्हू के बैल की तरह हम एक दायरे में घूमते रहना पसन्द करते हैं, जितना यह दायरा तंग और महदूद है, उतने ही हमारे ख्यालात तंग और महदूद हैं। हमने कभी कायनात[1] की वुसअतों[2] में उड़कर नहीं देखा, जिन्दगी की अजमतों को नहीं पहचाना।"

रूही ने उल्लास में भरकर एक लम्बी अंगड़ाई ली, जैसे उसके भीतर की जड़ता टूट रही हो। वह मुस्कुराई और उसने बाहें फैला दीं, जैसे पिंजड़े की अभ्यस्त गुरैया सृष्टि के विस्तार में उड़ने के लिए पर तोल रही हो। उसने प्रेम भरी दृष्टि से इखलाक की ओर देखा और उसकी अचकन का एक छोर पकड़ कर स्मित कहा—

"इखलाक इन वुसअतों में तुम मुझे भी अपने साथ ले चलो। बुलंदियों पर हम तुम इकट्ठे उड़ेंगे और सितारों से कहेंगे, हम तुम्हारे राजदां हैं।"

और उसकी बड़ी-बड़ी आंखें सितारों पर गड़ी हुई थीं और उनसे वही अमर अभिलाषा व्यक्त हो रही थी, जो मनुष्य सृष्टि के आरम्भ से अपने सपनों में छिपाये हुए है।

इखलाक ने सगर्व रूही की ओर देखा। उसे अपनी छाती फैलती हुई लगी, जैसे उसके चौड़े चकले वक्षस्थल में रूही के इन शब्दों ने सृष्टि का समस्त विस्तार भर दिया हो। उसने उल्लास और उन्माद में भरकर रूही को बांहों में जकड़ लिया, उसकी सुन्दर आंखों और रसीले होंठों को चूम लिया। रूही ने अपनी बांहें इखलाक के गले में डाल दीं और अपने दिल से उसके दिल की धड़कन को सुनने और अनुभव करने लगी।

---

1. सृष्टि
2. विस्तार

अब उसकी बाहे इखलाक के गले मे नही थी। देर हुई, वह जा चुका था। लेकिन वह अब भी स्थिर बैठी थी, उन्माद मे डूबी हुई सी! वह उन क्षणो को, इखलाक के स्पर्श को और उसकी गर्म सास को अनुभव कर रही थी। वे क्षण अमर और अनन्त थे। उनका कोई ओर-छोर नही था। वह चुप और स्थिर बैठी थी और उसका अग-अग मुस्करा रहा था।

सहसा निस्तब्धता टूटी। एक झीगर की आवाज फिज़ा मे गूज उठी। रूही का ध्यान टूटा। हवा मे ठडक बढ गई थी। उसने एक कपकपी सी लेकर आकाश की ओर देखा। बादल का दामन चाद पर से सरकता जा रहा था। शायद उसे झीगर की आवाज ने चौंका दिया था और वह चोरी का माल वही छोडकर भाग निकलने का मार्ग खोज रहा था। चादनी निखर गई थी, प्रत्येक वस्तु चमक उठी थी स्वच्छ और उज्ज्वल दीख पडती थी।

रूही अब भी आकाश की ओर देख रही थी। बादल की ओट से निकला हुआ चाद मुस्करा रहा था, जैसे उसने किसी से आख-मिचौनी खेली हो। तनिक परे जाकर बादल भी उसे मुस्कराता हुआ देखने के लिए ठहर गया। लेकिन हवा को उसका यह व्यवहार पसन्द नही था। वह उसे आगे चलने पर विवश कर रही थी। बहुरूपिया बादल मचल गया और उसे प्रसन्न करने के लिए झट एक सुन्दर भवन का रूप धारण कर लिया। रूही उसे विस्मय और आश्चर्य मे भरी देखती रही, जैसे वह उसकी अपनी रचना हो। उसकी अपनी कल्पना ने ही यह सुन्दर भवन निर्माण किया हो। इखलाक और वह दोनो ही बाहो मे बाहे डाले उसकी ओर बढते जा रहे हो, आकाश मे अटका और चादनी मे नहाया हुआ यह सुन्दर भवन ताजमहल से कही सुन्दर था।

फिर उसे ताजमहल से सम्बन्धित यह बात याद हो आई कि एक अंग्रेज स्त्री ने अपने पति से कहा था कि अगर वह उसकी कब्र पर ताज-महल बना सके तो वह तत्क्षण मरने को तैयार है। अहम्मय भावना की

अंधी अभिलाषा ! वह नारी बड़ी विचित्र थी, जिसने जीवन पर ताजमहल को तरजीह दी थी। शायद उसके प्रेम-स्वप्न अधूरे रहे हों और वह मर कर उनकी पूर्ति चाहती हो। लेकिन रूही को यह सौदा स्वीकार नहीं था। उसे जीवन से प्रेम था, फूलों और गीतों से प्रेम था और वह कल्पना की निर्माण-शक्ति से लाखों ताजमहल निर्माण कर सकती थी— सुहाने और सुन्दर ताजमहल !

26

चूज़ा

अशोक, नारायण, राजेन्द्र, इखलाक, मनी, बूटासिंह और ताया दफ्तर में बैठे थे। दिसम्बर का महीना था और तेज हवा चल रही थी, इसलिए दिन के दो बजे भी काफी सर्दी थी। वे दीवार से सटे चटाई पर बैठे थे। तीन-चार आदमियों ने एक कम्बल घुटनों तक ओढ़ रखा था। अशोक ने एक वास्केट पहनी हुई थी, जिसकी आस्तीनें पूरी थी और गला बन्द था। वास्केट चमड़े की थी और उसके सुगठित शरीर पर फिट आती थी। ऐसी वास्केटें पहनने का रिवाज नहीं था और कुछ मित्रों ने उसे पहली बार यह वास्केट पहने हुए देखा था, इसलिए उनकी दृष्टि में कौतूहल था। अशोक उनकी दृष्टि से और सर्दी से अनभिज्ञ और सुरक्षित मस्त बैठा था, जैसे वह टुंड्रा का रहने वाला हो और समूर का लिबास पहनने का आदी हो।

"कामरेड यह वास्केट तो खूब है!" राजेन्द्र बोला।

"हां खूब है। सर्दी बिल्कुल नहीं लगती।" अशोक ने उत्तर दिया और चुप हो गया। लेकिन तनिक रुक कर फिर बोला "दरअसल इस किस्म की वास्केटें अमीर लोगों के आवारा और ओबाश लड़के पहनते हैं। यह एक मित्र के पास पड़ी थी, वह पहनने से कतराता था। मैंने कहा, लाओ इसे मैं पहन लूं, सर्दी से तो बचाव होगा।"

"इसके अलावा आवारा और ओबाश सही, लोग अमीर तो समझेंगे।"

नारायण बोला और सब हंस पड़े। बस अब क्या था चुहलबाज़ी शुरू हो गई। बूटासिंह जो राजनीतिक मामलों पर बहस के समय प्रायः चुप रहता। ऐसे अवसरों पर चहक उठता था। उसने अत्यंत गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा—

"कामरेड अशोक, हम बड़े इनकलाबी बनते हैं और बड़े-बड़े मनसूबे बांधते हैं, लेकिन कामरेड गनी का एक मामूली काम है, वह नहीं कर सकते।"

"क्या ?" अशोक ने पूछा।

गनी चकित और स्तब्ध बूटासिंह का मुंह ताकने लगा। उसे खुद मालूम नहीं था कि कामरेड अशोक से किस बात की सिफारिश की जा रही है।

"बता दूं न, कामरेड गनी ?" बूटासिंह ने दरियाफ्त किया और फिर आप ही आप हंस पड़ा। वह हंसता था तो जैसे हंसी का फव्वारा फूट पड़ता था। हंसी के मधुर शीतल छींटे चारों ओर फैल जाते थे, और उसके नकली दांत दिखाई देने लगते थे। सबको उत्सुक देखकर वह बोला—"सामने की कोठी में दो चोटियों वाली जो कांता नाम की लड़की रहती है, मैंने कई बार देखा है कि वह छत पर खड़ी कामरेड गनी को प्यार भरी दृष्टि से देखा करती है और गनी भी उसकी ओर ऐसे देखता है, जैसे उसे अपने दिल की रानी बना लेना चाहता हो। अगर हम कोशिश करें तो इन दोनों का मेल हो सकता है ? आखिर कामरेड गनी अच्छा तकड़ा खूबसूरत जवान है।"

सब की प्रश्न-सूचक निगाहें गनी के चेहरे पर पड़ गईं। वह गरीब झेंप गया। जबान से तो कुछ नहीं कह सका; लेकिन 'नहीं' में अंगुली हिलाई और कानों पर हाथ धरे और वह घुटने बाजुओं में लेकर दीवार की ओर सुकड़ने लगा। लेकिन बूटासिंह ने उसका कंधा पकड़कर हिलाया और आगे धकेल कर कहा—"कामरेड ! यों शरमाया नहीं करते। आंख लड़ गई, सो लड़ गई। साफ-साफ कहो। आखिर मुहब्बत भी तो मर्दों ही का शेवा है।"

'बताओ, कामरेड ! कोई हर्ज नहीं। हम भी तुम्हारी मदद करेंगे। अशोक कह रहा था और मुस्कराते हुए गनी की ओर देख रहा था।

"काम बन जायेगा न ?" बूटासिंह ने पूछा।

"क्यों नहीं, हम कोशिश करेंगे।"

"बस फिर आप कोशिश कीजिए। गनी तैयार है, मैं जिम्मा लेता हूं।"

गनी ने फिर 'नहीं' में अंगुली हिलाई। वह खुद मजाक का विषय बना हुआ था, लेकिन हंस रहा था और उसकी हंसी बूटासिंह से कम स्मृद्ध और सानंद नहीं थी।

'देखिए साहब, बेचारे के साथ ज्यादती न कीजिए।" नारायण ने वकालत की "हकीकत यह है कि वह मुहब्बत के बावजूद शादी के झंझट में फंसना नहीं चाहता। उसने जिन्दगी इनकलाब के लिए वक्फ कर दी है। मरने के बाद जन्नत में हूरें मिलेंगी। वहां ऐश भी करेगा और मुहब्बत भी।"

'लेकिन इसे जन्नत में घुसने कौन देगा ? नमाज पढ़ता है न रोज़े रखता है।" इखलाक बोला।

'न सही नमाज और रोज़े" नारायण ने उत्तर दिया "उसके नजदीक आज़ादी के लिए जद्दोजहद करना ही सबसे बड़ी अबादत है।"

'यह बात यह बात !" गनी ने गर्व से सिर हिलाया और आंखें उल्लास से चमक उठीं।

'अच्छा गनी, बहुत दिन हुए। आज एक नाच हो जाये।" अशोक ने विषय बदला।

गनी नाचने को तैयार था, पर कुछ झेंप रहा था। बूटासिंह और गोपाल ने जो उसके निकट बैठे थे, सहारा देकर उसे खड़ा किया। और उसने हाथ नीकर की जेबों से निकालकर बाहें छाती पर कसते हुए कहा—

'पहले फौजी नाच।"

"बारी बारी सारे नाच। बहुत-सी आवाजें एक साथ आईं।

गनी कई नाच जानता था और उसने हर नाच का अलग नाम रख छोड़ा था।

पहले फौजी नाच शुरू हुआ। छाती पर जकड़े हुए हाथ नीचे आ गए मुट्ठियां भिच गईं, सीना तन गया, समस्त शरीर में स्फूर्ति की तरंग दौड़ गई, और चेहरा कठोर और गम्भीर पड़ गया। उसने विभिन्न हाव-भाव से आंखों के इशारे से और पांव की जुंबिश से जो वातावरण पैदा किया, उसमें जोश, जवानी और वीरता मचल रही थी। लगता था कि दो फौजें आमने-सामने खड़ी हैं, लोहे से लोहा टकरा रहा है और एक बांका सिपाही विरोधी सफों को चीरता और लड़ता हुआ आगे बढ़ रहा है और इधर-उधर उत्साहवर्धक दृष्टि डालकर अपने साथियों को भी आगे बढ़ने की प्ररणा दे रहा है। जितनी देर गनी नाचता और थिरकता रहा, कमरे में नितांत निस्तब्धता रही, जैसे लोगों ने सांस तक रोक ली हो। अलबत्ता जब नाच बन्द हुआ तो बहुत सी ध्वनियां एक साथ गूंज उठीं—"शाबाश, बहादुर सिपाही बढ़े चलो!"

सब लोग एक दूसरे की ओर देख रहे थे और मुस्करा रहे थे।

इसके बाद गनी ने टर्की डांस, बंगाली डांस, रूसी डांस और अन्त में पैरिस की लेडियों का डांस दिखाया। गनी को इनमें से किसी भी देश के नाच का कुछ ज्ञान नहीं था। उसने अपने मन में योंही नाम रख लिए थे। पैरिस की लेडियों का डांस बहुत दिलचस्प था। गनी का ख्याल था कि इस शहर में साम्राजी सभ्यता पलती है और पैरिस दुनिया भर की अय्याशी का केन्द्र है, चुनांचे उसने अपने नाच में इस छिछली और थोथी सभ्यता का मजाक उड़ाया था।

नाच खतम हुआ तो उसे अपनी प्रिय कविता "टोडी" सुनाने को कहा गया। गनी इस समय मूड में था, इसलिए हर एक फरमायश मानने को तैयार था। उसने झट कविता सुनाना शुरू की। कामरेड यह कविता कई बार सुन चुके थे; लेकिन सुनाने का ढंग और कविता की विशेषता यह थी कि उसे जब भी सुनते थे, हंसते-हंसते पेट में बल पड़ जाते थे। इस बार भी गनी सुना रहा था और वे हंसी से लोट-पोट हुए जा रहे थे।

"वह बन्द तो सुनाया ही नही।" गनी ने कविता खत्म की तो बूटासिह ने टोका।

"कौन सा ?" गनी जानते-बूझते अनजान बन गया।

"वही, दो दो वाला।" बूटासिह ने दो अगुलिया दिखाई।

"सुना दू ?" गनी ने अशोक से इजाजत चाही।

"जरूर।"

गनी सब पर एक नजर डालकर, मुस्कराया और फिर होठो पर हाथ फेर कर गाने लगा —

आप ता सौंदे दो दो—असी सौंदे कल्ले।

एन्हा टोडिया ने केहडे पत्तन मल्ले ?

सब लोग हसने लगे और गनी भी हसता हुआ दीवार के साथ अपनी जगह पर जा बैठा।

उसी समय मदन ने कमरे मे प्रवेश किया। वह शान से अशोक के पहलू मे आ बैठा और अपनी दाई बाह बेतकल्लुफी से उसके कधे पर रख दी। अगर उसके व्यवहार मे आत्म-प्रदर्शन और विडम्बना न होती, शायद कोई इस साधारण बात की परवाह न करता। लेकिन वह अपने रवैये से सदैव एक घृणास्पद बडप्पन व्यक्त करता था, जिसमे पिछले दिनो से विशेष वृद्धि हो गई थी, क्योकि वह किले मे दो महीने कैद रह आया था।

गिरफ्तारी का कारण यह था कि वह खैरातीराम से अपनी इन्कलाबी सरगर्मियो का जिक्र बढा-चढा कर किया करता था। पुलिस उससे पार्टी की गुप्त बातें और "लाल ढढोरे" के बारे पूछना चाहती थी। मगर वह क्या बताता ? उसे खुद मालूम नही था। वह सिर्फ डीग मारने का अपराधी था। ताया चेतसिह को खैरातीराम की लिखी हुई जो रिपोर्ट हाथ लगी थी, उसमे मदन के सम्बन्ध मे बहुत सी बातें लिखी हुई थी और उसे बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति सिद्ध किया गया था। उदाहरण के लिए मीटिंग मे किसी ने पूछा था कि जर्मनी और ब्रिटेन मे युद्ध छिडा तो हमारा रवैया क्या होगा ? अशोक ने उत्तर दिया था कि अभी कुछ फैसला नही हो सकता, युद्ध छिडने पर परिस्थिति के अनुसार हम अपनी नीति निर्धारित करेंगे।

बात इससे आगे नहीं बढ़ी। लेकिन रिपोर्ट में दर्ज था कि मदन अशोक से सहमत नहीं था। उसका मत था कि जब हम अहिंसा के सिद्धांत को नहीं मानते तो हमें अभी से संगठन और सशस्त्र विद्रोह की तैयारी करनी चाहिए। मैं तो इस प्रोग्राम के लिए कमर बांध चुका हूं। और आज ही से तैयारी शुरू कर रहा हूं। जाहिर था कि खुद मदन ने खैरातीराम से जो बातें की थीं उन्हीं के आधार पर यह रिपोर्ट लिखी गई थी। इस मीटिंग में उर्मिला भी शामिल हुई थी और रिपोर्ट में उनका नाम 'सुन्दरी' दर्ज था।

"खूब हंस रहे हो, किसकी गत बन रही है ?" मदन ने अशोक के कंधे पर अपने शरीर का बोझ डालते हुए पूछा।

"गनी के बाद अब मदन का नाच हो। वह भी बहुत अच्छा नाचते हैं।"

लोग मदन के व्यक्तित्व में दिलचस्पी ले रहे थे और निगाहों ही निगाहों में उसकी आलोचना कर रहे थे; इसलिए गोपाल की बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। मदन को अवसर मिला और उसने गोपाल पर व्यंग किया—

"भले मानस कोई अच्छी बात नहीं कह सकते, तो मुंह बंद ही रखा करो। मुंह बंद रखने से मूर्खता छिपी रहेगी।"

लोग मुस्कराये क्योंकि मदन कुछ चिढ़ गया था; पर क्रोध छिपाये रखने के लिए बड़ी गम्भीरता से कह रहा था, और दोनों हाथ विचित्र ढंग से हिला रहा था। लेकिन गोपाल यह समझा कि मेरा मजाक तो हवा में उड़ गया और मदन की हवा बंध गई। वह अपना असर कायम करने के लिए घूंसा तानकर बोला—

"मिस्टर मदन, मैं डंके की चोट कहता हूं। एक दिन आयेगा, जब मेरी आवाज हिमालय की चोटी से रासकुमारी तक गूंज उठेगी और हिंदुस्तान का बच्चा-बच्चा उसे ध्यान से सुनेगा।

और लोग चुप रहे; लेकिन मदन ने कहकहा बुलंद किया।

"क्या कहने हैं इस शान के ! दूसरे बाल गंगाधर तिलक तो बस आप

ही है। महात्मा गाधी से कहो कि तुम्हें अपना जानशीन बनायें ताकि हिन्दुस्तान के लोग जल्दी से जल्दी तुम्हारे व्यक्तित्व को पहचान लें।" और मदन ने नाक सिकोड कर कहा, 'यह मुहं और मसूर की दाल।"

गोपाल के रमणी जैसे कोमल होठ सुकड़ गये और चेहरा फीका पड गया। और वह अप्रतिभ सा इधर-उधर देखने लगा।

इस असमजस मे नारायण उसके आडे आया, बोला, "वह तिलक और गाधी न हो, तो भी लोग उसकी बात सुन सकते हैं।'

अब मदन को भी लगा कि उसने कठोर बात कह दी है, जैसे कोई बच्चे को झिड़कने के बाद पुचकारना है, वह गोपाल को पुचकारते हुए बोला—' बुरा मानने की बात नही गोपाल ! मैंने तो महज मजाक किया था।"

एक मिनट मौन रहा। मदन फिर बोला— इस समय दर्शन या इतिहास की कोई गूढ समस्या सामने नहीं है। मनोरंजन और गप शप हो रहा है, मैं अपने जीवन की एक दिलचस्प घटना सुनाता हू।" उसने अशोक के कधे से बाह हटा ली और दोनो हाथ घुटनो पर रखकर कहना शुरू किया—

'हमारे कालेज मे एक बगाली प्रोफेसर था, बडा हसमुख, बडा ही नेक। वह हमे अग्रेजी पढाता था। एक दफा निबध का घटा था। एक लडके ने *बहाना तराशा कि मैं कापी भूल आया हू। प्रोफेसर बोला—जो लडका* निबध लिखकर नही लाता, वही बहाना करता है। मगर जिस दिन हमारा मित्र मिस्टर मदन निबध नही लिखेगा, वह बहाना भी नया बनायेगा।"

"इसका मतलब है कि प्रोफेसर भी आपकी योग्यता और प्रतिभा का लोहा मानते थे।" नारायण ने दाद दी।

"इसे आप योग्यता का लोहा कहे, तो मरे लिए गर्व की बात है।" मदन ने विनीत भाव से कहा, "वरना मैंने तो यो ही एक घटना बयान की है।'

वह आप ही हसा।

'*मिस्टर मदन, जरा अपने किले की दास्तान तो सुनाइए।" राजेन्द्र*

ने बढ़ावा दिया।

"हम इनकलाबियों के साथ किले में जो सुलूक होता है, हर राजनीतिक कार्यकर्त्ता के लिए उसकी जानकारी बहुत जरूरी है।" मदन ने शरीर को ऊपर खींचते हुए कहा, "यह बताने के लिए कि वहां क्या-क्या कष्ट और यातनायें दी जाती हैं, मैं एक पुस्तक लिख रहा हूं।"

"कम-से-कम इतना तो बता दीजिए कि वे जब आपसे भेद मालूम करने लगे तो आपने क्या उत्तर दिया।"

"साफ कह दिया कि मैं एक पैदायशी इनकलाबी हूं। मुझसे किसी प्रकार की आशा मत रखो। सब बेकार है।"

"बस, फिर उन्होंने कुछ नहीं कहा ?"

"हां, उन्होंने समझ लिया कि यह वाकई इनकलाबी है, पत्थर से पानी नहीं निकल सकता।"

"सुनिए साहबान !" नारायण ने ऊंची आवाज में कहा और हाथ ऊपर उठाया, जैसे चलती बस को रुकने का संकेत कर रहा हो। "चूंकि दर्शन और इतिहास की कोई गूढ़ समस्या सामने नहीं है, मनोरंजन और गप-शप हो रही है, मैं आप लोगों को एक दिलचस्प किस्सा सुनाता हूं।"

"अपने जीवन का।"

"मैं घटना नहीं किस्सा सुनाने लगा हूं।"

"अच्छा सुनाइए।"

नारायण ने इधर-उधर देखकर खांसा और गला साफ करके कहना शुरू किया—"एक शिकारी था। वह बंदूक कंधे पर रखकर घर से निकला और जंगल में पहुंचा। आगे से एक पहाड़ी मिला। उसने पूछा—सुनाओ मियां, किधर से आये हो और क्या इरादे हैं ?" वह बंदूक पर हाथ रखकर झट बोला—"देखते नहीं शिकारी हूं— शिकार खेलने घर से निकला हूं और इरादा यह है कि शिकार भी शेर का करूंगा। पहाड़ी ने उसे बताया कि अभी-अभी एक शेर इधर को गया है आप चाहें तो चंद कदम आगे चलकर उसे घेर सकते हैं। शिकारी ने शान में कहा कि जो डरकर भाग गया, उसका पीछा क्या करेंगे। हम अपने घर चलते हैं।"

लोग मुस्कराये।

"बस ?" मदन ने पूछा।

"जी हा।'

"आखिर इसका मतलब क्या हुआ ?"

"बहुत खूब, आप इसका मतलब ही नही समझे!" नारायण मुस्कराया "आखिर इसका मतलब यह है कि जिस तरह पैदायशी इनकलाबी होते हैं, उसी तरह पैदायशी शिकारी होते है। यह पैदायशी शिकारी था।"

अब के गोपाल की बारी थी। वह ठहाका मारकर हसा। दूसरे लोग भी हस रहे थे। मदन को अपनी ही बातो से मालूम हो चुका था कि उसने कुछ भी नही छिपाया पुलिस को नब्बे पृष्ठ का बयान लिखवाया है।

'कामरेड नारायण ? तुम बात करने का ढग सीखो। हर किसी क मुह आते हो। सोचो, मेरी तुम्हारी क्या बराबरी है ?"

"कुछ नही।" नारायण ने उसी अदाज से कहा, "तुम वाकई पैदायशी इनकलाबी हो। हर एक बच्चा पैदायश से इनकलाबी होता है। वह रीति-रिवाज और शिष्टाचार को न समझता है और न मानता है। तुम्हें देखकर एक ऐसा बच्चा सामने आ जाता है, जिसकी आखो मे डीठ हो और गालो पर नाक की रीठ पुती हो।"

नारायण ने अतिम शब्द इस नाटकीय ढग से कहे कि सुनने वालो के सामने सचमुच एक बच्चे का चित्र उभर आया और वे खिलखिलाकर हसने लगे।

"पचो की राय हो तो पैदायशी इनकलाबी की एक बात मैं भी सुना दू।' ताया चेतसिह ने गर्दन आगे निकालकर धीमे स्वर म कहा। वह अब तक चुप बैठा था। सब जानते थे कि उसका मजाक बहुत तीखा होता है, इसलिए ध्यान से सुनने लगे। बोला 'मुर्गी का चूजा देखा है, चूजा!" ताया ने हाथ से चूजे की शक्ल बनाई और मुस्कराते हुए कहा—"मेरा ख्याल है कि वह सबसे बडा इनकलाबी होता है क्योकि वह अडे स निकलते ही दौडने लगता है।"

खूब ठहाका पडा। कहकहे कई मिनट तक कमरे मे गूजते रहे। गोपाल

नारायण से भी अधिक प्रसन्न था।

हंसी-मजाक काफी हो चुका था अब सबने अशोक से फरमायश की कि वह "शहीद का प्रण" कविता सुनाये। अशोक कभी-कभी यह कविता सुनाया करता था, आज भी सुनाने लगा—

हुकम आखिर कतलगाह में जब सुनाया जायेगा।
जब मुझे फांसी के तख्ते पर चढ़ाया जायेगा॥
जब यकायक तख्ता-ए खूनी हटाया जायेगा।
ऐ वतन उस वक्त भी मैं तेरे नग़मे गाऊंगा॥

उसके स्वर मे माधुर्य नही था; लेकिन कुछ ऐसी बात थी कि सब मुग्ध होकर सुन रहे थे और वह गा रहा था—

वादाकश हूं, जहर की तलखी से क्यों घबराऊंगा।
अहद करता हूं कि मैं तुझ पर फिदा हो जाऊंगा॥

वातावरण गम्भीर हो गया था और सब लोग उन शहीदों के चित्रों की ओर देख रहे थे, जो अपने इस अहद पर—इस प्रण पर कुर्बान हो चुके थे।

27

नाखून

लोता क चले जाने के बाद अशोक अपने कमरे मे जाकर पढने लगा। म्यूनिख की सधि के पश्चात अतर्राष्ट्रीय राजनीति मे बहुत बडी उलझन पैदा हो गई थी। कोई उसे हिटलर और फासिस्तवाद की विजय बता रहा था और कोई उसे ब्रिटिश प्रधानमन्त्री चैम्बरलेन की दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता बता कर यह सिद्ध कर रहा था कि उसने दुनिया को एक भयानक युद्ध से बचा लिया है। बहस तीन महीने से चल रही थी, लेकिन 'विजय और दूरदर्शिता' की सीमा से आगे नही बढ सकी थी। इस ओर बिल्कुल ध्यान नही दिया जा रहा था कि आगामी घटनाओ की दिशा क्या होगी? जब शस्त्र बनाने की दौड मे एक राष्ट्र दूसरे को मात देने का यत्न कर रहा है तो युद्ध कब तक रुकेगा? अग्रेजी के स्थानीय पत्र 'ट्रीब्यून' म 'म्यूनिख की सधि और उसके परिणाम' शीर्षक से एक लेख माला छप रही थी, जो जगदीश ने लिखी थी। मार्क्सवादी उसे गलत समझते थे। अशोक इसके सबध मे जगदीश से बात करना चाहता था, इसलिए उसे ध्यान से पढ रहा था।

'अजीब आदमी है।'

अशोक ने नजर उठाकर ऊपर देखा। नारायण ने दरवाजे मे प्रवेश करते हुए यह शब्द कहे थे। वह दूसरे कमरे मे बैठा ऊब गया था और आप ही आप बडबडाता हुआ उठ कर इधर चला आया था, अशोक ने देखते ही उसकी मनोदशा को भाप लिया और उसके चेहरे पर एक गहरी दृष्टि

नारायण से भी अधिक प्रसन्न था।

हंसी-मजाक काफी हो चुका था अब सबने अशोक से फरमायश की कि वह "शहीद का प्रण" कविता सुनाये। अशोक कभी-कभी यह कविता सुनाया करता था, आज भी सुनाने लगा—

हुकम आखिर कतलगाह में जब सुनाया जायेगा।
जब मुझे फांसी के तख्ते पर चढ़ाया जायेगा॥
जब यकायक तख्ता-ए खूनी हटाया जायेगा।
ऐ वतन उस वक्त भी मैं तेरे नगमे गाऊंगा॥

उसके स्वर मे माधुर्य नहीं था; लेकिन कुछ ऐसी बात थी कि सब मुग्ध होकर सुन रहे थे और वह गा रहा था—

वादाकश हूं, जहर की तलखी से क्यों घबराऊंगा।
अहद करता हूं कि मैं तुझ पर फिदा हो जाऊंगा॥

वातावरण गम्भीर हो गया था और सब लोग उन शहीदों के चित्रों की ओर देख रहे थे, जो अपने इस अहद पर—इस प्रण पर कुर्बान हो चुके थे।

27

नाखून

लोगों के चले जाने के बाद अशोक अपने कमरे में जाकर पढ़ने लगा। म्यूनिख की संधि के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बहुत बड़ी उलझन पैदा हो गई थी। कोई उसे हिटलर और फासिस्तवाद की विजय बता रहा था और कोई उसे ब्रिटिश प्रधानमन्त्री चेम्बरलेन की दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता बता कर यह सिद्ध कर रहा था कि उसने दुनिया को एक भयानक युद्ध से बचा लिया है। बहस तीन महीने से चल रही थी, लेकिन 'विजय' और 'दूरदर्शिता' की सीमा से आगे नहीं बढ़ सकी थी। इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जा रहा था कि आगामी घटनाओं की दिशा क्या होगी? जब शस्त्र बनाने की दौड़ में एक राष्ट्र दूसरे को मात देने का यत्न कर रहा है तो युद्ध कब तक रुकेगा? अंग्रेजी के स्थानीय पत्र 'ट्रीब्यून' में 'म्यूनिख की संधि और उसके परिणाम' शीर्षक से एक लेख माला छप रही थी, जो जगदीश ने लिखी थी। मार्क्सवादी उसे गलत समझते थे। अशोक इसके संबंध में जगदीश से बात करना चाहता था, इसलिए उसे ध्यान से पढ़ रहा था।

"अजीब आदमी है।"

अशोक ने नजर उठाकर ऊपर देखा। नारायण ने दरवाजे में प्रवेश करते हुए यह शब्द कहे थे। वह दूसरे कमरे में बैठा ऊब गया था और आप ही आप बड़बड़ाता हुआ उठ कर इधर चला आया था, अशोक ने देखते ही उसकी मनोदशा को भाप लिया और उसके चेहरे पर एक गहरी दृष्टि

डालकर पूछा—

"कौन ?"

"मदन। और कौन ? बड़ा इनकलाबी बना फिरता है।"

उसके शब्दों में कटुता भरी थी और वह निचला होंठ चबाता हुआ चारपाई पर जा बैठा। अशोक कुछ बोला नहीं, उसकी ओर देखता रहा। कटुता ने क्रोध का रूप धारण कर लिया था और वह तिलमिला रहा था। अशोक भी उठकर उसके समीप जा बैठा और प्यार से उसकी कमर पर हाथ रख दिया।

"मैं उससे घृणा करता हूं और ऐसे हर व्यक्ति से घृणा करना उचित समझता हूं।"

नारायण ने जल्दी-जल्दी कहा और अशोक की आंखों में आंखें डाल दी। उसकी आंखों में घबराहट थी, जैसे वह अशोक का उत्तर सुनने से डर रहा हो और स्वयं अपने आप से भयभीत हो। अशोक ने गहरा झांककर उसके मन की थाह ली और फिर कोमल और स्नेहसिक्त स्वर में कहा—

"घृणा करते हो, सो तो ठीक है; पर इतना परेशान क्यों हो ?"

नारायण ने आंखें झुका ली। अशोक का प्रश्न वातावरण में गूंज रहा था और नारायण चुप बैठा सोच रहा था, उसके भीतर हलचल मची थी। कुछ क्षण ऐसे ही मौन बीते। अशोक भी चुप था। उसने फिर गर्दन ऊपर उठाई और अशोक की ओर देखा। इस बार उसकी आंखों में घबराहट नहीं, स्थिरता थी। लगता था कि उसने मन ही मन में कोई असाधारण निश्चय किया है। उसके होंठ हिले और उनसे आवाज गोली के सदृश निकली—

"मैं परेशान इसलिए हूं कि मैंने गलती की है।"

"मैंने गलती की है।" पर उसने अधिक जोर दिया और उसकी दृष्टि शून्य में भटक गई, जैसे और कोई बात कहने को शेष न रह गई हो।

रेशम की डोरी को भी अगर अधिक कसा जाये तो खराश पड़ने की सम्भावना रहती है। नारायण की यह दशा उस महफिल की प्रतिक्रिया थी, जो थोड़ी देर पहले विसर्जित हुई थी। एकांत में उसने सोचना शुरू

किया तो उसे लगा, कि उसने स्वय अपने व्यक्तित्व को आहत किया है। वह अतर्द्वंद्व से तडप उठा। अपने व्यवहार को उचित ठहराने के लिए दलीलें जुटाई; लेकिन अन्त करण नही मानता था, हरेक दलील को रद्द करके कह उठता था —"तुमने गलती की है।"

अशोक नारायण को भली-भाति समभता था और शायद पहली ही मुलाकात मे समझ लिया था।

एक रात जब वह बाहर से लौट कर आया, तो निचले कमरे मे जिसमे अब पार्वती रहती थी, बत्ती जल रही थी। भीतर भाक कर देखा तो नारायण बैठा पढ रहा था।

'तुम कौन हो?' अशोक ने उससे दरियाफ्त किया।

'देख लीजिए सामने खडा हू।" नारायण मुस्कराया।

अशोक ने उसे सिर से पाव तक देखा। उसके सामने पतले-दुबले शरीर का एक नौजवान खडा था। उम्र इक्कीस-बाईस वर्ष की होगी। उसने सादा और सक्षिप्त वस्त्र पहने हुए थे, चेहरे पर बनावट और विडम्बना का नाम तक नही था। आखो से प्रतिभा और आत्मविश्वास का आभास होता था।

"मेरा मतलब है कि तुम यहा कैसे आये हो?" अशोक ने दूसरा प्रश्न किया।

नारायण इस समय कालेज मे पढता था। होस्टेल मे रहने का सामर्थ्य नही था। जहा कही सस्ता कमरा मिल जाता, जाकर रहने लगता। यहा भी वह कमरे की तलाश म आया था। मैनेजर बूटासिह ने उसे चार-पाच दिन के लिए इस कमरे मे ठहरा कर वायदा किया था कि उसे दो रुपये महीना तक का कमरा मिल जायेगा।

उसने यह कहानी सक्षेप मे कह सुनाई और फिर कहा—"दुनिया मे रहने के लिए सघर्ष कर रहा हू; मगर कही स्थान नही मिलता।"

अशोक ने एक क्षण उसकी ओर देखा और फिर धीरे से कहा —

"तुम इसी कमरे मे इतमीनान से रहो। किराये की चिन्ता न करो। कोई तकलीफ हो तो मुझे कहना।"

अशोक ने सस्नेह उसका कंधा थपथपाया।

उस दिन से नारायण यहीं रह रहा था, किसी दूसरी जगह जाने की जरूरत नहीं पड़ी। वह कालेज के जमाने ही में पार्टी का सक्रिय सदस्य बन गया था। उसे अब मालूम हो चुका था कि सिर्फ मैं ही नहीं, लाखों करोड़ों इन्सान ऐसे हैं, जिन्हें इस दुनिया में रहने के लिए स्थान नहीं मिलता। उन सब को साथ लेकर एक सामूहिक संघर्ष द्वारा इस दुनिया को, और इस जर्जर सामाजिक व्यवस्था को बदलने की जरूरत है, तभी इस समस्या का हल सम्भव है।

अशोक जानता था कि नारायण अक्खड़ और चिड़चिड़ा है, किसी को तनिक बनते देखता है तो झट बिगड़ जाता है। वह खुद ईमानदार है और जो दूसरे लोग राजनीति और देश-सेवा का काम करते है, उन्हें भी ईमानदार देखना चाहता है। जब उनका आचरण इस मनोगत भावना के विपरीत पाता है तो उसे रंज होता है। राजनीति के अतिरिक्त साहित्य में भी उसकी दिलचस्पी है और वह खुद भी कहानियां और कवितायें लिखता है। अपना मानसिक धरातल ऊंचा करने के लिए पढ़ता और मनन करता है। उसे उन तथाकथित बुद्धिजीवियों से चिढ़ है, जो बातें बहुत बघारते हैं; लेकिन उनका मानसिक धरातल जनसाधारण से भी नीचा है।

धीरे-धीरे उसने यह भी समझ लिया कि चिढ़ना और झुंझलाना व्यर्थ है, जब यह समाज बदलेगा, तभी इन बातों का इलाज होगा, इसलिए वह सब कुछ देखते हुए भी दुखी नहीं होता था। मगर आज की घटना ने उसे झंझोड़ दिया था और वह क्रोध से तिलमिला रहा था।

"मैं देख रहा हूं, कि तुम मे फिर कटुता भरती जा रही है।"

अशोक बोला, "गलती हो तो आदमी उसका सुधार करे, दुखी होना व्यर्थ है।"

नारायण चौंका! जैसे मुंह के चंद छींटे हवा मे फैले हुए गर्द और गुबार को धो डालते है और दूर की चीजें स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं, उसी तरह अशोक के शब्दों ने उसकी दृष्टि के आगे से गुबार हटा दिया और वह दूर तक देखने लगा। उसकी यह झुंझलाहट सिर्फ मदन के कारण

नही है, इसकी जडें गहरी थी और इसके दूसरे भी कारण थे।

प्रदर्शनी मे प्रह्लाद से जो झगडा हुआ था, उससे दोनो मे मनमुटाव पैदा हो गया। प्रह्लाद से उसकी पहली भेंट पुस्तकालय मे हुई थी और नारायण ने देखा था कि उसके मन मे ज्ञान और सत्य की भूख है। जो बात समझ मे आ जाये, उसे ग्रहण करने के लिए वह तत्पर रहता है और बहस के लिए बहस नही करता। इसी से वे दोनो मित्र बन गये थे। वे दोनों इकट्ठे पढने और विचार-विमर्श करते थे। लेकिन प्रह्लाद के उस दिन के रवैये से नारायण को आघात लगा। उसने एक ऐसी बात को गलत ढग से पेश किया, जिसे वह ठीक मान चुका था।

"सिर्फ दफ्तर का काम कर लेना काफी नही था।" उसे चुप देखकर अशोक फिर बोला, "तुम्हें किसी महाज पर भी जाना चाहिए। जनता के साथ सीधे सम्पर्क मे रहोगे, किसानो के जलसे और मजदूरो के प्रदर्शन देखोगे, तो सघर्ष मे तुम्हारा विश्वास बढेगा और तुम्हे मालूम होगा कि कुछ व्यक्तिवादी और बुकराती प्रवृत्ति के लोग इनकलाब को नही रोक सकते और दुनिया का विकास उनपर निर्भर नही है। इस तरह तुम्हारी कटुता दूर होगी, सहृदयता और उदारता आयेगी और तुम बेकार बातो पर दुखी होने के बजाये मुस्करा सकोगे।"

"मैं जानता हू कि मदन फिलस्ताईन और व्यक्तिवादी है और मैं उसकी बात से तनिक भी दुखी नही होता। नारायण ने गम्भीर और शात स्वर मे कहा, "लेकिन जिस आदमी पर हमारा भरोसा हो, अगर वह भी सही बात को तोड-मरोड कर कहे, तो दुख होता है।"

"ठीक है।" अशोक ने उसकी बात का समर्थन किया और पूछा—"यह तुम किसकी बात कह रहे हो?"

"प्रह्लाद की।" नारायण की आखो मे क्षोभ और ग्लानी थी, जिसे छिपाने का प्रयत्न करते हुए आगे कहा, "उसने भी बात का बतगड बनाया और खाहमखाह झगडा खडा किया था।"

प्रह्लाद के बारे मे नारायण और अशोक मे प्रायः गुफ्तगू होती थी और वे समझते थे कि वह दिन-दिन पार्टी के निकट आ रहा है। प्रदर्शनी

के बाद जब वह इतने दिन इधर नहीं आया, तो कारण पूछने पर नारायण से वह घटना मालूम हुई। अशोक सुनकर चुप हो रहा। उसने किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी नहीं की। वह उनके आपसी सम्बन्ध से परिचित था और उसे विश्वास था कि वे एक दिन आप ही इस मनमुटाव को दूर कर लेंगे। जब दो व्यक्ति मित्र-भाव से एक दूसरे के निकट आते हैं, तो उनमें एक ऊपरी लगाव के अतिरिक्त एक आंतरिक सम्बन्ध भी स्थापित हो जाता है, जिसे तोड़ देना सहज नहीं है और अशोक अपनी आंखों देख रहा था कि नारायण की आत्मा प्रह्लाद से मिलने को सटपटा रही है। अपनी राय प्रकट करने का यह उचित अवसर था, बोला—

"प्रह्लाद का उतना दोष नहीं जितना तुम समझ रहे हो। अगर तुम चुप रहते और बाद में गोपाल के रवैया की निन्दा कर देते, तब उसे अपनी भूल महसूस होती और यह व्यर्थ का झगड़ा टल जाता ·····"

"लेकिन यह क्या ? उसे ऐतराज था गोपाल के रवैया पर और बरस पड़ा उन सिद्धांतों पर जिन्हें वह समझ चुका था और मान चुका था।" नारायण ने अशोक की बात काटी।

"जरूरी नहीं कि जो बात तुम्हारी समझ में आ चुकी है दूसरे भी उसे उतना ही स्पष्ट समझ लें।" अशोक ने मुस्कराते हुए नारायण की ओर देखा और बात जारी रखी, "दुनिया को बदलने के लिए अलादीन का चिराग काम नहीं देता। प्रत्येक व्यक्ति के अपने संस्कार होते हैं, स्वभाव बदलने के लिए उन संस्कारों को बदलना होता है। जिन पुराने संस्कारों के विरुद्ध आदमी बगावत करता है, जरा मौका मिलते ही वे प्रत्याक्रमण करते हैं, बदला लेते हैं और अपनी समस्त शक्ति से उन विचारों को रौंद डालते हैं, जिन्होंने उनका स्थान ग्रहण किया होता है।"

अशोक यह बातें कह रहा था और उसकी अपनी जीवन-यात्रा के विभिन्न चित्र उसके मस्तिष्क में उभर रहे थे। वह कॉलेज छोड़कर असहयोग आंदोलन में शामिल हुआ, आतंकवादी बना, जेल गया और वहां आतंकवादी से मार्क्सवादी बन गया। अब वह कम्यूनिस्ट था और पार्टी अवैध होने के कारण कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी द्वारा काम करता था और देश के

क्रान्तिकारी संघर्ष को आगे बढ़ा रहा था। जड़ता का सर्द हाथ उसकी आत्मा को कभी स्पर्श नहीं कर पाया था।

वह प्रतिक्षण बदलता और आगे बढ़ता रहा था। अब भी बदल रहा था और आगे बढ़ रहा था। मार्क्सवाद और सक्रिय संघर्ष ने उसकी चेतना का विकसित किया था। उसके मन का कमल पूर्णरूप से खिल उठा था और सुगंध फैला रहा था। नारायण इस कमल की सुषमा और सुगंध से भली प्रकार परिचित था। इसलिए वह अशोक की बातें ध्यान से सुन रहा था और उसकी आंखों में उभर रहे चित्र देख रहा था।

'तुम जानते हो कि हमारे इस वर्ग विभाजित समाज में कुछ वर्ग मर रहे हैं और कुछ उभर रहे हैं। जो वर्ग मर रहे हैं, उनकी पुरानी विचार-धारा, पुराना दर्शन और पुरानी संस्कृति भी मर और मिट रही है जो नये वर्ग बन और उभर रहे हैं उनका नया दर्शन, नई विचारधारा और नई संस्कृति भी बन और उभर रही है। यह मरना और मिटना, बनना और उभरना सृष्टि के आदिकाल से होता आया है और होता रहेगा। ऐतिहासिक विकास की इस प्रक्रिया का नाम प्रगति है।" अशोक की मुख मुद्रा सहज और कोमल थी और वह अपनी बात सरल और स्पष्ट शब्दों में कह रहा था। कुछ क्षण चुप रहने के बाद फिर बोला, 'इनकलाब, इनकलाब, चिल्लाते हुए गोली खाकर मर जाना अथवा फांसी पर झूल जाना, इतना कठिन नहीं, जितना कि समय के विकास को समझना और क्षण क्षण उसके साथ बदलना। जो आदमी बदल रहा है, वही प्रगतिशील है। कई बार बदलने की रफ्तार बहुत धीमी होती है। हमारा काम इस रफ्तार को उसकी सारी पेचीदगियों के साथ समझना और उसे तेज करना है।'

नारायण चारपाई से उठ खड़ा हुआ और कमरे में इधर-उधर टहलने लगा, लेकिन अशोक ने अपनी बात जारी रखी—

"तुम प्रह्लाद ही का उदाहरण ले सकते हो। उसके पिता पक्के गांधी-भक्त हैं और वह ऐसे धार्मिक वातावरण में पला बढ़ा है, जिसमें प्राचीनता की पूजा होती है। तनिक सोचो कि उसके लिए पुराने विचारों को छोड़ना और नये विचारों को ग्रहण करना कितना कठिन है। अगर वह बदल रहा

है तो उसकी बड़ी हिम्मत है और हिम्मत को बढ़ाने के लिए हमदर्दी दरकार है। हमारी ज़रा-सी असावधानी से, ज़रा-सी भूल से···"

"ठीक है। मैं समझ गया। मुझसे भूल हुई है, मैं······।"

नारायण बड़बड़ाता हुआ दरवाजे की ओर बढ़ा।

"सुनो तो सही, कहां जा रहे हो?"

"प्रह्लाद के पास। मैंने गलती की है और मैं उसे······" नारायण सीढ़ियां उतर रहा था। अन्तिम वाक्य पांव की चाप में खो गया।

अशोक भी उसके पीछे-पीछे बाहर निकल आया और बरामदे में खड़ा देखने लगा। नारायण के कदम तेज-तेज उठ रहे थे और वृक्षों के सूखे पत्ते जो धरती पर आ गिरे थे, उसके पांव तले कुचले जा रहे थे।

: 28 :

परिधी

लाला देसराज बड़े प्रसन्न थे और ताजा अखबार हर किसी को बड़े चाव से दिखा रहे थे। उसमे यह खबर छपी थी कि इस साल का नोबल प्राइज़ महात्मा गाधी अथवा चैम्बरलेन को दिया जायेगा, क्योकि इन दोनो महापुरुषो ने ससार मे शाति स्थापित करने के लिए महान् कार्य किया है।

वे हर एक मिलने वाले को यह खबर सुनाते और फिर आखो मे उल्लास भरकर मुस्कराते हुए बड़ी गम्भीरता से कहते थे—

"मेरा खयाल है कि चैम्बरलेन का नाम तो वैसे ही लिख दिया है, प्राइज दरअसल गाधी जी को ही मिलेगा।" इसमे उन्हे तनिक भी सन्देह नही था; बात जारी रखते "अब दूसरे देशो ने भी अहिंसा के महत्त्व को समझा है। मैं शर्त बदता हू कि अन्त मे तमाम राष्ट्र गाधीवाद को अपनायेंगे और अपने टैंक, तोपें और गोला-बारूद सब समुद्र मे फेंक देंगे।"

कोई भी आदमी लालाजी के साथ शर्त बदने को तैयार न हुआ, बल्कि जब विरोधी पक्ष ने भी उनकी बातो को ध्यान से सुना, तो उन्हें विश्वास हो गया कि नोबल प्राइज गाधी जी को अवश्य मिलेगा और सारी दुनिया अहिंसा के सिद्धान्त पर चलेगी, इसके बिना गति नही। इस विश्वास के साथ वे जगदीश के घर पहुचे। वह गाधीवाद का सबसे बड़ा विरोधी था और आज लालाजी उसके साथ दो-दो हाथ कर लेना चाहते थे।

जगदीश अपने कमरे मे कुर्सी पर बैठा मिला, टागें मेज पर रखी हुई थी और प्रह्लाद से बातें हो रही थी। बातचीत का विषय शायद यही खबर थी क्योकि जगदीश कह रहा था—

"यह भी प्रचार का ढग है। इगलैंड का साम्राज्यवादी प्रेस चेम्बरलेन को देवता सिद्ध करना चाहता है, गाधी जी का नाम साथ इसलिए जोड़

दिया गया है कि हिन्दुस्तानियों के मन में चैम्बरलेन के प्रति भी वही श्रद्धा उत्पन्न हो, जो गांधी जी के प्रति है।"

लाला देसराज अपनी ही धुन मे मस्त थे। उन्होंने जगदीश की यह उक्ति नही सुनी। बड़ी शान से कुर्सी पर विराजमान हुए और आंखें आधी मीच कर यह बात शुरू की, जो रास्ता भर सोचते आए थे।

"देखिए आपके भौतिकवाद को हमारे आध्यात्मवाद ने पछाड़ दिया है। हम जो बात इतने दिनों से कहते आए हैं, आज उसे पश्चिम ने भी स्वीकार कर लिया है। उन्हें अब मालूम हुआ है कि गांधीवाद और केवल गांधीवाद ही से दुनिया दुःखों से मुक्त हो सकती है।"

"इस विश्व-विजय के उपलक्ष में मिठाई बांटिए और दीपमाला कीजिए।"

"प्राईज मिलने दो, मिठाई भी बंटेगी और दीपमाला भी होगी।"

"दिल के बहलाने को गालिब यह खयाल अच्छा है।" प्रह्लाद बोला।

जगदीश हंसा और प्रह्लाद का हाथ अपने हाथ मे ले लिया।

"आप समझते हैं कि महात्मा जी को नोबल प्राईज नही मिलेगा? और मैं कहता हूं कि अवश्य मिलेगा।"

लालाजी ने अपनी बात ऊंचे और दृढ़ स्वर मे कही।

"शायद न मिले।"

"इसका मतलब है कि शांति स्थापित रखने में आप गांधी जी की सेवाओं को स्वीकार नही करते।"

"सेवा का सवाल बाद में उठेगा, पहले हमें यह देखना है कि क्या शांति वाकई स्थापित हो गई है?"

"जब युद्ध रुक गया तो शांति आप ही स्थापित हो गई।" इस बार लालाजी ने भी धीमे स्वर में कहा।

"युद्ध रुक गया, शांति स्थापित हो गई।" जगदीश ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से लाला जी की ओर घूरते हुए कहा—"तो फिर अंग्रेजों ने हथियारों की पैदावार को चार-पांच गुना बढ़ा क्यों दिया है?"

लालाजी सकपकाये। शायद उन्हें मालूम नही था कि अग्रेजो ने हथियारो की पैदावार बढा दी है। वह जगदीश की बात का खडन न कर सके। लेकिन प्रह्लाद बोल उठा—

"अग्रेज हथियार इसलिए तैयार कर रहे है कि अगर हिटलर हमला करे तो उसका मुकाबिला कर सकें।"

"लेकिन गाधीवादी होने का अर्थ तो यह है कि हथियारो का मुकाबिला अहिंसा और सत्याग्रह से किया जाये।"

इस बार प्रह्लाद निरुत्तर हो गया, लेकिन लालाजी सभल चुके थे।

"देख लेना" वह बोले, "हथियारो के इस्तेमाल की नौबत ही नही आयेगी। दुनिया गाधीवाद को अपना रही है और अवश्य अपनाएगी। जहा पश्चिम का भौतिकवाद डूबेगा, वहां उसके हथियार भी समुद्र की तह मे डूब जायेंगे।"

इसी समय अशोक ने कमरे मे प्रवेश किया। उसने वही चमडे की वास्केट पहन रखी थी। वह जगदीश के साथ उसके लेखो के सम्बन्ध मे बात करने आया था।

"लालाजी आज बहुत खुश हैं ?" उसने आते ही कहा।

"हमे आध्यात्मवाद के चमत्कार दिखा रहे हैं" जगदीश ने उत्तर दिया और कहा, "बैठो, तुम्हें भी दिखाये जाएगे।"

"मैं इन्हें बता रहा था कि पश्चिम अपने भौतिकवाद से तग आकर पूर्व से आध्यात्मवाद सीख रहा है।" लालाजी तनिक रुके। अशोक, जगदीश और प्रह्लाद पर एक दृष्टि डालकर फिर बोले, "परसो ही की बात है कि अखबारों में मिस म्यूरियल लिस्टर का लेख छपा है, जिसमे उन्होंने लिखा है कि गाधीजी मसीह के अवतार है, सारा एशिया उनके आध्यात्मवाद से प्रभावित हो रहा है। कुछ दिन उनके आश्रम मे रहकर मुझे जो शाति प्राप्त हुई है, हम मशीनो के कलरव मे रहने वाले उसकी कल्पना भी नही कर सकते।"

मिस म्यूरियल लिस्टर, हाल ही मे हिन्दुस्तान का दौरा करके इगलैंड

लौटी थी। जब वह लाहौर आई थी तो जगदीश ने भी उससे भेंट की थी, एक-दो जगह उसके भाषण सुने थे और अखबारों में इंटरव्यू पढ़े थे। जगदीश की धारणा थी कि उसे जान-बूझकर हिन्दुस्तान भेजा गया है ताकि वह चैम्बरलेन की नीति को दुरुस्त सिद्ध करे और म्यूनिख संधि से ब्रिटेन की जो मान-हानि हुई है, उस पर पर्दा डाले।

"गांधी जी को मसीह कहकर कोई हमें विष भी पिलाये तो हम झट पीने को तैयार हो जाते हैं।" जगदीश ने विद्रूप भाव से कहा।

"मैं आपको बता दूं।" लालाजी छाती फुलाकर बोले—"आदमी में अध्यात्म-शक्ति हो तो उसपर विष का भी कोई असर नहीं होता।"

अशोक लालाजी की ओर देखकर मुस्करा रहा था।

"आप तो गांधीजी की महानता को स्वीकार करते हैं न ?" वे अशोक से सम्बोधित हुए।

"क्यों नहीं।" अशोक ने उत्तर दिया, "उनकी महानता को मानकर ही कॉलेज छोड़ा और स्वाधीनता-संग्राम में कूद पड़ा।"

लालाजी खिलखिलाकर हंसे और लपककर अशोक को बांहों मे जकड़ लिया, जैसे वह नन्हा-सा बच्चा हो और वे उसे गोद में भर लेना चाहते हों।

इसी प्रसन्न-मुद्रा में उन्होंने हाथ जोड़कर नमस्ते की और जाने लगे। लेकिन चलने से पहले जगदीश की ओर संकेत करके कहा—"इन्हें भी कुछ समझाओ, यह हिटलर भक्त बनते जा रहे हैं।"

लाला देसराज अखबार बगल में दबाये चल पड़े, उनके साथ प्रह्लाद भी चला गया। लालाजी बहुत प्रसन्न थे और अपने मत का स्पष्ट समर्थन चाहते थे, बोले—"प्रह्लाद, तुम्हारा क्या खयाल है ? मैं तो समझता हूं महात्मा जी को नोबल प्राईज अवश्य मिलेगा।"

"आप जो समझते हैं, ठीक समझते हैं। मैं आपसे अधिक तो नहीं समझ सकता" प्रह्लाद ने उत्तर दिया। लालाजी गद्‌गद् हो उठे और उसे प्रशंसा की दृष्टि से देखते हुए बोले—

"हिन्दुस्तान की यह बहुत बडी जीत है। देश के नाम को पहले महात्मा बुद्ध ने ऊचा किया था और अब महात्मा गांधी कर रहे हैं।"

उन्हें प्रह्लाद का जगदीश और नारायण के साथ उठना-बैठना बहुत अखरता था और वे उसे कई बार चेतावनी दे चुके थे—"देखना, इन लोगों के फेर मे न पड जाना, इनके काटे का दारु नही।" लेकिन प्रदर्शनी की घटना के उपरात उन्हें विश्वास हो गया था कि प्रह्लाद चाहे कही घूमता रहे, उस पर जो रग चढ चुका है, कभी नही उतरेगा। इसलिए वे उससे सदा स्नेह और सहानुभूति दर्शाते थे।

उधर अशोक और जगदीश मे भी बातें शुरू हुई। "लालाजी आखिरी बात तो पते की कह गए।" अशोक ने मुस्कराते हुए कहा।

' कौन सी बात ?"

"यही कि आप हिटलर भक्त बनते जा रहे है।"

जगदीश का खयाल था कि कोई मजाक की बात शुरू होने वाली है। लेकिन अशोक गभीर था और उसकी आखो में प्रश्न-चिह्न बना हुआ था।

"मैं तुम्हारा मतलब नही समझा।" जगदीश बोला।

' म्यूनिख की सधि पर आपके जो लेख छपे है" अशोक ने एक क्षण मौन रहकर कहा "उनसे आपके विचार स्पष्ट नही है ?"

' मसलिन ?"

"मसलिन, उन्हें पढकर यह पता नहीं चलता कि आप नाजीवाद को प्रगतिवादी मानते हैं अथवा प्रतिक्रियावादी ?"

"देखिये।" जगदीश ने पहलू बदलकर कहा, "मैंने नाजीइज्म की जगह नेशनल सोशलिज्म का इस्तेमाल किया है और यह एक हकीकत है कि हिटलर ने अपने देश मे बेकारी को दूर किया है। अग्रेज ने वर्साई की सधि मे, जिस राष्ट्र को हमेशा के लिए कुचल दिया था, उसे फिर से ऊचा उठाया है, उसमे एक नया जोश, नया साहस भरा है।"

रही। कैसे देंगी ? वह उन शक्तियो के विकास का शत्रु है।" अशोक ने निश्चयात्मक ढग से कहा।

वहस जाने क्या रूप धारण कर लेती कि जगदीश की नन्ही लडकी ,, से उसे बुलाने आ गई। अशोक ने लडकी को गोद मे उठा उसे प्यार करते हुए बोला—"आप इस बात पर विचार कर ले मे हिटलर की युद्ध-नीति का समर्थन होता है।"

"तो आप नेशनल सोशलिज्म को साइंटेफिक सोशलिज्म का बदल समझते हैं ?"

"कोई एक चीज दूसरी का बदल नहीं होती" जगदीश ने विद्वत्तापूर्ण गम्भीरता से कहा. "जब परिस्थिति बदलती है, तो पुराने फलसफे की जगह नया फलसफा जन्म लेता है।"

अशोक चुप था और आश्चर्य से जगदीश की ओर देख रहा था। वह जिसकी समझ-बूझ पर भरोसा करता आया था, वही आज नाजीइज्म को नया फलसफा बता रहा था। यह सिर्फ जगदीश ही की नहीं उन सब भावुक देशवासियों की राय थी, जो सिर्फ इस सिद्धान्त की सीमित परिधी में रहकर सोचते थे कि "शत्रु का शत्रु अपना मित्र होता है।"

"हिटलर की आत्म-कथा उठाकर पढ़िये।" अशोक को चुप देखकर जगदीश फिर बोला—"उसने अपने जीवन का जो प्रोग्राम बनाया था, अब वह उसी के अनुसार चल रहा है और अंग्रेज पग-पग पर पराजित हो रहा है। इससे सिद्ध होता है कि ऐतिहासिक शक्तियां उसका साथ दे रही हैं।"

' लालाजी ने इसीलिए तो कहा था कि आप हिटलर भक्त बनते जा रहे हैं।"

एक अर्थपूर्ण मुस्कान अशोक के होंठों पर फैल गई। जगदीश को लगा कि उसने बुद्धि-बल से जो शब्द-चित्र बनाया था, अशोक ने एक नट-खट बालक की भांति ब्रुश फेरकर उसे एकदम मिटा दिया है। उसे यह बात नागवार गुजरी, बोला—"लालाजी तो हमेशा बे-पर की हांकते हैं, इसका यह मतलब नहीं कि तुम भी बे-पर की हांकने लगो।"

"आप जानते हैं कि आपके सामने मैं यह गुस्ताखी नहीं कर सकता।" अशोक ने विनम्रतापूर्वक कहा, "लेकिन यह हकीकत है कि फासिस्तवाद किसी नये युग का नया दर्शन या शक्ति नहीं, बल्कि मरते हुए साम्राज्यवाद का ही भयंकर रूप है। ऐतिहासिक शक्तियां हिटलर का साथ नहीं दे

रही। कैसे देंगी ? वह उन शक्तियों के विकास का शत्रु है।" अशोक ने निश्चयात्मक ढंग से कहा।

बहस जाने क्या रूप धारण कर लेती कि जगदीश की नन्ही लड़की दर्शना भीतर से उसे बुलाने आ गई। अशोक ने लड़की को गोद मे उठा लिया और उसे प्यार करते हुए बोला—"आप इस बात पर विचार कर लीजिये। आपके लेखों से हिटलर की युद्ध-नीति का समर्थन होता है।"

"तो आप नेशनल सोशलिज्म को साईंटेफिक सोशलिज्म का बदल समझते हैं ?"

"कोई एक चीज दूसरी का बदल नही होती" जगदीश ने विद्वत्तापूर्ण गम्भीरता से कहा, "जब परिस्थिति बदलती है, तो पुराने फलसफे की जगह नया फलसफा जन्म लेता है।"

अशोक चुप था और आश्चर्य से जगदीश की ओर देख रहा था। वह जिसकी समझ-बूझ पर भरोसा करता आया था, वही आज नाज़ीइज्म को नया फलसफा बता रहा था। यह सिर्फ जगदीश ही की नही उन सब भावुक देशवासियों की राय थी, जो सिर्फ इस सिद्धान्त की सीमित परिधी में रहकर सोचते थे कि "शत्रु का शत्रु अपना मित्र होता है।"

"हिटलर की आत्म-कथा उठाकर पढ़िये।" अशोक को चुप देखकर जगदीश फिर बोला—"उसने अपने जीवन का जो प्रोग्राम बनाया था, अब वह उसी के अनुसार चल रहा है और अंग्रेज पग-पग पर पराजित हो रहा है। इनसे सिद्ध होता है कि ऐतिहासिक शक्तियां उसका साथ दे रही हैं।"

'लालाजी ने इसीलिए तो कहा था कि आप हिटलर भक्त बनते जा रहे हैं।"

एक अर्थपूर्ण मुस्कान अशोक के होंठों पर फैल गई। जगदीश को लगा कि उसने बुद्धि-बल से जो शब्द-चित्र बनाया था, अशोक ने एक नट-खट बालक की भांति ब्रुश फेरकर उसे एकदम मिटा दिया है। उसे यह बात नागवार गुजरी, बोला—"लालाजी तो हमेशा बे-पर की हाकते हैं, इसका यह मतलब नही कि तुम भी बे-पर की हांकने लगो।"

"आप जानते हैं कि आपके सामने मैं यह गुस्ताखी नही कर सकता।" अशोक ने विनम्रतापूर्वक कहा, "लेकिन यह हकीकत है कि फासिस्तवाद किसी नये युग का नया दर्शन या शक्ति नही, बल्कि मरते हुए साम्राज्यवाद का ही भयंकर रूप है। ऐतिहासिक शक्तियां हिटलर का साथ नहीं दे

रही। कैसे देंगी ? वह उन शक्तियो के विकास का शत्रु है।" अशोक ने निश्चयात्मक ढग से कहा।

बहस जाने क्या रूप धारण कर लेती कि जगदीश की नन्ही लडकी दर्शना भीतर से उसे बुलाने आ गई। अशोक ने लडकी को गोद म उठा लिया और उसे प्यार करते हुए बोला—' आप इस बात पर विचार कर लीजिये। आपके लेखो से हिटलर की युद्ध नीति का समर्थन होता है।

: 29 .

वातावरण

"बूढ़े ने हार को बुरी तरह महसूस किया है।"

"इसमें क्या संदेह है।"

नारायण और प्रह्लाद में बातें हो रही थीं। वे सैर से लौटे थे और दफ्तर की ओर जा रहे थे। एक बार की तनातनी के उपरांत जब दोबारा समझौता हुआ तो वे फिर पूर्ववत् घी-शक्कर हो गये। वे फिर प्रायः इकट्ठे घूमते, राजनीतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक विषयों पर बातचीत करते थे, कई बार मतभेद भी होता था; पर दोनों एक-दूसरे को और अपने-आपको समझने और त्रुटियां दूर करने में प्रयत्नशील थे। वे क्षण-क्षण आगे बढ़ रहे थे और दृष्टि-सीमा पर नये-नये क्षितिज उभरते देख रहे थे। पीछे मुड़कर नजर डालते तो अपनी त्रुटियां मील-पत्थरों के चिह्नों के सदृश दिखाई देतीं और यह अनुमान होता कि वे कितना फासला चल चुके हैं। विकास की सुखद भावना आत्मा को गुदगुदा देती और वे नये उत्साह के साथ आगे की ओर देखते हुए सोचते—"हम और आगे बढ़ेंगे और ऐसे कितने ही चिह्नों, अपनी त्रुटियों को पीछे छोड़ जायेंगे।"

आगे बढ़ने की यह मनोकामना कितनी मनोरम और कितनी सुखकर थी!

इस समय जिस विषय पर बात हो रही थी, वह कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव था। बरसों से यह नियम-सा बन गया था कि गांधी जी जिस व्यक्ति के नाम की सिफारिश कर देते थे, उसे अध्यक्ष चुन लिया जाता था, किसी

को मुकाबला करने का साहस नही होता था। लेकिन इस बार यह नियम टूट गया था। सुभाषचन्द्र बोस ने गाधी के उम्मीदवार पट्टाभि सीतारमय्या को पछाड दिया था। नौजवान, जो हमेशा पुरानी लीक को तोडकर नई लीक डालते हैं, प्रसन्न थे वास्तव मे यह वामपक्ष की जीत थी। गाधी जी पहले तो चुप रहे। उन्हे अपने उम्मीदवार की जीत का पूर्ण विश्वास था। लेकिन जब परिणाम आशा के विपरीत निकला तो झट अखबारो का बयान दिया—

"पट्टाभि सीतारमय्या की हार मेरी हार है।"

अब गाधी के इस बयान की आलोचना हो रही थी। नारायण का उत्तर सुनकर प्रह्लाद चुप हो गया। लेकिन तत्क्षण उसके मस्तिष्क मे इसी बात का दूसरा पहलू उभर आया।

"एक बात और सोचिये।" प्रह्लाद बोला, "मान लीजिये गाधी जी के उम्मीदवार मौलाना आजाद ही रहते, तो क्या परिणाम इसके उलट न होता?"

"इसका अर्थ यह हुआ कि हम मौलाना के व्यक्तित्व की सुभाष के व्यक्तित्व से तुलना करें?"

नारायण ने ठीक व्याख्या की थी। प्रह्लाद चकित-सा उसकी ओर देखने लगा।

"मेरे ख्याल मे यह सोचना बेहतर होगा कि मौलाना ने उम्मीदवार बने रहना क्यो पसद नही किया?"

"अच्छा योही सही।" प्रह्लाद सहमत हुआ।

"देखिये।" नारायण ने यो अगुली हिलाई, जैसे दूर की कौडी ला रहा हो, "मौलाना निरे सयासतदान ही नही, अदीब भी हैं। इसलिए मानवी हृदय रखते हैं और जानते हैं कि नौजवानो को हमारी जगह लेनी है।

प्रह्लाद मुस्कराया। उसकी आखें भी नारायण की आखो की भाति

चमक उठी। मानव स्वभाव का यह उज्ज्वल पहलू पहली बार उसके सामने आया था।

इस विषय पर फिर कोई बात नहीं हुई। दोनों चुपचाप चलने लगे। दोनों के मन उल्लास से भरे हुए थे। नारायण को बातों ही बातों में यह विचार सूझ गया था और वह अपनी इस उपज का सम्बन्ध उस पुस्तक से जोड़ रहा था, जिसे वह आजकल पढ़ रहा था। उसमें लिखा था— "साहित्य मनुष्य की प्रगतिशील भावना को सजग रखता है।" लेकिन सिर्फ यह वाक्य ही काफी नहीं था। इस उपज में नारायण के समस्त मानसिक विकास को दखल था। अगर उसने जीवन-संघर्ष द्वारा प्रगति की भावना को आत्मसात् न कर लिया होता तो लाख पुस्तकें पढ़ लेने पर भी उसके मन में यह विचार उत्पन्न न होता, और वह अपने शब्दों से प्रह्लाद को गुदगुदाने में असमर्थ रहता।

वसंत के दिन थे। सर्दी बीत चुकी थी और वातावरण में उष्णता का प्रादुर्भाव हो रहा था। जड़ता टूट रही थी। वृक्ष नई कोंपलें निकालने की तैयारियां कर रहे थे। टहनियों के होठों पर गर्भवती स्त्रियों के सदृश सानन्द मुस्कराहटें थीं और उनके अंग-अंग में निर्माण की उमंग। वृक्षों से तनिक परे हाल की दीवार के निकट आम का एक नया पौधा उगा था। गनी उसे दो साल से बराबर सींच रहा था। सर्दियों में उसके पत्ते झड़ जाते और नंगी टहनियां बे-जान दीख पड़ती थीं। गनी विमन-सा सोचता कि जिन्दगी उनमें फिर न लौटेगी। लेकिन वसंत आते ही जिन्दगी तेजी से लौट आई। सूखी और मुरझाई हुई टहनियां हरी हो गईं और उन पर उनाबी रंग की कोंपलें फूट आईं।

गनी उसे पनपते देखकर पहले से अधिक मुस्तैदी दिखाने लगा। सुबह-सवेरे उठकर उसे सींचता और बैठा उसकी टहनियों और नवजात पत्तों को देखता रहता। उनकी कोमलता और नवीनता को आत्मा में भर कर मुस्कुराता।

जब नारायण और प्रह्लाद वहां आये तो गनी बैठा पौधे को देख रहा

था और बूटासिंह उसके निकट खड़ा था। उनके पहुंचते ही बातें शुरू हुई।

"अब तो यह पेड बन रहा है।" बूटासिंह ने मुस्कुराते हुए कहा।

'हां!' गनी की आखें प्रसन्नता मे फैल गई।

'अच्छा गनी, आम लगेंगे तो किसी को खाने से मना तो नही करोगे?"

"करूंगा" गनी उछलकर खडा हो गया और अगुली घुमाकर कोठियो की ओर सकेत करते हुए बोला, "इन सरमायादारो को।"

"और उस दो चोटियो वाली काता को भी?" बूटासिंह ने शरारत की। लड़की का नाम उसने आप ही काता रख लिया था।

गनी सुनकर हसने लगा।

"शादी की बातचीत चल रही है।" बूटासिंह ने बात आगे बढाई, 'लेकिन उसे एक ऐतराज है कि गनी मुसलमान है।"

"मेरा नाम सुख सुखदेव भी तो है।" गनी झट बोल उठा, उसकी आवाज मे लुक्नत थी, नारायण के कधे पर हाथ रखकर आगे कहा, "हिसार म— मुझे सब पडित सुखदेव कहते थे ना?"

नारायण के समर्थन करने से पहले ही बूटासिंह हस पडा, क्योकि यह बात पहले भी कई बार दोहराई जा चुकी थी और गनी हर बार अपने सुखदेव होने की कहानी दोहराता था। वह दो डेढ महीने हिसार मे रह आया था। वहा जिस होटल म वे लोग खाना खाते थे, उसमे सिर्फ हिन्दुओ को ही भोजन मिलता था, इसलिए वे गनी को सुखदेव कहते थे। गनी समझता था कि जहां भी उसके मुसलमान होने पर ऐतराज हो वही यह उपाय चल सकता है। काता को भी सुखदेव नाम बताकर मजहब का झझट मिट जायेगा।

व फिर पौधे की ओर देखने लगे। गनी ही नही, वे सभी उसमे दिलचस्पी ले रहे थे। पौधा दिन-दिन बढ रहा था, विकास की मजिलें तय

कर रहा था। चोटी पर जो दो नई सुर्ख-सुर्ख कोमल टहनियां फूट रही थीं, उनकी ओर संकेत करते हुए नारायण ने प्रह्लाद से कहा—

"पौधे की जड़ें जमीन में पैवस्त हैं, वे उसके हर एक अंग को खुराक पहुंचा रही हैं और सूर्य के प्रकाश की सहायता से गैर-बनस्पति को बनस्पति में तब्दील कर रही हैं।"

नारायण कह रहा था और प्रह्लाद ध्यान से सुन रहा था। लेकिन गनी और बूटासिंह को उनकी बातों से कोई दिलचस्पी नहीं थी, वे अपने ही विचारों में मगन थे। नारायण और प्रह्लाद बनस्पति विज्ञान की बातें करते इधर चले आये और बट वृक्ष तले एक बेंच पर बैठ गये। बात यद्यपि पौधे के जीवन से शुरू हुई थी; लेकिन विषय यह बन गया कि धरती, आकाश और सारा ब्रह्मांड, कैसे एक-दूसरे के सहारे स्थिर है। पौधे धरती से आहार प्राप्त करते हैं, जीव बनस्पति के सहारे जीवित हैं और स्वयं जीव अपने भीतर से कार्बन निकालते हैं, जिस पर बनस्पति का जीवन निर्भर है। तत्वों का संगठन अव्यवस्थित हो जाने के बाद बनस्पति और जीव दोनों फिर पदार्थ का अंग बन जाते हैं। परिवर्तन का यह क्रम प्रति क्षण जारी रहता है, नदी के बहाव की तरह जिसका कभी अन्त नहीं होता। भाप-बादल, मेह और फिर भाप!

"संसार की प्रत्येक वस्तु में क्रम और परस्पर सम्बन्ध है। कोई भी घटना सहसा और असम्बन्धित नहीं होती।"

सारी बात समझाने के बाद नारायण ने कहा और फिर मिसालें देनी शुरू कीं। बात से बात निकलती रही और अंत में समाज और मानव-विकास पर विचार होने लगा।

"हमें जीवन में अच्छे या बुरे जिन लोगों से वास्ता पड़ता है, सब समाज की पैदावार हैं। मनुष्य को जिस प्रकार का वातावरण मिलता है, वैसा ही उसका स्वभाव बनता है।"

यहां नारायण ने अपना ही उदाहरण देकर बताया कि उसका जीवन

किन परिस्थितियो मे गुजरा है, जिससे उसके स्वभाव मे कटुता आई और कई त्रुटिया उत्पन्न हुईं। अब वह उन्हें समझता है और छोडना चाहता है, लेकिन छोड देना सहज नही, छोडने के लिए बडा सघर्ष करना पडता है। हमारे पूर्वजो ने इस सघर्ष को तपस्या और सयम का नाम दिया है। बेहतर वातावरण मिल जाये तो हमे स्वभाव और सस्कार बदलने मे बडी सहायता मिलती है।

प्रह्लाद के लिए यह सब बातें नई थी। उसने पहले किसी को यो आत्मविश्लेषण करते नही देखा था। नारायण से उसकी घनिष्ठता और बढ गई। मन मे आता था कि वह भी उसके सम्मुख अपना हृदय खोल कर रख दे।

"अहा जी, हमारा डाक्टर बडा अच्छा है। बडा ही अच्छा है हमारा डाक्टर!" ऊषा दौडती हुई आई और उसने अपनी बाहे नारायण के गले मे डाल दी।

वह पिछले दो हफ्ते से बीमार थी। उसके पेट मे खराबी थी, और ज्वर रहता था। अब कुछ आराम था। इस समय वह मा के साथ दवा लेकर लौटी थी।

"बडा अच्छा है तुम्हारा डॉक्टर, क्या कहा है उसने?" प्रह्लाद ने ऊषा की बाह पकडकर उसे अपनी ओर खीचते हुए पूछा।

'कहा है मिट्ठे चूसना, सेब खाना और सतरे खाना।" उसने एक ही सास मे कहा और फिर दोनो बाहे फैलाकर बोली, "मैं इतने सतरे खाऊंगी। क्यो न बीबी जी?"

"पैसे कहा हैं इतने सतरो के लिए। बाप तो जेल मे है।" पार्वती ने हसरत भरे स्वर मे कहा।

प्रह्लाद ने बटुवा खोलकर एक अठन्नी निकाली और ऊषा के हाथ पर रख दी। वह खुश होकर नाचने लगी।

"अच्छा, तुम भी लोगी ?" प्रह्लाद ने एक इकन्नी पूपी के हाथ पर भी रख दी। बटुवा खुला देखकर पार्वती ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर फैला दिया था।

नारायण को वह घटना स्मरण हो आई, जब पार्वती ने पराशर की दी हुई दुवन्नी लौटाकर आशंका प्रकट की थी कि इससे बच्चों की आदत बिगड़ जायेगी।

30 .

रावी के किनारे

जनरल डायर जलियानवाला बाग मे गोली चलाकर और हजारो निरपराधो और मासूमो का खून बहाकर बहुत खुश था और उसने जाच कमीशन के सम्मुख बयान देते हुए सगर्व कहा था—"मैं हिन्दुस्तानियो को पाठ पढाना चाहता था।"

डायर का शुक्रिया! हिन्दुस्तानियो ने वाकई बहुत बडा पाठ पढा था। उन्हें मालूम हो गया था कि अगर हम आजाद नही होगे तो हमारा रक्त इसी प्रकार निर्दयता से बहाया जाएगा और जालिम हमे कीडे-मकोडो की भाति कुचलकर घमड से मुस्कराता रहेगा।

शहीदो की पुण्य-स्मृति मे कौमी हफ्ता मनाया जाने लगा। आज उस हफ्ता की अन्तिम तिथि अर्थात् अप्रैल का तेरहवा दिन था। इसी दिन विक्रमी सम्वत् का नया साल शुरू होता है और रावी के किनारे बैसाखी का मेला धूम-धाम से लगता है। इस मेले का आरम्भ कब से हुआ, यह बताना कठिन है, क्योकि समय के इतिहासकार ने इसका इतिहास पीढियो के वक्ष स्थल पर लिखा है। जो पीढिया धरती की गोद मे पडी सोती हैं, वे इस रहस्य का उद्घाटन करने मे असमर्थ हैं। शायद यह मेला तब से लग रहा हो, जब से लाहौर आबाद हुआ है। अथवा इसका आरम्भ उस समय से हुआ है, जब से रावी ने पर्वत की कोख से जन्म लेकर धरती की गोद मे मचलना शुरू किया है। तरंगों को सब मालूम है। लेकिन वे बडी चचल हैं, सृष्टि के समस्त रहस्य सीने मे छिपाये उछल रही हैं, नाच रही हैं, लाख सिर पटकने पर भी जबान नही खोलती। मुमकिन है, उन्हें भी मालूम न हो। उस समय से अब तक कितना पानी बह चुका है, जो पानी आज बह रहा है, वह कल नही था। इन्सान की कितनी पीढिया बीत

चुकी हैं, जिन्होंने इस मेले को शुरू किया, वे आज नहीं हैं। लेकिन मेला है, मेला मनाने वाले हैं और वे सदा रहेंगे।

गत बीस वर्ष से इस मेले के साथ जलियांवाला बाग की स्मृति भी जुड़ गई है। हर साल शहीदों की याद में रावी के किनारे जलसा होता है, नौजवान पूर्ण स्वराज्य के प्रण को दोहराते हैं। आज़ादी की तमन्ना रावी की चंचल तरंगों के सदृश अमर है।

तेरह अप्रैल का दिन था, और चंचल तरंगों वाली रावी के किनारे हज़ारों औरतें और मर्द जमा थे, नदी में स्नान कर रहे थे। दरिया के पानी में रवानी है, गहराई और ताज़गी है। नव वर्ष के दिन दरिया के किनारे जमा होने और उसमें स्नान करने का उद्देश्य शायद यह रहा हो कि मनुष्य भी अपने जीवन में गति, गहराई और ताज़गी की अभिलाषा करता है, क्षण-क्षण आगे बढ़ता है। मेले में आने से उसकी मनोगत भावनाओं का प्राकृतिक दृश्य से सामंजस्य होता है।

नारायण इधर-उधर घूम रहा था। गहमा-गहमी और चहल-पहल देख रहा था। मेला उसे राष्ट्र की स्वस्थ परम्परा और उसके सामूहिक जीवन और संस्कृति का प्रतीक जान पड़ता था।

किसी औरत ने नमस्ते कही और नारायण के पास आकर रुक गई। वह चकित-सा उसकी ओर देखता रहा। औरत के साथ एक पतला-दुबला आदमी था, जिसने गोद में बच्चा उठा रखा था। मर्द को देखकर उसने औरत को भी पहचान लिया और बोला—

"सुनाओ भाभी, धर्म कमाने आई हो?"

"धर्म-पुण्य तो भगवान जानता है, सारी दुनिया नहा रही है, हम भी नहा लेंगे।" औरत ने उत्तर दिया।

"बहुत कमज़ोर नज़र आती हो, क्या बीमार रही हो?"

"मैं तो ठीक थी, मगर यह दो महीने इतने बीमार रहे कि बचने की आस नहीं थी।"

"अच्छा!" नारायण ने आदमी की ओर देखा, वह गर्दन झुकाये खड़ा था, पांव नंगे थे और अंगूठे से धरती कुरेद रहा था।

"इधर इन्हे कही देखा नही। सोचता था कि आकाश पर उड गये या पाताल मे उतर गये।"

"आकाश पर उडने की ही बात हो गई थी।" औरत ने बीमारी की बात जारी रखी, "भगवान ने जान बचा ली। इसान का दिया-लिया आगे आ जाता है।"

"यह तो ठीक है।" नारायण ने अर्थपूर्ण ढग से सिर हिलाया, "इन्हें कहना कि दरिया में खूब गोते लगायें ताकि सारे पाप धुल जायें।"

"अब चलो भी, फिर धूप तेज हो जायेगी।" मर्द ने पत्नी से कहा और आख ऊपर नही उठाई। चलने के लिए वह बहुत ही आतुर मालूम होता था।

"भाभी, आप जाइये। इनके पाव जल रहे हैं।" नारायण ने उसकी ओर देखते हुए व्यग किया।

"अच्छा नमस्ते।"

"नमस्ते।"

वे थोडी ही दूर गये थे कि पीछे से ताया चेतसिंह ने नारायण के कधे पर हाथ रखा और पुरुष की ओर सकेत करते हुए कहा—

' इनसे पूछो कि जलसे की रिपोर्ट नही लिखोगे ?"

"वाह ताया, तुम अब भी उसका पीछा कर रहे हो।"

ताया खिलखिला कर हस पडा।

वह आदमी खैरातीराम था। जिस दिन ताया चेतसिंह ने उसकी खोई हुई रिपोर्ट लाकर दी, अशोक ने शाम को उसे अपने कमरे मे बुलाया और पूछा कि तुमने यह क्या धधा अख्तयार किया है। पहले तो उसने इनकार किया; लेकिन जब अशोक ने उसके अपने हाथ की लिखी हुई रिपोर्ट प्रमाण के रूप मे सामने रख दी तो वह सिट्टी-पिट्टी भूल गया और भय से कापने लगा। उसे मालूम था कि अगर इनकलाबियो को मालूम हो जाये कि कोई आदमी उनके अन्दर घुसकर जासूसी करना चाहता है तो वे उसकी खूब मरम्मत करते हैं और प्राण तक लेने से नही झिझकते। खैरातीराम ने अपराध स्वीकार करते हुए कहा कि तनख्वाह थोडी थी और

मलील हरकत की। अगर इस बार माफ कर दो तो आगे के लिये तोबा करता हूं।

अशोक ने उसे माफ कर दिया और वह रातों-रात कमरा छोड़कर वहां से चला आया और फिर कभी उधर का रुख नहीं किया। उसकी पत्नी अगर नारायण से परिचित न होती और उसे न बुलाती, तो वह अब भी छिपकली की भांति चुपके से निकल जाता। जब पत्नी नारायण से बातें कर रही थी, उसके पांव वहां खड़े वाकई जल रहे थे, वह आत्म-ग्लानि से धरती में गड़ा जा रहा था।

वहां से थोड़ी दूर कांग्रेस का जलसा हो रहा था। ताया और नारायण अब उधर चले। स्टेज खूब सजी हुई थी। बीच में एक बहुत लम्बे बांस पर तिरंगा झंडा फहरा रहा था। शीला प्रधान थी और लाला देसराज स्टेज सेक्रेटरी।

जब ताया और नारायण वहां पहुंचे तो गोपाल भाषण देने खड़ा हुआ। उसने इधर-उधर निगाह डाली और फिर लाऊड-स्पीकर के निकट मुंह ले जाकर कहना शुरू किया—

"बहनो और भाइयो! मुझ से पहले वक्ता ने ठीक कहा है कि पूंजीवाद का युग अब खत्म हो रहा है। यह लानत जितनी जल्दी खत्म हो अच्छा है। पूंजीवाद ही ने दुनिया की यह दुर्दशा कर रखी है। गरीबी हमारे ही देश में नहीं, अमरीका में भी, जो सबसे धनी देश समझा जाता है, जिसकी आबादी दुनिया की आबादी का चालीसवां भाग और धन छठा भाग है—वहां सत्तर फीसदी गरीब लोग बसते हैं। यह स्वयं प्रधान रूजवेल्ट का बयान है, जो आपने अखबारों में पढ़ा होगा और मेरे पास उसका कटिंग मौजूद है।" वह तनिक रुका और होंठ रूमाल से पूंछकर फिर बोला—"हमारे आंदोलन का मकसद गरीबी और भूख को दूर करना है। लेनिन का कथन है कि जब तक कोई आंदोलन जनता का आंदोलन न बन जाये, तब तक इनकलाब नहीं हो सकता। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि हमारा आंदोलन जनता का आंदोलन बन चुका है। इसकी जड़ों में शहीदों का खून है और···हमारे इरादे हिमालय की

चोटियो की तरह बुलद हैं। दस साल पहले पडित जवाहरलाल नेहरू ने इसी रावी के किनारे मुकम्मिल आजादी का ऐलान किया था। उनकी आवाज अब हिमालय से रासकुमारी तक गूज रही है। ससार की कोई भी शक्ति हमे अपने इरादो को पूरा करने से रोक नही सकती ··" गोपाल ने पाव स्टेज पर पटका।

'खूब पैवन्द लगाये जा रहे है।"

"यही तो एक अच्छे बोलने वाले की खूबी है।"

इखलाक और राजेन्द्र एक ओर खडे कानाफूसी कर रहे थे।

"महात्मा गाधी हमारे नेता है।" गोपाल ने भाषण जारी रखा, "हम उनके मामूली इशारे पर प्राण तक न्योछावर कर देंगे। उनका एक लेख इस हफ्ते हरिजन म छपा है, जिसमे उन्होने बिल्कुल ठीक लिखा है कि अग्रेजो ने हमारे देश को न सिर्फ आर्थिक बल्कि आध्यात्मिक रूप से भी निर्बल कर दिया है ··"

गोपाल को दस मिनट मिले थे; लेकिन उसने पन्द्रह मिनट तक भाषण दिया फिर भी पूरी बात न कह सका, उसे अभी बहुत से हवाले और उद्धरण पेश करने थे। जब वह भाषण देकर स्टेज से उतरा तो गाल सुर्ख थे, और होटो पर मुस्कान थी। स्टेज से उतर कर वह सीधा उस जगह पहुचा जहा अग्रेजी पत्र का प्रतिनिधि खडा था। अभिप्राय समझ कर रिपोर्टर ने उसका नाम वक्ताओ की सूची मे लिखा और उसे दिखाया।

"मेरे नाम के आगे कामरेड नही मिस्टर या लाला लिखिये।"

गोपाल ने उसे सुझाया और गर्व से कहा "मुझे कामरेड शब्द से घृणा है।"

गोपाल ने अपने भाषण मे पूजीवाद को कोसा था, इसलिए रिपोर्टर ने उसे कामरेड लिखा। अब सुधारकर कहा, "लाला लिख दिया है, और फरमाइये।"

"शुक्रिया!" गोपाल ने कहा और फिर स्टेज पर जा बैठा।

नारायण रिपोर्टर के पास ही खडा था, गोपाल ने उसे नही देखा। अब वह वहां से सरककर इखलाक और राजेन्द्र के करीब चला गया

उन्हें यह घटना बताई। वे सुनकर हंस पड़े।

"आखिर इसका मतलब क्या हुआ?" राजेन्द्र बोला।

"मतलब साफ है कि हर एक बुर्जवा 'कामरेड' लफ्ज़ से नफरत करता है।" इखलाक ने उत्तर दिया।

"और अंग्रेज़ी अखबार अमूमन ऐसे ही लोगों के हाथों में जाता है।" नारायण ने कहा।

वे बातें करते हुए स्टेज से तनिक और परे चले गये। जब गोपाल के स्वभाव, उसके भाषण और बुकराती प्रवृत्ति की आलोचना हो तो मदन को भूल जाना सम्भव नहीं था, बल्कि अन्त में गोपाल नज़र-अन्दाज़ हो जाता और उपहास का विषय मदन बन जाता था। उसकी गतिविधि और हाव-भाव की नकल उतारकर हंसने में लुत्फ रहता था।

"मेरा खयाल है कि इन लोगों को खूब एक्सपोज़ किया जाये।" इखलाक ने कहा।

"किसे एक्सपोज़ (Expose) किया जा रहा है?"

पद्मा बीच में आ टपकी। उसके हाथ में धूप-चश्मा था, जिसे वह अनमनी-सी घुमा रही थी। वह नीले रंग का ब्लाऊज़ और किर्मिज़ी साड़ी पहने हुए थी, जो उसे खूब फबती थी। इखलाक ने उसकी ओर देखा और मुस्कराते हुए कहा—

"आपको।"

"हमारा तो कोई सीक्रेट (Secret) ही नहीं।"

"जब तक मालूम न हो, लोग ऐसा ही कहते हैं।"

"तो आप मालूम कर लीजिये।"

"कोशिश कर रहे हैं।" इस बार नारायण ने कहा और वह मुस्कुरा दिया।

पद्मा चुप हो गई। वह चश्मे को बदस्तूर घुमा रही थी। उसकी दृष्टि दूर बहती हुई रावी पर पड़ रही थी और वह जाने क्या सोच रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी स्याह आंखों में विचारों की तरंगें उठ रही थी, जो भरे हुए गोल-गोल चेहरे पर फैलकर उसे पहले से कहीं अधिक आकर्षक

और सुन्दर बना रही थी।

"कान का मैल! कान का मैल!"

बाईं ओर से एक आदमी तेज आवाज मे चिल्लाता हुआ आ रहा था। सबकी निगाहें एक साथ उधर उठ गईं।

उस व्यक्ति ने लम्बा, मैला और ढीला-ढाला कमीज और उतना ही मैला और तग पायजामा पहन रखा था और सिर पर सुर्ख रग की पगडी बधी थी। वह मैल निकालने वाला था, इसलिए कान पर तिनके और रूई टाग रखी थी। लगता था कि वह कान से मैल निकाल-निकालकर कपडो से पूछता रहता है, इसीलिए चिक्कट हो गये हैं। ध्यान से देखा जाये तो वह दर्मयान कद और सुगठित शरीर का व्यक्ति था, लेकिन इन कपडो के कारण लम्बा और दुबला जान पडता था।

इन लोगो के पास आकर वह रुका और आवाज बदल कर बोला — "बाबू जी मैल निकलवाओगे ?"

तीनो कामरेड एक-दूसरे की ओर देखने लगे। आखो ही आखो मे सरगोशिया हुईं। आखिर नारायण बोला—

"देखो मिया, मैंने तुम्हे पहचान लिया है। पहले तुम हाथ देखकर ज्योतिष लगाते थे, अब यह मैल निकालने का धधा कब से शुरू कर दिया ?"

"बाबू साहब, पेट के लिए सौ सौ पापड बेलने पडते हैं। मैं भविष्य की बात बताता था, तो लोग सुनते नही थे। अनुभव से पता चला कि इस दुनिया मे बसने वाले अकसर लोग बहरे है, उनके कानो मे प्राचीनता का मैल भरा हुआ है; वे भविष्य की बात सुनें तो कैसे सुनें ? इसलिए सोचा कि पहले यह मैल निकाल लू तब भविष्य की बात कहूगा।"

'इस पेशे मे तो आमदनी माकूल होगी ?"

"माकूल क्या खाक होगी। पढे-लिखे बाबू किस्म के लोग अपने आप मे मस्त रहते हैं। वे मैल निकलवाने की जरूरत ही नही समझते। मेरी शक्ल तक से दूर भागते हैं। दूसरी ओर अपढ जनता है, जो मासूम और ईमानदार है और उसमे समझने सुनने की भूख है। लेकिन उन लोगो

31

सौंदर्य

तिलक का सन्देह ठीक ही था। पेड के नीचे जो व्यक्ति खडा था वह खुफिया पुलिस का सिपाही था। उसका ध्यान दूसरी ओर था, लेकिन गाहे बगाहे कनखियो से इन्हे भी देख लेता था। दरअसल वह राजेन्द्र और इखलाक की निगरानी कर रहा था, तिलक को उसने सचमुच ही कान का मैल निकालने वाला समझा था। लेकिन जब उन्हे कहकहे लगाते सुना तो उसके कान खडे हुए। उसने ध्यान से देखना चाहा, लेकिन तिलक 'कान का मैल' 'कान का मैल' की आवाज लगता हुआ मेले की भीड मे गुम हो गया।

सिपाही भी तेज-तेज कदम उठाता हुआ उसके पीछे चला। वह उसे देखकर अपनी तसल्ली कर लेना चाहता था।

लेकिन तिलक अपनी तसल्ली पहले ही कर चुका था। उसने सिपाही को अपनी ओर बढते देख लिया था और पहचान भी लिया था। उसका नाम बशीर था और जब तिलक रूपोश नही हुआ था, वह खुद उसकी निगरानी पर नियुक्त था।

उसे पीछा करते देखा तो तिलक ने आवाज लगाना बन्द कर दिया और भीड म खो गया। चलते चलते वह ऐसी जगह पहुचा, जहा एक ओर सरकडो का घना जगल और एक ओर बडे बडे वृक्ष थे। उसने एक क्षण के लिए सोचा कि जगल म से होकर देहात को चला जाये। लेकिन वह निश्चय करके आया था कि बैसाखी का मेला देखेगा, मित्रो से मिले जुलेगा

को घंटों समझाना पड़ता है कि कान में मैल कैसे पड़ जाता है और उसे निकलवाने की क्यों जरूरत है। इसके लिए सब्र चाहिए और इतना बड़ा सब्र कहां से लाऊं ?"

पद्मा ने चश्मा घुमाना बन्द कर दिया और वह आश्चर्यचकित-सी मैल निकालने वाले की ओर देखने लगी।

"यह कोई मामूली आदमी नहीं, पढ़ा-लिखा है, ज्योतिषी है और सबसे बड़ी बात यह है, कि फिलासफर भी है।" नारायण ने पद्मा को बताया।

"ना भई, मैं फिलासफर विलासफर कुछ नहीं।" उसने कानों पर हाथ रखे, "मैं अपढ़ जनता में रहता हूं और अनुभव की बात कहता हूं। अगर इसका नाम फिलासफी है, तो मैं मानता हूं कि यह फिलासफी आपको बड़े-बड़े पंडितों की पुस्तकों में भी नहीं मिलेगी।"

उसने भी इस बार पद्मा को सम्बोधित किया और 'पुस्तक' शब्द पर खास जोर दिया। उसकी आंखों में एक विशेष चमक थी, जिसे देख पद्मा चौंकी, "ओहो ! मैं तो अब तक धोखे में रही !"

सब कहकहा लगाकर हंसने लगे। मैल निकालने वाला तिलक था। उसने होंठों पर अंगुली रख कर चुप रहने का निर्देश किया और इधर-उधर निगाह दौड़ाई। परे पेड़ के नीचे एक आदमी खड़ा था। उसका ध्यान दूसरी ओर था और बहाना कर रहा था कि वह उन्हें नहीं देख रहा। लेकिन तिलक को संदेह हुआ और उसने वहां से तुरन्त खिसक जाना उचित समझा।

31

सौंदर्य

तिलक का संदेह ठीक ही था। पेड के नीचे जो व्यक्ति खडा था, वह खुफिया पुलिस का सिपाही था। उसका ध्यान दूसरी ओर था, लेकिन गाहे बगाहे कनखियो से इन्हे भी देख लेता था। दरअसल वह राजेन्द्र और इखलाक की निगरानी कर रहा था, तिलक को उसने सचमुच ही कान का मैल निकालने वाला समझा था। लेकिन जब उन्हें कहकहे लगाते सुना तो उसके कान खडे हुए। उसने ध्यान से देखना चाहा, लेकिन तिलक कान का मैल 'कान का मैल' की आवाज लगता हुआ मेले की भीड मे गुम हो गया।

सिपाही भी तेज-तेज कदम उठाता हुआ उसके पीछे चला। वह उसे देखकर अपनी तसल्ली कर लेना चाहता था।

लेकिन तिलक अपनी तसल्ली पहले ही कर चुका था। उसने सिपाही को अपनी ओर बढते देख लिया था और पहचान भी लिया था। उसका नाम बशीर था और जब तिलक रूपोश नही हुआ था, वह खुद उसकी निगरानी पर नियुक्त था।

उसे पीछा करते देखा तो तिलक ने आवाज लगाना बन्द कर दिया और भीड म खो गया। चलते-चलते वह ऐसी जगह पहुचा, जहा एक ओर सरकडो का घना जगल और एक ओर बडे बडे वृक्ष थे। उसने एक क्षण के लिए सोचा कि जगल म स होकर देहात को चला जाये। लेकिन वह निश्चय करके आया था कि वैसाखी का मेला देखेगा, मित्रो से मिले-जुलगा

और शहर में जाकर 'किसान समस्या' पैम्पलेट और दूसरी चीजें लायेगा। अब उल्टे पांव लौट जाना उसे अपने साहस का अपमान जान पड़ा। अतएव सरकंडों मे घुसने के बजाय, वह वृक्षों की ओर बढ़ा। थोड़ी दूर चलकर खुला मैदान आ गया। सामने एक तांगा खड़ा था, वह उचक कर उसमें बैठ गया और कोचवान से शहर की ओर चलने को कहा।

एक मैल निकालने वाले का तांगे में यों आ बैठना और फिर चलने का हुक्म देना कोचवान को नागवार लगा और वह मन ही मन चिढ़ कर बोला—

"किराया दो रुपये होगा।"

"दो ही मिलेंगे जल्दी चलो, हुज्जत क्यों करते हो ?"

एक की जगह दो मिल रहे थे, कोचवान ने चाबुक संभाला और घोड़ा चल पड़ा।

तिलक तांगे में बैठा ध्यान से देख रहा था कि बशीर उसका पीछा तो नही कर रहा। भीड़ अधिक थी। सड़क पर आने-जाने वालों का तांता लगा हुआ था; इसलिए अगर कोई पीछा कर भी रहा हो, तो जान लेना आसान नही था। तिलक का अनुमान था कि बशीर ने उसे तांगे में बैठते नहीं देखा, इसलिए वह उसे मेले ही मे ढूंढ रहा होगा।

बात असल में यह थी कि तिलक पहले तो बशीर की नजर से ओझल हो गया था, लेकिन जब तांगे में आकर बैठा तो सहसा फिर देख लिया और वह अपनी साईकिल उठाकर मुस्तैदी से उसका पीछा करने लगा। जब तांगा इसलामिया हाई स्कूल के निकट चौरास्ते मे पहुंचा, तिलक ने देखा कि बशीर साईकिल पर सवार थोड़ी दूरी पर साथ-साथ आ रहा है। वह तांगे वाले को पहले ही लोअर की ओर चलने को कह चुका था। आगे थाना और पीछे बशीर, गिरफ्तारी निश्चित दिखाई देती थी। लेकिन वह घबराया नहीं, तांगे को चलने दिया और खुद जेब में कोई चीज टटोलते हुए साहस बटोरने लगा।

तिलक की गिरफ्तारी के लिए इनाम घोषित हो चुका था। पुलिस वाले हाथ धोकर उसके पीछे पड़े हुए थे। इनाम से अधिक नामवरी की

हुविम थी। बशीर भी इस दौड मे किसी से पीछे नही था। लेकिन दो-तीन बार धोखा खा चुका था और तिलक के बजाय ऐसे निरपराध व्यक्तियो को गिरफ्तार करा चुका था, जिन्हें पुलिस को खाहम-खाह की परेशानी के बाद साफ छोड देना पडा था। इस बार बशीर भली प्रकार जान लेना चाहता था कि वह वाकई तिलक है और ऐसी जगह पहुच गया है, जहा से उसका निकल जाना कठिन है। हो सकता है कि उसका पीछा करने से क्रातिकारियो का गुप्त ठिकाना भी मालूम हो जाये।

तागा थाने की बगल मे से होता हुआ मोहनलाल रोड पर घूम गया। चौक मे पहुचकर तिलक ने कोचवान के हाथ मे दो रुपये थमाये और उतर पडा। वहा से जो गली चगड मुहल्ले को जाती है, उसमे चद कदम तेज-तेज चलकर सहसा छू-मन्त्र हो गया। तागा सीधा मोरी दरवाजे को चला।

थोडी देर मे बशीर भी वहा आ पहुचा। मोड पर पनवाडी की दुकान थी, उससे पूछा,

"यहा अभी एक तागा आया था ?"

"जी हां।"

"वह किधर गया है ?"

"क्या, तागा ?"

"हा, तागा।" बशीर ने जोर से कहा।

"तागा तो इधर गया है।" पनवाडी ने हाथ के इशारे से बताया।

बशीर ने पैडल मारा और चल पडा; लेकिन उसे दूसरे ही क्षण ख्याल आया कि दुकानदार ने पहले पूछा "क्या तागा ?" और फिर उत्तर दिया "तागा तो इधर गया है।" उसके मन मे सदेह उत्पन्न हुआ और वह लौट कर फिर पनवाडी के पास आया।

"उसमे जो आदमी बैठा था क्या वह यहा उतर गया था ?"

"जी हा, उतर गया था।"

"वह किधर गया है ?"

"इस तरफ" पनवाड़ी ने ठीक दिशा बताई।

बशीर को मालूम था कि मुहल्ले की गलियां इतनी तंग हैं कि साईकिल के साथ पैदल आदमी का पीछा करना कठिन है। इसलिए साईकिल वहीं छोड़ दी। पनवाडी साईकिल संभालते हुए सोच रहा था कि वह एक मैल निकालने वाले का पीछा क्यों कर रहा है? शायद वह कोई इनकलाबी हो। मैंने ठीक दिशा बताकर गलती की है।

बशीर जब चौक में पहुंचा तो तिलक दीवार की ओट में खड़ा पनवाड़ी से उसकी गुफ्तगू सुन रहा था। तांगे से उतर जाने का अभिप्राय ही यह था कि उसे धोखा दिया जाये। जब वह जल्दी-जल्दी बात खत्म करके तांगे के पीछे चला तो तिलक मन ही मन प्रसन्न हुआ और सीटी बजाता हुआ आगे बढ़ा। उसे सान-गुमान भी नहीं था कि बशीर इतनी जल्दी लौट आयेगा। लेकिन प्रतिक्षण चौकन्ना रहने से उसके कान हिरण के कानों की भांति तेज हो गये थे। थोडी ही दूर चलने के उपरान्त उसे अपने पीछे भारी-भारी कदमों की चाप सुनाई दी। लौटकर देखा, बशीर था। सहसा दोनों की आंखें चार हुईं और दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया।

खतरा बिलकुल सामने था। यहां से बच निकलना असाधारण साहस का काम था।

गली लम्बी नहीं थी। तिलक ने लम्बे-लम्बे डग भरकर उसे पार कर लिया और बाईं ओर घूमकर मुहल्ले में घुस गया। बशीर का कदम भी उसके साथ ही साथ उठ रहा था और पांव की चाप साफ सुनाई दे रही थी। निस्संदेह बशीर पीछा कर रहा था और वह अकेला नहीं था। उसके पीछे पुलिस और फौज की बहुत भारी संगठित शक्ति थी।

मुहल्ले में एक तंग और अंधेरी गली थी। तिलक उसमें घुस गया। वह जानता था कि गली कहां खत्म होती है लेकिन बशीर को इस बात का ज्ञान नहीं था, उसने सोचा कि तिलक उसे चकमा देकर इन गलियों में खो जाना चाहता है, इसलिये वह भी गली में घुसा और तेजी से आगे बढ़ा। अभी दो-तीन ही कदम उठाये थे कि तिलक बगल से निकलकर सिर पर

आ गया। उनका पिस्तौल बशीर की छाती पर तना हुआ था।

"बशीर के बच्चे हरीर!" वह गरज कर बोला, "कुत्ते की तरह पीछा कर रहा है, शर्म नही आती है।"

बशीर को उम्मीद नही थी कि तिलक भरे शहर मे उस पर हमला करने का साहस करेगा। अब पिस्तौल सीने पर रखा देखकर उसके औसान खता हो गये। गली सुनसान थी और वह जानता था कि मैं किसी को सहायता के लिए नही बुला सकता। जरा आवाज निकाली और तिलक ने गोली दागी।

"खुदा के लिए मुझे छोड दो। मैं वायदा करता हू कि पीछा नही करूगा।" उसने धीमे और सहमे हुए स्वर मे प्रार्थना की।

"पीछा!" तिलक विद्रूप भाव से मुस्कराया, "पीछा तब करे, जब मैं तुझे जिंदा छोड़ू।"

"रहम!" बशीर ने मिन्नत की।

"साप की आदत है काट खाना। मैं साप पर रहम नही कर सकता।"

"लेकिन मैं साप नही, इन्सान हू।" उसके मुह से सहसा निकला।

मृत्यु को सम्मुख देखकर मनुष्य की सारी शक्तियां सजग हो जाती हैं। बशीर पेशे के लिहाज स चाहे कुछ हो, आखिर इन्सान था। उसकी आखो मे जीने की अभिलाषा—मानवता की अमर भावना उभर आई। तिलक ने इस अभिलाषा—इस भावना को देखा और पिस्तौल पीछे हटाकर बोला—

"अच्छा जा। मैं बशीर सिपाही को नही, इन्सान को छोडता हू।"

"और बशीर इन्सान वायदा करता है कि वह आइंदा किसी इनकलाबी को नुकसान नही पहुचायेगा।"

तिलक ने पिस्तौल जेब मे रखकर उससे हाथ मिलाया। फिर दोनो एक साथ गली से बाहर निकले और विपरीत दिशाओ मे चल पड़े।

× × ×

'कान का मैल' 'कान का मैल' चिल्लाता हुआ तिलक इत्मीनान से

घूम रहा था। सारा मुहल्ला छान मारा; लेकिन उसे एक भी गाहक नहीं मिला। वह घूमता-घामता पैसा स्ट्रीट में आया और एक दूकान—जिस पर 'तुफैल प्रिंटिंग वर्क्स' का बोर्ड लगा हुआ था—के सामने आकर रुक गया। उसने इधर-उधर देखा और फिर बिना झिझक दुकान के भीतर चला गया।

तुफैल काम में व्यस्त था। उसने कातिब को एक मसौदा दिया था और समझा रहा था कि उसे किस साईज पर कितना मोटा लिखना है और कब तक देना है। सामने कुर्सी पर एक गाहक बैठा था। कातिब से निपटकर तुफैल ने गाहक से बात शुरू की। वह अहरार वर्कर था और 18 × 22 साईज का एक पोस्टर छपवाना चाहता था। उससे मामला जल्द तय हो गया। जब वह दुकान से बाहर चला गया तो तिलक ने आगे बढ़कर कहा—

"सलाम हज़ूर !"

"क्या चाहिए ?"

"कान का मैल निकलवा लीजिये। गाहकों की बात ध्यान से सुन सकेंगे।"

तुफैल सोच रहा था कि लिथो की बड़ी मशीन पर क्या चीज छप रही है; इसके बाद कौनसी चीज छापनी होगी। अब सहसा चौंका और तिलक से हाथ मिलाकर बोला, "तुम क्या मुझे बहरा समझते हो ?"

"बिलकुल नहीं तो थोड़े बहुत जरूर।"

"अच्छा, तुम अंदर चलो। मैं अभी आकर मैल निकलवाता हूं।"

तुफैल के ठीक पीछे एक दरवाजे पर पर्दा लटक रहा था और उसके ऊपर 'प्राईवेट' लिखा था। दुकान में कोई दूसरा नहीं था, तिलक पर्दा उठाकर भीतर चला गया।

बत्तियों का आलोक था। वहां अंग्रेजी छापने की दो मशीनें थीं और लकड़ी के चौखटों में टाईप भरा हुआ था। पार्टी के गुप्त बंटने वाले सब पर्चे यहीं छपते थे।

उर्मिला एक चौखटे पर झुकी हुई कोई लेख कम्पोज कर रही थी, जो पार्टी के गुप्त पत्र 'बालशेविक' के लिए लिखा गया था।

"मियां बहुरूपिये सलाम ?" उर्मिला ने मुस्कुराकर तिलक का अभिवादन किया।

"सलाम, सुनाओ क्या हाल है ?"

"हाल जो है, वह देख ही रहे हो।"

उर्मिला ने एक कच्छा और आधी आस्तीन का कमीज पहन रखा था, इसलिए कि बाल आंखों पर न गिरें, उन्हें एक कपड़े से ढांपकर पीछे बांध लिया था, और हाथ कुहनियों तक कालिख में सने हुए थे। काम करते समय वह सदा यही वस्त्र पहनती थी। जब वह कम्पोज करने के लिए अक्षर उठाती थी, तो उसके होंठ धीरे-धीरे हिलते थे, जैसे वह अपने मन में कोई राग गुनगुना रही हो, आंखें प्रसन्नता से चमक उठती थीं और होंठों पर मुस्कुराहट फैल जाती थी। अगर वह सुन्दर वस्त्र पहनती तो निसंदेह आदमी उसे नहीं उसके वस्त्रों को देखना पसंद करता। लेकिन अब वस्त्र गौण थे, उसका अपना व्यक्तित्व मुख्य था, जो निखरा हुआ था। उसके अंग-अंग में विस्मरणीय कोमलता और माधुर्य था। तिलक ने एक प्रेमभरी दृष्टि उस पर डाली और कहा—

"हाल तुम्हारा अच्छा है, बहुत अच्छा। जी चाहता है कि तुम्हें देखता ही रहूं।"

"चलो, झूठे कहीं के।" उर्मिला ने तुनककर कहा।

तिलक की निगाहों के नीचे वह पहले से भी अधिक निखर गई थी। बोली, "तुम्हें हमेशा मजाक ही सूझता है।"

"मजाक नहीं उर्मिला, जब मैं तुम्हें देखता हूं तो हेलन की सुन्दरता भी हेच दिखाई देती है।"

"ओह, तुम मुझे हेलन से भी सुन्दर समझते हो ?"

"हां।" तिलक ने दृढ़ और स्पष्ट स्वर में कहा, और तनिक रुककर बोला, 'हेलन की सुन्दरता युद्ध और रक्तपात के कारण बनी, लेकिन तुम्हारी सुन्दरता दुनिया को बेहतर बनाने के लिए संघर्षरत है।"

वह रुका। खामोशी का एक लम्बा क्षण बीत गया। वह चुप और मौन खड़ा कुछ सोचता और अपने आप में डूबा हुआ, किसी मधुर और मनोहर विचार से मुग्ध होता रहा। उसने फिर एक गहरी दृष्टि उर्मिला पर डाली और कहा—

'जिस तरह मैं देख रहा हूं, काश दुनिया भी उसी तरह तुम्हारी सुन्दर आत्मा को देख सकती।"

उर्मिला इन शब्दों के सत्य से इनकार न कर सकी। तिलक उसका साथी था, हमराही था—दोनों के हृदय एक ही भावना से धड़क रहे थे।

: 32 :

खरा-खोटा

सोना कुठाली में पड़ने के बाद चमक उठता है, क्योंकि उसका खोटा अंश दूर हो जाता है। मनुष्य जब एक आदर्श के लिए कष्ट झेलता और संघर्ष करता है तो उसकी आत्मा महान और उदार बनती है, क्योंकि उसके भीतर की तुच्छता कष्टों की आंच से पिघल जाती है।

लेखराम का जीवन जेल में बीता है, जब से उसने होश संभाला है, वह आजादी के लिए और समृद्ध जीवन के लिए जेल काटता आया है। जेल काटना तो मामूली बात है, वह कभी जान पर खेल जाने से भी पीछे नहीं हटा। अब कष्ट भी उसके लिए कष्ट नहीं रहा। वह हर स्थिति में प्रसन्न रहता है। पिस्तौल के मुकदमा में उसे दो साल की कैद हुई थी। अभी कल ही रिहा होकर आया है। और मित्रों की महफिल में बैठा चहक रहा है। बातचीत का विषय पुलिस द्वारा दी गई यातनाएं और जेल जीवन का कष्ट है। इसमें कुछ भी कल्पित नहीं, सचमुच की घटनाएं हैं और संस्मरण हैं। लेकिन हर घटना को वह ऐसे सुनाता है; जैसे हुई, बीत गई और अनुभव वरदान में छोड़ गई। एक बार पुलिस ने भेद जानने के लिए उसे बराबर दो दिन दो रात जागते रखा, सोने नहीं दिया। गर्मी के दिन, कमरा बन्द और ठीक सिर के ऊपर एक हजार कंडल का बल्ब। तीसरी रात लेखराम झुंझला उठा। सिरहाना उठाकर मारा और बल्ब तोड़ दिया। बल्ब तोड़ देना इस घटना की पराकाष्ठा है, जहां लेखराम खिलखिलाकर हंस पड़ता है। योंही घटना जब भी सुनाई गई है, यहीं खत्म हुआ है और लेखराम

खिलखिलाकर हसा है। यह घटनायें और खिलखिलाकर हसना ही उसके जीवन की एकमात्र पूजी है।

मित्रो मे बैठ बातें करने के अतिरिक्त उसे पढने का शौक है। जेल मे रहकर मनुष्य पिछड जाता है और दुनिया अपनी स्वाभाविक गति से आगे निकल जाती है। इन दिनो चीन स्वतत्रता-प्रिय लोगो के लिए विशेष आकर्षण का कारण बना हुआ था, क्योकि वहा जिंदगी और मौत मे युद्ध ठना हुआ था। लेखराम जेल से आते ही एक नई पुस्तक खरीद लाया, जिसमे चीन और जापान की लडाई, और चीनियो की अतुल वीरता की कहानिया दर्ज थी। एक दिन मित्रो की महफिल मे इन कहानियो के पात्रों की कल्पना करते हुए लेखराम ने कहा—

'हमारी आजादी की जग इस समय चीन मे लडी जा रही है' '"

"माफ कीजियेगा, मैं आपको टोक रहा हू।" गोपाल ने कहा। वह कोई बात कहने के लिए बडी देर से आतुर था।

' बडे शौक से। टोकोग नही तो सीखोगे क्या ?"

लेखराम का स्वर अगर सयत और गभीर न होता तो लोग शायद हस पडते और बात मजाक मे उड जाती। गोपाल प्रोत्साहित हुआ और बोला,

"चीन कमजोर है, उसे अपनी ही जान के लाले पडे हुए हैं, वह हमारी आजादी के लिए क्या लडेगा ?"

"कमजोर है तो क्या हुआ, शुरू मे हमारा जनादोलन भी तो कमजोर था, अब उसने कितनी शक्ति प्राप्त कर ली है।' इस बार प्रह्लाद ने कहा।

' तुम बे-मतलब बात करते हो।"

"समझने की कोशिश करो, मैं ठीक कह रहा हू। हम जनतत्र के लिए लड रहे हैं, चीन जनतत्र के लिए लड रहा है और जनतत्र के लिए लडने वाले दिन-दिन सशक्त होते आ रहे हैं।"

गोपाल और प्रह्लाद आपस में उलझ गए। प्रह्लाद सिद्ध करना चाहता था, कि चीन वाकई हमारी आजादी की लड़ाई को आगे बढ़ा रहा है। उसने पहली बार अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण को आधार बनाकर बहस शुरू की थी। अधिक स्पष्ट न होते हुए भी वह अपनी बात को उत्साह और विश्वास के साथ कह रहा था। लेकिन गोपाल अपनी मानसिक परिधि से निकलने को तैयार न था। वह यह समझने में सर्वथा असमर्थ था कि चीन अथवा कोई दूसरा देश हमारे आजादी के आंदोलन को आगे कैसे बढ़ा सकता है। लेखराम ने देखा कि उनकी बहस किसी निर्णय पर पहुंचने के बजाय वितर्क-सा बन गई है, उलझ गई है।

"देखिए" उसने प्रह्लाद और गोपाल दोनों को संबोधित किया, "इसमें बहस की ज्यादा गुंजाइश नहीं। दो और दो चार होते हैं। अगर एक आदमी प्रतिक्रियावादी शक्तियों को छोड़कर ईमानदारी से प्रगतिशील शक्तियों का साथ देने लगता है तो निसंदेह हमारी आजादी पहले से निकटतर आ जाती है। और अगर एक पूरे देश में और बड़े देश में प्रगतिवाद और जनतंत्र की जीत होती है तो सोचिए हमारी आजादी कितनी निकट आ जाती है।"

प्रह्लाद मुस्कुराया और गोपाल लेखराम की ओर विस्मय से देखने लगा। लेकिन मदन अपनी ही महानता से मुग्ध होकर बोला—

"गोपाल, मैं अपनी बात फिर दोहराता हूं कि तुम कुछ समझते नहीं हमेशा बच्चों की सी बातें करते हो।"

गोपाल ने घूरकर मदन की ओर देखा। उसके गाल क्रोध से तमतमा उठे। वह भीतर ही भीतर उबल रहा था; कठोर बात कहने के लिए शब्द नहीं मिल रहे थे।

"कोई बात नहीं हम सभी बच्चों की-सी बातें करते हैं।"

लेखराम ने परिस्थिति को संभाला।

"और अहंवादी बनने से तो अच्छा है कि आदमी बच्चा ही बना रहे।" नारायण के तीखे स्वर ने सबको चौंका दिया।

'मुझे वर्डज़वर्थ की कविता याद आ रही है।" लेखराम ने अपने सफेदी मिल भूरे बालो को दोनो हाथो से पीछे हटाते हुए कहा, "वह कहता है कि इन्द्र धनुष को देख मेरा मन बल्लियो उछलने लगता है, जिस प्रकार बचपन मे उछला करता था। मनुष्य और बच्चे मे अटूट सबध है। बच्चा मनुष्य का पिता है।"

बात कविता और दर्शन के गिर्द घूम गई। प्रसिद्ध कवियो के अनेक पद और कथन लेखराम के मस्तिष्क मे सकलित थ। वह जब कोई पद अथवा शेर पढता तो कविता से अनभिज्ञ लोग भी झूम उठते। खुद पढने और उससे सुनने मे बडा अतर था। पुस्तक के शब्द ठोस, ठडे और जड होते हैं। लेकिन वही शब्द जब लेखराम के मुख से निकलते हैं तो वे सप्राण और सशक्त बन जाते हैं, उनमे एक विचित्र स्निग्धता और ताजगी आ जाती है इसीलिए उसकी महफिलें खूब जमती हैं।

लेखराम को रिहा हुए दस-पद्रह दिन ही बीते थे, कि ओकाढा मे मजदूर कार्फेस हुई। साल भर पहले वहा शानदार सफलता प्राप्त हुई थी। रामदास ने यूनियन के पौधे को खून से सीचकर जवान किया था। उसके झडे तले सब मजदूर सगठित हो गए थे। मनचदा की अब वहा जरूरत नही रह गई थी। मिल मालिक ने उसे अपनी अहमदाबाद की मिल मे भेज दिया था। अब वह वहा मजदूरो को अध्यात्मवाद का पाठ पढाता था और मिल-मालिको को पिता के तुल्य समझने की सीख देता था। उसका अनुभव चूकि अब काफी बढ गया था, इसलिए तनखाह भी बढ गई थी। सदीक, बचरी, करमा, रहमा और नदा सभी एक यूनियन मे थे। आपस मे धडे-बाजी खत्म हो चुकी थी। जाबर अब उनपर जुल्म नही कर सकते थे। मजदूरो ने अपने हित को और यूनियन के महत्व को समझ लिया था और वे कार्फेस की सफलता के लिए प्रयत्नशील थे।

कार्फेस वाकई सफल रही। मजदूरो के अलावा आसपास के देहात से किसान भी भारी तादाद म शामिल हुए। ताया चेतसिह भी अपने गाव से एकजत्था साथ लाया था वह अब देहात मे ही काम कर रहा था। उसका

बेटा कृपालसिंह इलाके की किसान सभा का सेक्रेटरी था। वह लोगों से उसके काम की प्रशंसा सुनकर खुश होता था। और खुद काम करता था। अंग्रेज़ी पढ़ना छूट गया था, दूसरे ही कामों से फ़ुर्सत नहीं मिलती थी। लेकिन जब कभी तारासिंह से भेंट होती, वह ज़रूर पूछ लेता—"सुनाओ ताया, अंग्रेज़ी कितनी पढ़ ली। लकड़ी की जबान में भी लचक आई या नहीं ?"

कांफ्रेंस 17 मई को शुरू हुई और पहले ही दिन हंगामा शुरू हो गया। जगदीश को प्रधान चुना गया। उसने जो भाषण दिया, उसकी लगभग सभी बुनियादी बातों पर अशोक और लेखराम सहमत नहीं थे। म्यूनिख की संधि के बाद परिस्थिति तेजी से बदल रही थी। युद्ध अनिवार्य दिखाई देता था जगदीश ने आने वाले युद्ध का उल्लेख विशेष रूप से किया और हिटलर की नीति, शक्ति और प्रोग्राम को खूब सराहा। उसके नेशनल सोशलिज्म के बारे में यहां तक कह दिया कि मार्क्सवाद का युग खत्म हुआ, अब नेशनल सोशलिज्म का युग शुरू होता है और इसी में हमारे युग की कठिनाइयों का हल होगा।

अशोक ने जगदीश के लेखों से जिस प्रवृत्ति को भांप लिया था, वह अब स्पष्ट रूप में सामने आई। विरोध अनिवार्य था। जगदीश के बाद लेखराम भाषण करने खड़ा हुआ। उसने मजदूरों, किसानों की समस्याओं पर, संगठन और वर्ग-संघर्ष पर प्रकाश डाला और दुनिया में जो बेकारी और मंदवाड़ा फैला हुआ था, उसके राजनीतिक कारण बताते हुए कहा—

"इस समय दुनिया में तीन शक्तियां काम कर रही हैं। एक प्रगतिशील शक्ति है, जो सोशलिज्म और जनतंत्र की शक्ति है, और जनता की शक्ति है। हम इस शक्ति के साथ हैं, क्योंकि हम भी अपने देश में अपनी जनता का राज चाहते हैं, बेकारी और भूख का अंत चाहते हैं। दूसरी साम्राज्यवाद की शक्ति है, जो दुनिया की मंडियों पर कब्जा जमाये हुए है, जो इसलिए युद्ध के खिलाफ है कि उसे अपनी मंडियों के छिन जाने का भय है। हम साम्राज्यवाद के विरुद्ध हैं, क्योंकि इन्हीं लोगों ने हमें गुलाम बना

रखा है, और हमारा खून चूस रहे हैं। तीसरी शक्ति जो साम्राज्यवाद ही का घिनौना रूप है, फासिस्तवाद है। जर्मनी, जापान और इटली के सरमायादार सौदागर दुनिया की मंडियो पर अपना कब्जा चाहते हैं। हिटलर उन्ही का प्रतिनिधि है। वह अंग्रेज का दुश्मन इसलिए है कि अंग्रेज मंडियो पर पहले से छाया हुआ है। हम भी अंग्रेज शासक वर्ग को अपना दुश्मन समझते हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नही कि हिटलर हमारा दोस्त है, बल्कि वह भी हमारा दुश्मन है, अंग्रेज से भी बडा दुश्मन है क्योंकि वह समस्त प्रगतिशील और जनवादी शक्तियो को कुचल देना चाहता है। वह चाहता है कि अंग्रेज साम्राज्यवादियो की जगह जर्मन साम्राज्यवादी हमारा खून चूसें······"

लेखराम ने एक चुभती-सी नजर जगदीश पर डाली और आगे कहा, "युद्ध होगा तो हम अंग्रेज की कमजोरी से लाभ उठायेंगे और देश को आजाद कराने का प्रयत्न करेंगे। लेकिन हम हिटलर की जीत नही चाहेंगे, क्योंकि हिटलर की जीत जनता के दुश्मन की जीत। हिटलर की नीति का वही लोग समर्थन कर सकते हैं, जो किताबें चाटकर विद्वान् बने हैं। जिन्हें जनशक्ति पर भरोसा नही है, जो अपाहिज और विवश हैं और जो दुनिया की बढती हुई शक्तियो को नही पहचानते। वे लोग दया के पात्र हैं। उनके लिए मार्क्सवाद मर चुका है और उनके नजदीक नेशनल सोशलिज्म ही इस युग की समस्याओ का एक मात्र हल है। लेकिन मैं उन्हे बता देना चाहता हू कि वह अपने आपको धोखा दे रहे हैं, जनता को धोखा दे रहे हैं, वे एक बहुत बडी भूल कर रहे है और इतिहास इस भूल को कभी माफ नही करेगा ·····"

लेखराम जनता के लिए जीवित था, जनता की शक्ति को अपने भीतर अनुभव करता था और जनता को अपने साथ बहा ले जाने मे समर्थ था। लोग मन्त्र-मुग्ध से उसका भाषण सुन रहे थे और बार-बार तालिया पीटकर अपनी मनोभावनाएं व्यक्त कर रहे थे।

पहला अधिवेशन संक्षिप्त था। इस भाषण के बाद खत्म हो गया। लेकिन जो बहस चल पडी थी, वह इसके बाद भी जारी रही। जगदीश इस

बात से चिढ़ गया कि खुले अधिवेशन में उसका विरोध हुआ है और विरोध उन लोगों ने किया है, जिन्हें वह सियासत पढ़ा सकता है। अशोक ने लेखराम के प्रत्येक शब्द का समर्थन करते हुए कहा कि जगदीश का यह मत इसलिए बना है कि वह जन-संपर्क और उनके संघर्ष से अलग रहता है, निरा बुद्धिजीवी है।

दो-तीन घंटे बात होती रही। लेकिन उनमें और जगदीश में कोई समझौता न हो सका। वह कान्फ्रेंस छोड़कर चला गया। दूसरे अधिवेशन का सभापतित्व खुद लेखराम ने किया।

33

लोहे के मोजे

पार्वती का जीवन दिन दिन बोझिल होता जा रहा था। वह उदास और खिन्न रहती थी। एक ओर जेल मे बन्द पति की चिन्ता और दूसरी ओर बच्चो की। राज हठी और आवारा होता जा रहा था। उसके मन म मा का तनिक भी आदर-सत्कार नही था। हा, बिना बात ही उस झिडक देता था। बेटे के व्यवहार से मा का जी जल जाता। वह जिसक पास अपना दुखडा रोए कोई उसे समझाने वाला नही था। पति जेल न जाता तो राज यो कभी न बिगडता। एक उसी की बात नही, देखा देखी दूसरे बच्चो क बिगड जाने की सम्भावना थी, ऊषा भी उसका कहना कम मानती थी। उसके भीतर सन्तोष नही था। परेशानिया बढ रही थी, प्रतिक्षण अभाव-सा खटकता। रहने को मकान मिला हुआ था। अशोक नारायण और दूसरे लोग उसका हर तरह ध्यान रखते थे, बच्चो से प्यार करते थे लेकिन यहा घर का वातावरण नही था। जब वह मुहल्ले मे रहती थी तो दूसरी औरतों मे मिल बैठती थी। उनके दुख सुख की बातें सुनती और अपनी उन्हे सुनाती थी। यहा कौन ऐसा था, जिसके सामने वह अपने दिल का बोझ हल्का करे? ये लोग मनमौजी थे, अजीब मिट्टी स बने मालूम पडते थे, जैस दुखो का उनके लिए कोई अस्तित्व ही न हो। जेल जाना उनके लिए मामूली बात थी। वे क्या जानें कि पति क जेल चल जान के बाद एक स्त्री पर क्या गुजरती है। उसके सपने भयानक रूप धारण कर लेते हैं! वे अनोखी और विचित्र बातें करते थे, जो पार्वती की समझ मे खाक नही आती थीं।

बात से चिढ़ गया कि खुले अधिवेशन मे उसका विरोध हुआ है और विरोध उन लोगो ने किया है, जिन्हें वह सियासत पढ़ा सकता है। अशोक ने लेखराम के प्रत्येक शब्द का समर्थन करते हुए कहा कि जगदीश का यह मत इसलिए बना है कि वह जन-संपर्क और उनके संघर्ष से अलग रहता है, निरा बुद्धिजीवी है।

दो-तीन घंटे बात होती रही। लेकिन उनमें और जगदीश में कोई समझौता न हो सका। वह कान्फ्रेंस छोड़कर चला गया। दूसरे अधिवेशन का सभापतित्व खुद लेखराम ने किया।

· 33

लोहे के मोजे

पार्वती का जीवन दिन-दिन बोझिल होता जा रहा था। वह उदास और खिन्न रहती थी। एक ओर जेल मे बन्द पति की चिन्ता और दूसरी ओर बच्चो की। राज हठी और आवारा होता जा रहा था। उसके मन मे मा का तनिक भी आदर-सत्कार नही था। हा, बिना बात ही उसे भिडक देता था। बेटे के व्यवहार से मा का जी जल जाता। वह जिसके पास अपना दुखडा रोए, कोई उसे समझाने वाला नही था। पति जेल न जाता तो राज यो कभी न बिगडता। एक उसी की बात नही, देखा-देखी दूसरे बच्चो के बिगड जाने की सम्भावना थी, ऊषा भी उसका कहना कम मानती थी। उसके भीतर सन्तोष नही था। परेशानिया बढ रही थी; प्रतिक्षण अभाव-सा खटकता। रहने को मकान मिला हुआ था। अशोक, नारायण और दूसरे लोग उसका हर तरह ध्यान रखते थे, बच्चो से प्यार करते थे, लेकिन यहा घर का वातावरण नही था। जब वह मुहल्ले मे रहती थी तो दूसरी औरतों मे मिल बैठती थी। उनके दुख-सुख की बातें सुनती और अपनी उन्हे सुनाती थी। यहा कौन ऐसा था, जिसके सामने वह अपने दिल का बोझ हल्का करे? ये लोग मनमौजी थे, अजीब मिट्टी से बने मालूम पडते थे, जैसे दुखो का उनके लिए कोई अस्तित्व ही न हो। जेल जाना उनके लिए मामूली बात थी। वे क्या जानें कि पति के जेल चले जाने के बाद एक स्त्री पर क्या गुजरती है। उसके सपने भयानक रूप धारण कर लेते हैं। वे अनोखी और विचित्र बातें करते थे, जो पार्वती की समझ मे खाक नही आती थी।

"तुम चिंता न करो बहन, हम लोग बड़े आराम से रहते हैं वहां।"

लेखराम जब जेल से आया, तो उसने पार्वती के एक प्रश्न के उत्तर में कहा था। लेकिन पार्वती कैसे मान ले कि लोग जेल में भी आराम से रहते हैं।

लेखराम की एक बड़ी बहन थी, जिसने उसे पाल-पोसकर जवान किया था। मां बचपन ही में मर गई थी। वह बहन भी अब इस दुनिया में नहीं थी। लेखराम पार्वती को उस बहन के रूप में देखता था; उसका आदर करता था, उसकी बातें ध्यान से सुनता और हमदर्दी से पेश आता था। लेकिन यही हमदर्दी पार्वती को झंझोड़ देती थी और उसका मन विषाद और कटुता से भर जाता था।

मनुष्य की आत्मा संतुष्ट उस समय होती है, जब उसे किसी की हमदर्दी अपेक्षित न हो।

लेखराम जो बात पार्वती को सांत्वना देने के लिए कहता था, उसी से दुख का पहलू निकल आता था क्योंकि उन दोनों के सोचने समझने में अंतर था; उनके दृष्टिकोण में सामंजस्य सम्भव नहीं था। एक दिन बच्चों को पढ़ाने की बात चल रही थी, लेखराम बोला—

"बहन जी, तुम खुद भी पढ़ना शुरू कर दो।"

"मैं!" पार्वती ने आंखें झपकाईं और चकित-सी लेखराम की ओर देखती रह गई, जैसे उसे सुनी हुई बात का विश्वास न हो, जैसे वह स्वप्न देख रही हो।

लेखराम संयत और गम्भीर सामने बैठा था। उसकी बात को अनसुनी करके टालना सम्भव नहीं था।

"मेरी अब पढ़ने की कौनसी उम्र है?" पार्वती ने धीमे से कहा।

"बहन, पढ़ने की कोई उम्र नहीं होती। मनुष्य अगर मरने से दो मिनट पहले भी अकल की बात सीख ले, तो मूर्ख रहकर मरने से अच्छा है।"

लेखराम ने अपनी बात धीमे स्वर में कही और चुप हो गया। लगता था जैसे वह कोई ऋषि और तपस्वी है, सदियों का अनन्त सत्य उसके सीने

मे छिपा है और अब उसी सत्य के एक अश का उद्घाटन हुआ हो।

दोनो मौन थे। सिर्फ लेखराम के अन्तिम शब्द कमरे में गूज रहे थे। पार्वती को यह शब्द अमर, अनन्त और जाने-बूझे से जान पडे, जैसे वह उन्हें बचपन हो से सुनती आई हो। तनिक सोचा तो स्मरण हो आया।

एक बार वह अपनी मा के साथ कथा सुनने गई थी। पडित ने कहा था कि किसी पापी और दुष्ट के कानो मे मरते समय ज्ञान के दो अक्षर पडने से उसे मुक्ति मिल गई। ज्ञान मुक्ति का भाग है। पार्वती इस सत्य को मानती थी। उसके मन मे भी कई बार पढने की लालसा उत्पन्न हुई थी। उसने सोचा था कि लोग जो अनोखी बातें करते है, उन्हे वह समझ सके। बलवन्त जब नौकरी छोड कर काग्रेस मे भर्ती हुआ था तो पार्वती ने अत्यन्त दुखी होकर कहा था—"अपना नही तो बच्चो का ही ख्याल कर लिया होता।" पति ने हस कर उत्तर दिया था : "मैंने जिस उद्देश्य के लिए नौकरी छोडी है, वह तुमसे, मुझसे और बच्चो से बहुत बडा है।"

पार्वती पति के मुह की ओर ताकती रह गई। उसने अपने शब्दो को फिर दोहराया—"बहुत बडा है वह उद्देश्य पार्वती। काश, तुम समझ सकती! वाकई वह उद्देश्य बहुत बडा है। हा, हा!"

बलवन्त के भीतर से कहकहे फूट रहे थे और आखो मे उन्मत्त उल्लास था। पार्वती चकित और स्तब्ध उसकी ओर देख रही थी। वह उसके उन्माद और उल्लास से प्रभावित थी। तब उसने सोचा था काश मैं भी कुछ पढ लेती, पति के इस उद्देश्य को समझ पाती।

इसके बाद बलवन्त जेल का जीव बन गया। पार्वती की परेशानिया बढती रही, बच्चे जान खाते रहे और गृहस्थी सुखद और समृद्ध होने के बजाये दुखद और विपन्न होती रही। नौकरी छोडने का अर्थ पागलपन के अतिरिक्त कुछ न जान पडा। पार्वती की सारी उमगें, सारी आकाक्षाएं शिथिल पड गई। इतनी शिथिल कि लेखराम के शब्द भी स्फूर्ति और स्पदन न ला सके। पूषी फर्श पर बैठी खेल रही थी। पार्वती उसे घुटनो

पर बिठाकर उसके बाल संवारने लगी और लेखराम की ओर बिना देखे ही बोली --

"है तो ठीक, पर अब मैं बच्चे पालूं या किताबें पढ़ू ?"

दरवाज़े की ओर पार्वती की पीठ थी। जब वह यह शब्द कह रही थी, शीला और पद्मा ने कमरे में प्रवेश किया। शीला अक्सर पार्वती से मिलने और बच्चों की ख़ैर-ख़बर पूछने आ जाती थी। कई बार पद्मा भी उसके साथ होती थी। आज भी वह दोनों आई थीं। अभिवादन के पश्चात् चारपाई पर बैठते हुए पद्मा ने पूछा—किताबों की क्या बात हो रही थी भाभी ?"

पार्वती ने सोचा था कि वे आ गईं तो अब पढ़ाई की चर्चा नहीं चलेगी। पद्मा ने यह प्रश्न पूछा तो फिर उसी उलझन में फंस जाने की आशंका उत्पन्न हुई।

"कुछ नहीं योंही बच्चों की पढ़ाई की बात हो रही थी।" वह बात टालने के भाव से बोली—

"और मैं इनसे कह रहा था कि बहनजी आप खुद भी पढ़िए।" लेखराम ने भेद खोल दिया।

"बात तो ठीक है।" पद्मा ने समर्थन किया।

"आपको एतराज़ है कि मैं अब बच्चे पालूं या किताबें पढ़ूं।"

"पर भाभी, किताबें पढ़कर बच्चे पालना और भी आसान हो जाता है।"

"अच्छा !" पार्वती ने पलकें हटाकर पूर्ण दृष्टि से पद्मा को देखा और मुस्कुराकर कहा, "तब तो तुम खूब बच्चे पालोगी !"

यह भाभी का ननद से मज़ाक था; लेकिन पद्मा ने बिना किसी संकोच के सगर्व उत्तर दिया, "क्यों नहीं किताबें पढ़ी हैं, तो बच्चे पालना भी खूब आता है।"

पार्वती जब कुंवारी थी, बच्चे तो क्या अपने ब्याह की बात सुनकर लजा जाती थी। लेकिन पद्मा अजीब ढीठ लड़की थी कि बड़ी बहन और

एक मर्द की उपस्थिति मे बच्चे पालने की बात सगर्व कह रही थी और फिर किसी के चेहरे पर अप्रसन्नता नही थी, विरोध-भाव नही था। पार्वती मन ही मन मे सोचने लगी —"यह कैसे लोग हैं, जो अनहोनी बात की भी निन्दा नही करते।" इस परिस्थिति मे वह स्वय भी कुछ नही कह सकी। उसका अपना सिर लज्जा से झुक गया, और वह पूशी की पीठ सहलाने लगी।

"मैं एक मज़ेदार बात सुनाऊ।" लेखराम ने निस्तब्धता भग की, "चीन के लोग भी हमारी तरह रूढिवादी थे। उनका खयाल था कि जो औरत किताब पढती है, वह सारी उम्र बाझ रहती है।"

'जो लोग औरत के पाव बाधकर उसे अपाहिज बना देते हो, उनसे और क्या आशा हो सकती है।" पद्मा ने तुनककर कहा।

"लेकिन अब चीन बदल रहा है।" लेखराम ने एक क्षण चुप रहकर कहा, "वहा अब मर्द बदल गये हैं, औरतें बदल गई हैं। पाव बाधने का रिवाज नही रहा।"

पार्वती ने चीन का नाम सुन रखा था, लेकिन उसके बारे मे कोई बात उसे मालूम नही थी। वह एक अबोध बालक की भाति लेखराम की ओर देखते हुए बोली—"पाव बाधने का भी कोई रिवाज हो सकता है ?"

'हा बहन, था।" लेखराम ने सहज भाव से कहा, "वहा जब लडकी पैदा होती थी, उसके नन्हे-नन्हे पाव पर लोहे के मोजे पहना दिये जाते थे, ताकि वह बढ न सकें, ताकि लडकी बडी होकर आजादी से चल-फिर न सके।"

"यह भी कोई रिवाज है, निरा पागलपन है। नही, यह नही हो सकता।" पार्वती न आश्चर्य से हाथ मलते हुए कहा।

"हो क्यो नही सकता, भाभी ? अब तक होता रहा है।"

पद्मा बोली। वह कुछ और भी कहना चाहती थी, लेकिन हठात् रुक गई और पार्वती की ओर देखने लगी। पार्वती, जिसने अपने समाज की हर पाबन्दी को स्वीकार कर लिया था, चीन के इस रिवाज पर झुझला उठी।

उसने अपना सिर जिन्दगी में पहली बार ऊपर उठाया और नारीत्व की समस्त शक्ति आंखों में खिंच आई।

"यह रिवाज नहीं, जुल्म है। मैं अगर चीन मे पैदा होती तो पांव बंधवाने से साफ इन्कार कर देती।" पार्वती तुनककर बोली।

पद्मा और लेखराम मुस्कराये; लेकिन शीला बदस्तूर सौम्य और गम्भीर बनी रही। उसके चेहरे पर विनम्रता और कोमलता का भाव अंकित था और बड़ी-बड़ी आंखें प्रत्येक वस्तु को स्नेहपूर्वक देख रही थीं। बालों की एक लट आगे लटक रही थी, जिसके कुछ बाल स्याह और कुछ सफेद थे। उसके बायें हाथ पर एक चूड़ी थी, जो इस बात का प्रतीक थी कि वह भी कभी सुहागन रह चुकी है।

पार्वती काफी देर मन ही मन प्रसन्न होती रही, अपने शब्दों पर गर्व करती रही। उसका चेहरा नव विकसित फूल के सदृश खिल उठा था। उसने पूशी को प्यार से झंझोड़ा। गोद से उतार कर फर्श पर खड़ा कर दिया और उसके नन्हे-नन्हे पावों को देखने लगी। मां का प्यार देख बच्ची लहक उठी और ठुमक-ठुमककर चलने लगी जैसे कह रही हो—"मा मैं अपने पाव पर चलूंगी, दौडूंगी, नाचूंगी। किसी को बाधने की इजाजत नही दूंगी।"

पूशी को लहकते देखकर शीला भी मुस्कुराई और बांहें फैलाकर उसे अपने पास बुलाया, लेकिन वह उसके पास आने के बजाये एक ओर को दौड गई और गुड़िया उठाकर खेलने लगी।

"भाभी!" पद्मा जो बात कहते-कहते रुक गई थी, उसने अब यों कहा, "चीन का यह रिवाज तो वाकई जुल्म है; पर कभी अपने देश पर भी दृष्टि डाली? हमारे पांव तो नही बांधे जाते; लेकिन दिमाग पर लोहे के मोजे जरूर पहना दिये जाते हैं। हम जिन धर्मशास्त्रों को मानते हैं, उन्होने औरत को कोई चीज ही नही समझा। वह बचपन मे पिता के, जवानी में पति के और बुढ़ापे में पुत्र के आधीन है। पुरुष, पुरुष, पुरुष! बस वह हमेशा पुरुष की गुलाम है और उसके लिए आजादी से सांस लेना पाप है।"

घोंघे को अपने मिट्टी के घर से प्यार होता है। वह उसे टूटते देखना

नहीं चाहता। पार्वती को पद्मा की यह बात नागवार गुजरी और वह उसका वार रोकते हुए बोली—

"इसमे क्या बुराई है, औरत मर्द के बराबर तो नही हो सकती?"

"क्यो नही हो सकती? मर्द मे कौन-सा सुर्खाब का पर लगा है, जो औरत मे नहीं होता।" पद्मा ने तुनककर कहा, "देखा जाये तो औरत का दर्जा मर्द से ऊचा है। वह अपने रक्त से नव-जीवन का निर्माण करती है, उसके लिए कष्ट झेलती है।"

शीला ने बहन की ओर सगर्व देखा। कभी उसमे भी इतना ही जोश था। सामाजिक रूढियो के विरुद्ध वह इसी तरह झुझला उठती थी। लेकिन विद्रोह के जो मनसूबे बाधे थे, वे पूरे नही हुए। उसे खुद इन रूढ़ियो के सामने झुकना पडा। प्रकाश ऐसे आवारा और शराबी पति को वह अपना पवित्र शरीर सौंपने पर विवश हुई थी। और जो पुरुष उसकी आत्मा मे समा गया था, उसे अगुली तक छूने की आज्ञा नही थी कि कही दुनिया को उस आदर्श से घृणा न हो जाये, जिसे वह शरीर और प्राण दोनो से अधिक प्यार करती है।

समाज की पूरी व्यवस्था बदले तो वह क्रान्ति है और कोई एक व्यक्ति स्वेच्छा से उसकी मान्यताओ को तोडे तो वह अराजकता है। क्रान्ति कल्याणकारी है और अराजकता अमगल और घृणित है।

"अच्छा बीबी, तुम करना मर्दों की बराबरी। हमने तो इतनी उम्र व्यर्थ खोई है।" पार्वती ने तनिक खीझ कर कहा।

"पार्वती बहन, नाराज होने की जरूरत नही।" शीला ने विनम्र और मधुर स्वर मे कहा, "जमाने-जमाने की बात है। हमने अपने जमाने के अनुसार जीवन बिताया और ससार की सेवा की। ये नई लडकिया अपना समय अपने ढग से बितायेंगी। किसी की उम्र व्यर्थ नही जाती।"

पार्वती जो थोडी देर पहले इतनी प्रसन्न थी, अब उतनी ही उदास हो गई। शीला की ढाढस भी उसे सात्वना न दे सकी। यह लोग उसे झझोड कर योंही विवर्त में धकेल देते, वह चकरा जाती और उसे कोई सहारा न दीखता।

पद्मा चुप बैठी थी। उसका चेहरा कठोर था। सिर्फ लेखराम पूसी से खेल रहा था। वह गुड्डी रखकर गेंद उठा लाई थी। लेखराम उसे उछाल रहा था। गेंद जितना ऊपर उठती पूसी उतना ही खुश होती और लेखराम से फिर उछालने का आग्रह करती थी।

"दूसरे बच्चे कहां हैं?" शीला ने पार्वती से पूछा।

"ऊषा स्कूल गई है, महेंदी ऊपर नारायण के पास होगा।"

और नारायण ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ में एक मासिक पत्रिका थी।

"आप लोगों को आधुनिक नारी दिखाऊं।" वह आते ही बोला।

उसने एक पृष्ठ खोलकर पत्रिका फर्श पर रख दी। सब की निगाहें एक चित्र पर गड़ गईं, जिसमें एक रमणी कुतब की लाट के पास खड़ी थी। उसका चेहरा भरा हुआ गोल-मटोल था और बांहें सुडौल थीं। उसने ब्लाऊज़ पहन रखा था। साड़ी सिर से कंधों पर ढलक गई थीं, मुख मुद्रा गम्भीर और आंखों में कोई दृढ संकल्प था। ठोस और बुलंद लाट के सम्मुख यों खड़ी थी जैसे क्षण-क्षण ऊपर उठ रही है और लाट से भी ऊंचा उठ जाना चाहती हो।

"पद्मा जीजी!"

महेंदी चिल्लाया और दौड़कर पद्मा की गोद में जा बैठा। वह नारायण के साथ ही चला था; लेकिन सीढ़ियां देर से उतरा।

और सब ने देखा कि चित्र की रमणी और पद्मा में विस्मयजनक साम्य है।

34

धुंधला आकाश

समय बीत रहा था और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति तेजी से बदल रही थी। आठवें महीने की पच्चीस तारीख थी। अशोक दफ्तर मे बैठा था, उसके सामने बहुत से अखबार पड़े थे, वह उनके सम्पादकीय पढ रहा था। पत्र विभिन्न थे, लेकिन उन सब के शीर्षक मिलते-जुलते थे—"कम्यूनिज्म फासिज्म की गोद मे" "डिक्टेटर से गठजोड" आदि-आदि। इन शीर्षकों के नीचे इन पत्रो के सुयोग्य सम्पादको ने कलम के जो चमत्कार दिखाये थे, उन्हें पढकर अशोक मुस्कुरा रहा था, जैसे वह 'अलिफ लैला' की कहानिया अथवा 'तोता मैना' के किस्से पढ रहा हो।

म्यूनिख की सधि के नौ-दस महीने बाद एक ऐसी घटना घटित हुई, जिसकी आशा नही थी और जिसने सारी दुनिया को चौंका दिया। घटना ऐतिहासिक थी। रूस और जर्मनी मे तटस्थ सधि हुई थी। दोनो मे तय पाया था कि वे एक दूसरे पर हमला नही करेंगे। रूस की ओर से यह म्यूनिख की सधि का तोड था। फ्रास और ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री हिटलर की जिन तोपो का मुह रूस की ओर घुमा आये थे, वे एक बार फिर उन्ही के सीनो पर तन गई थी। पूजीवादी प्रेस बिलबिला उठा। वह सोवियत रूस पर फासिस्टवाद की सहायता का आरोप लगा रहा था। जनतन्त्र और समानता की दोहाई देकर उसे कोस रहा था। उनका कहना था कि रूस मे व्यक्तिगत स्वाधीनता का अभाव है, एक सर्वाधिकार सम्पन्न व्यक्ति सब को भेडों की तरह हाक रहा है। अन्त मे ट्राटस्की और उसके साथियो के मुकदमे की हजारो बार दोहराई गई कहानी को एक बार फिर दोहरा कर पाठको को स्टालिन की तानाशाही से अवगत किया था।

"कामरेड अशोक, इतना, खु···खुश हो रहे हो, क्या जंग की कोई सूरत प···पैदा हो गई है ?"

पराशर ने बीड़ी का कश लगाते हुए कमरे में प्रवेश किया और अशोक को मुस्कुराते देख यह प्रश्न पूछा।

वह चार-पांच महीने के बाद लाहौर आया था। कांगड़ा जिला में उसका एक चचेरा भाई रहता था, नन्ही को साथ लेकर वह उसके पास चला गया था। अब वह पहले से स्वस्थ था। जल-वायु के परिवर्तन से उसके सूखे गालों पर कुछ सुर्खी आ गई थी। वह पिछले तीन दिन से ठीक अखबार पढ़ने के समय आ रहा था। इस संधि से जो नया वातावरण बन गया था, वह उसे पहाड़ के स्वास्थ्यवर्धक वातावरण से भी अधिक सुखकर जान पड़ता था। सोचने का उसका अपना ढंग था। उसका खयाल था कि जर्मनी रूस की ओर से निश्चिन्त हो गया है, अब वह अंग्रेजों से अवश्य लड़ेगा। जिस युद्ध का उसे मुद्दत से इन्तजार था, वह अब अनिवार्य है दुनिया युद्ध की कल्पना मात्र से घबरा रही थी; लेकिन पराशर खुश था। इसलिए उसने मुंह से धुआं छोड़ते हुए पूछा—"कामरेड अशोक, इतना खुश हो रहे हो, क्या जंग की कोई सूरत पैदा हो गई है ?"

अशोक ने पराशर की ओर देखा और उसे अपने करीब बिठाते हुए कहा—

"जंग तो होगी, इसमें अब संदेह नहीं।"

पराशर के होंठों पर मुस्कुराहट दौड़ गई। लेकिन अशोक पहले से अधिक गम्भीर हो गया। वह पराशर के भीतर की उस कटुता को देख रहा था, जिसने इस मुस्कराहट को जन्म दिया था। पराशर ने बीड़ी का कश लगाकर धुआं ऊपर छोड़ा, तो मुस्कुराहट भी हवा में बिखर गई।

"मुझे इन लोगों पर हंसी आती है।" अशोक ने अखबारों की ओर देखते हुए कहा, "सम्पादक बने फिरते हैं, एक भी बात अक्ल की नहीं करते। रूस को कोसना जैसे इनका ईमान बन गया है।"

"इनकी बात ही छोड़िये।" पराशर ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा, "ईमान शिमान कुछ न···नहीं। इनका ध···धर्म है पैसा। हरेक बुद्धूमल

बधाऊमल चाहे वह सातवीं जमात फेल हो, पैसे के जोर से अखबार न ·· नवीस बन बैठता है। ये लोग अगर सात पुश्त त ··तक भी पढते रहें, इतना न·· नहीं समझ पायेंगे कि सयासत किस चिड़िया का न नाम है। इन्हें दूसरों को बुद्धू बनाने से मतलब है।" और एक खबील कश लगाकर फिर बोला, "यह बताइये जग ब ब त · तक शुरू हो जायेगी?"

"पराशर जी, जग को अब शुरू ही समझो। ताकतें तुली खड़ी हैं। ऐलान की देर है। कल हो जाये, चार दिन बाद हो जाये। होगी जरूर।"

"एक बार शुरू होने द···दो, फिर अंग्रेज की बहादुरी द 'देखेंगे और पूछेंगे ति · निहत्थे हिन्दुस्तानियों पर गोली चलाना आसान है। लड़ो हिटलर से· ।"

दन · दना · दन। गोलियों, तोपों की आवाज· मार्शल ला और जलियानवाला बाग का खूनी दृश्य पराशर की आंखों में उभर आया और उसके पीछे थी डायर की भयानक शक्ल, जिसे देख उसके भीतर प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की आग धधक उठती है। जालिम डायर पर किसी भी ओर से हमला होते देख वह प्रसन्न होता था। उसे वे दिन स्मरण हो आये, जो उसने अडमान में बिताये थे। यह एक विवश व्यक्ति का प्रतिशोध था।

"पिछली जग में उन्हें अमरीका न ··ने बचाया और हम हिन्दुस्तानियों न · ने बचाया।"

बीड़ी का धुआं मरगूले बनाता हुआ ऊपर उठ रहा था।

एक हफ्ता बाद जग का खूनी बिगुल बज उठा। नवें महीने की पहली तारीख को पोलैंड पर हमला हुआ और तीसरी तारीख को इंग्लैंड और फ्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया।

देश भर में हलचल मच गई। तत्क्षण एक बहुत बड़ी शक्ति हरकत में आई। नौजवानों के दिलों में मुद्दत से जो आग सुलग रही थी, वह एकदम भड़क उठी और शोले उगलने लगी। चारों तरफ "विद्रोह! विद्रोह!" की ध्वनि गूंज उठी। पराशर सुबह मुंह अंधेरे घर से निकलता और सारा दिन घूमता रहता। उसे अब नन्हीं की चिन्ता नहीं थी। कामठे से लौटते

समय वह उसे चचेरे भाई के पास छोड़ आया था। ताकि आराम से रहे। वह मित्रों से मिलता और दांत भींचकर कहता—"अंग्रेज से बदला लेने का समय अब आया है।"

जगदीश भी पराशर से सहमत था; लेकिन उसका सोचने का ढंग दूसरा था। एक दिन नारायण और प्रह्लाद उसके पास बैठे थे कि पराशर भी आ गया। उस दिन गांधी जी का एक बयान अखबारों में प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने अपनी युद्ध सम्बन्धी नीति को स्पष्ट करते हुए कहा था—"मैं एक सत्याग्रही हूं; इसलिए अंग्रेज की मुसीबत से लाभ नहीं उठाऊंगा।" इसी पर आलोचना हो रही थी।

"गांधी त···तो महात्मा है, वह अंग्रेज की मुसीबत से फायदा उठाना न···नहीं चाहता, न···न उठाये। पर हमें इस मौके पर चूकना नहीं चाहिये।" पराशर के स्वर में जोश भी था और क्रोध भी।

"पराशर जी, ठीक कहते हो, पर मेरी एक बात सुनो।" जगदीश बोला, "हमारे संस्कृत के नाटकों में एक पात्र सूत्रधार होता है। हरएक नाटक आरम्भ होने से पहले वह मंच पर आकर दर्शकों को बताता है कि उनके सामने किस प्रकार का नाटक खेला जायेगा। जब तक सूत्रधार यह न बताये, नाटक शुरू नहीं होता।"

नारायण और प्रह्लाद मुस्कराये; लेकिन पराशर ने धुआं ऊपर छोड़ते हुए पूछा—"इससे आपका मतलब क्या है?"

"मतलब यह है कि गांधी जी हमारे सयासी ड्रामा के सूत्रधार हैं। जब तक वे नहीं बताएंगे कि किस ढंग का ड्रामा खेलना है, आंदोलन शुरू नहीं होगा।"

कुछ देर मौन रहा। पराशर ज़ोर-ज़ोर से कश लगा रहा था; लेकिन व्यर्थ। बीड़ी बुझ चुकी थी।

"यह हमारी भूल है।" वह बुझी हुई बीड़ी को परे फेंक कर बोला, "बहुत बड़ी भ···भूल। आजादी के इतने बड़े आंदोलन को एक आदमी—चाहे वह आदमी कितना ही बड़ा क्यों न···न हो—की मर्जी पर छोड़ा न···नहीं जा सकता।"

"भूल समझो या दुर्भाग्य; पर यह एक सत्य है।" जगदीश ने व्यथित स्वर मे कहा, "राजनीति को धार्मिक रंग देने का यही परिणाम होता है कि व्यक्तियो की पूजा होने लगती है।"

"लेकिन इतिहास का रुख बदलने के लिए व्यक्तियो ही की जरूरत होती है।" नारायण बोला। उसने दरअसल खुद जगदीश की व्यक्तिवादी धारणा पर व्यग किया था। पर इसे किसी ने नही समझा।

"न···नही, नही, हम व्यक्ति न नही चाहिए।" पराशर ने अगुली हिलाते हुए कहा, "सूत्रधार न नही चाहिए। हम बुद्धूमल बधाऊमल न • नही हैं। हम लडेंगे जरूर लडेंगे और हम अंग्रेज की म·· मुसीबत से लाभ उठायेंगे।"

उसने एक नई बीडी सुलगाकर कश लगाया।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर विचार करने के लिए अशोक ने पार्टी के प्रमुख सदस्यो की एक मीटिंग बुलाई, जिसका स्थान गुप्त रखा गया। जगदीश इस मीटिंग मे शामिल नही था, कान्फ्रेंस के बाद मतभेद और भी बढ गये थे। किसी सगठन मे रहने के बजाय उसे अपनी व्यक्तिगत राय प्रकट करना अधिक प्रिय था; इसलिए उसे पार्टी से अलग कर दिया गया था। लेखराम अभी तक जेल से बाहर था, लेकिन सरकार ने उसकी जबान-बदी कर दी थी। मीटिंग दो बजे रात तक चलती रही। उसमे फैसला किया गया कि गांधी जी चाहे किसी प्रकार का आदोलन चलायें, उसे जनक्राति मे परिवर्तित कर दिया जाये। क्राति को सफल बनाने के लिए फौज, पुलिस और दूसरे सरकारी महकमो मे जितने भी व्यक्ति घुस सकते हैं, घुस जायें ताकि उन महकमो को इस्तेमाल किया जा सके। इसके अलावा गुप्त सगठन, प्रेस और प्रचार के अन्य साधनो की ठीक-ठीक व्यवस्था की जाए।

इस मीटिंग मे जो प्रोग्राम बना, दूसरे दिन उस पर अमल भी शुरू हो गया

"मी आऊं ! मी आऊं!"

रूही आवाज़ सुनकर बाहर आई; मगर उसे विश्वास नहीं था कि इखलाक बोल रहा है या मोर। पिछले चन्द महीने में उसने मोर की आवाज़ सुनकर कई बार धोखा खाया था। वह दौड़ी-दौड़ी उस कुंज में आई थी; जहां प्रेम-मिलन होता था। अगरचे वह इखलाक की आवाज़ से इतनी परिचित हो चुकी थी कि किंचित भिनक पाकर पहचान जाती थी; पर अब लम्बे इन्तज़ार ने एहसास को शिथिल कर दिया था और वह असल और नकल का भेद भूल बैठी थी। शायद इसकी जरूरत ही नहीं थी। आवाज़ तो उस कुंज में आने का बहाना मात्र थी। जिस कोमल घास पर इखलाक और वह मौन बैठे एक-दूसरे को ताकते रहते थे, जिन बूटों की आड़ में छिप-छिपकर सरगोशियां होती थी, जो कलियां उनके प्रेम-रहस्य को जानती थी, उन्हें देख लेना ही कुछ कम सुखप्रद नहीं था।

लेकिन आज—आज उसे धोखा नहीं हुआ। इखलाक सामने बैठा मुस्करा रहा था। उसने इश्क़-पेचा की बेल का एक सिरा आहिस्ता से हाथ में थाम रखा था। रूही कुछ क्षण खोई-खोई सी खड़ी रही, फिर बैठ गई और एकटक उसकी ओर देखने लगी। वे काफी देर तक निश्चेष्ट और अचल आमने-सामने बैठ रहे, जैसे निष्प्राण मूर्तियां हों, जिन्हें किसी चतुर मूर्तिकार ने एक बड़े पत्थर से तराशकर आमने-सामने रख दिया हो। मनोगत भावनाओं को चेहरों पर यों झलका दिया था। जैसे वे बोलना चाहती है। लेकिन बोल न पाती हैं। वे इसी तरह स्तब्ध और मौन बैठे रहे—और एक दूसरे की ओर देखते रहे।

"रूही!"

आखिर इखलाक बोला।

जिस प्रकार 'सुप्त सुन्दरता' कहानी में राजकुमार के पुकारते ही सोई हुई राजकुमारी जाग उठी थी, महल में जीवन लौट आया था और बाग पक्षियों के मधुर स्वर से मुखरित हो उठा था, उसी प्रकार इखलाक की आवाज़ सुनते ही रूही ने लम्बी पलकों को ऊपर उठाया और बड़ी-बड़ी सुन्दर आंखों को पूर्ण रूप से खोल दिया। इखलाक इन आंखों की अथाह गहराइयों में डूबने-उभरने लगा।

"इतने दिनो क्यों नही आये ? मैं तो देखने को तरस गई।"

रूही की आखो मे शिकवा था और इस शिकवे ने उन्हें और भी सुदर बना दिया था।

'अब आ गया हू। जी भरकर देख लो।" इखलाक चचल हो उठा।

फिर भारी मौन!

रूही इखलाक के चौडे चकेले सीने की ओर मुस्कुराते हुए होठो को देख रही थी। और अपनी आत्मा के एक रिक्त स्थान को भर रही थी।

लेकिन इखलाक कुछ और ही सोच रहा था। उसे चचा के यह शब्द याद आ रहे थे—' मैं रूही की जिन्दगी बरबाद नही होने दूगा।" जब से ये शब्द सुने थे, उसने रूही से मिलना छोड दिया था। वह उसके हजार बुलाने पर भी नही आया था और उसे भुला देने का प्रयत्न करता रहा था। आज वह चार-साढे चार महीने बाद आया था और रूही की सुदर आखो, गुलाब की पखडियो से नाजुक होठो और मस्त जवानी को देख वह भूल सुधार कर रहा था—'क्या दिल से निकाला जा सकता है? निकालना मुमकिन है?'

'तुम कितने सगदिल हो, इतना बुलाने पर भी नही आये तुम्हारी शान म फर्क आता था तो मुझे बुला लिया होता।' रूही बोल रही थी और गुलाब की पखुडिया हिल रही थी। इखलाक चाहता था कि वह इसी तरह शिकायत करती रहे और वे होंठ योंही हिलते रहे।

अगर मैं बुलाता तो क्या तुम वाकई आ जाती?'

"आजमा लिया होता!'

'अब चलती हो?'

"हा, चलो।'

रूही एकदम उठ खडी हुई। इखलाक का अब मालूम हुआ कि उसके दिन कितनी व्यग्रता मे बीते हैं। उसने रूही का हाथ पकडकर उसे फिर बिठा लिया और प्यार भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—

"रूही ! अब मैं खुद आ गया हूं और तुम्हें छोड़कर कहीं न जाऊंगा।"

"सच ?"

"हां, मैंने फैसला किया है कि तुम्हें हासिल करने के लिए चचा जान की बात मानूंगा।"

रूही ने इखलाक की ओर ध्यान से देखा, सिर से पांव तक एक नज़र डाली, फिर सहमी हुई-सी पीछे हट गई, जैसे उसके सामने बैठा हुआ इखलाक, वह इखलाक न हो, जिसे वह बचपन से जानती थी और प्यार करती थी, जिसे वह अपने दूसरे चचेरे, मुमेरे और फुफेरे भाइयों से अलग समझती थी। उनमें से एक रशीद था। वह भी उसका चचेरा भाई था। शक्ल, कद और डील-डौल में इखलाक से मिलता-जुलता था; लेकिन हर बात में दिखावा, हर बात में शेखी। वह अंग्रेज़ सरकार का वफादार फौजी अफसर था। वह रूही से प्रेम करता था और बाप उससे ब्याह देने को भी तैयार था। लेकिन रूही को उससे नफरत थी। जो मनुष्य परम्परा का दास है; गुलामी जिसके रग-रग में समा चुकी है, जो ऐश्वर्य की और पद की शेखी बघारता है, औरत उसे प्रेम क्या करे? उसका प्रेम झूठा है, विडम्बना मात्र है। रूही इखलाक से नहीं, वह उसके स्वतन्त्र विचारों से, उसकी विद्रोह-भावना से प्रेम करती थी। इसी गुण ने उसे दूसरों से विशेष और श्रेष्ठ बना दिया था। उसे यह विश्वास हो चुका था कि इखलाक जो अपने निश्चय पर दृढ़ और अचल रह सकता है, उसका प्रेम भी दृढ़ और अचल है।

इखलाक का फैसला सुनकर उसे आघात-सा लगा, जैसे कोई अमूल्य वस्तु उससे छिन गई हो। वह जाने क्या सोचती हुई निचला होंठ चबा रही थी।

"तुम्हारे लिए तो यह खुशखबरी थी रूही ! और तुम उदास हो गईं!"

"खुशखबरी !" रूही ने दोहराया और इखलाक की आंखों में आंखें डालकर पूछा, "क्या तुम वाकई यह फैसला कर चुके हो ?"

सामने एक तितली नृत्य कर रही थी, एक बूटे से उठकर दूसरे पर जा रही थी। इखलाक उसके रंगीन परों को देखते हुए बोला—

"हां!"

एक क्षण मौन का बीता। फिर रूही बोली, "और तुम्हारा सयासी अकीदा?"

तितली एक फूल पर बैठ गई। इखलाक ने रूही पर निगाह डाली। उसकी आंखों में बहुत बड़ा प्रश्न-सूचक चिह्न था। इखलाक को वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ, उसका चेहरा ठोस और संजीदा हो गया और वह दूर क्षितिज की ओर देखते हुए बोला—

"रूही, यह मेरा नहीं पार्टी का फैसला है कि फौज में भरती हो जाऊं।"

तितली फिर उड़ने लगी। अब रूही भी उसे देख रही थी और मुस्करा रही थी।

औरत को जब किसी मर्द से प्रेम होता है तो वह उसके विचारों से भी प्रेम करती है अर्थात् वह उन विचारों के कारण ही उससे प्रेम करती है।

: 35 :

पिता का पत्र

चीन की एक कहावत है कि पेड़ आराम से सोना चाहता है; लेकिन हवा उसे चैन नहीं लेने देती। इसके सर्वथा विपरीत लेखराम चाहता था कि दिन-रात सरगर्मी से काम करे, हर वक्त मारा-मारा फिरे; लेकिन सरकार चाहती थी कि वह जेल जाये और वहां आराम करे। इसलिए उसने पहला काम यह किया कि जबान-बंदी करके लेखराम के कार्य-क्षेत्र को सीमित कर दिया। इस बीच में उसने एक पुस्तक "हमारा स्वाधीनता-संग्राम" लिखी। इस पुस्तक को प्रकाशित हुए एक महीना भी नहीं हो पाया था कि सशस्त्र पुलिस आ धमकी। इस बार वह सिर्फ तलाशी लेने नहीं आई थी, लेखराम का वारन्ट गिरफ्तारी भी साथ लाई थी। सरकार ने पुस्तक को ज़ब्त कर लिया था और लेखक, प्रकाशक और मुद्रक पर मुकदमा चलाने का फैसला किया था। ज़ब्ती का कारण बताते हुए लिखा था—

"इस किताब का मंशा बादशाह सलामत की प्रजा को वर्गों में बांट कर उनमें नफरत फैलाना है।"

पुस्तक एक स्थानीय प्रकाशक ने लिखवाई थी। लेकिन वह अनुभव से जानता था कि इस बारे में सरकार का रवैया क्या होगा। इसलिए पुस्तक पर अपना नाम नहीं दिया था, लेखक और प्रकाशक लेखराम आप ही था। मुद्रक इसलिए कानून की गिरफ्त में नहीं आता था कि मुकदमा प्रान्तीय सरकार ने चलाया था और पुस्तक पंजाब से बाहर मेरठ में छपी थी। पंजाब का प्रेस उसे छापते हुए डरता था और यू० पी० के कांग्रेस मंत्रि-मंडल ने प्रेस की पाबंदियां कुछ ढीली कर दी थीं।

दो महीने मुकदमा चलता रहा। लेखराम ने अदालत मे बयान देते हुए कहा —

"मुझ पर यह आरोप लगाना कि मैंने लोगो को वर्गों में बाटा है और नफरत फैलाई है, झूठ है। यह आरोप वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पर और खुद सरकार पर लागू होता है, जिसने मनुष्य को लुटेरो और लूटने वालो मे बाट रखा है। मेरा कसूर सिर्फ यह है कि मैं किसी के घर मे सेंध लगी देखकर चुप नही रह सका ? 'चोर, चोर' कह कर घर वालो को चौकन्ना कर दिया।"

'चोर को यह बात अवश्य बुरी लगेगी।" विनोदप्रिय मैजिस्ट्रेट कलात्मक ढग से मुस्कराया और लेखराम को लेखक और प्रकाशक के तौर पर दो अलग-अलग जुर्मों मे छ-छ महीने कैद की सजा सुना दी और वारट दोहरा बना दिया।

" दुनिया के रगमच पर बडी-बडी घटनायें घट रही थी। उनके मुकाबिले मे यह छोटा-सा नाटक कोई महत्त्व नही रखता था। पोलैंड पर जर्मनी का कब्जा हो चुका था और सर्दी शुरू होते ही खुश्की की लडाई बद हो गई और हवाई लडाई होने लगी। सैकडो बमबार बर्लिन से उडकर इग्लैंड पर आते और टनों बम गिराकर लौट जाते थे। इन बमो के खौफनाक धमाको से भव्य और आलीशान इमारतें क्षण भर मे भूमि पर आ गिरती थी और कितने ही शातिप्रिय और निरपराध प्राणी मारे जाते थे। मर्द, औरतें और बच्चे मलबे के नीचे दबकर कट-कटकर और सिसक-सिसक कर मर रहे थे। यद्यपि यह सब कुछ सात समुद्र पार हो रहा था, लेकिन इस बमबारी की करुण-कहानियां अखबारो मे छपती थी, रेडियो पर सुनाई जाती थी और एक-दूसरे की जबानी जनसाधारण तक पहुचती थी। गनी अकेला बैठा सोचा करता और सोचते-सोचते जाने-अनजाने यह शब्द उसके मुह से निकल जाते—

"धम-धमा, धम "धमा धम!"

अशोक ने उसे कई बार बडबडाते हुए सुना; लेकिन समझ नही पाया कि उसका आशय क्या है ?

: 35 :

पिता का पत्र

चीन की एक कहावत है कि पेड़ आराम से सोना चाहता है; लेकिन हवा उसे चैन नहीं लेने देती। इसके सर्वथा विपरीत लेखराम चाहता था कि दिन-रात सरगर्मी से काम करे, हर वक्त मारा-मारा फिरे; लेकिन सरकार चाहती थी कि वह जेल जाये और वहां आराम करे। इसलिए उसने पहला काम यह किया कि जबान-बंदी करके लेखराम के कार्य-क्षेत्र को सीमित कर दिया। इस बीच में उसने एक पुस्तक "हमारा स्वाधीनता-संग्राम" लिखी। इस पुस्तक को प्रकाशित हुए एक महीना भी नहीं हो पाया था कि सशस्त्र पुलिस आ धमकी। इस बार वह सिर्फ तलाशी लेने नहीं आई थी, लेखराम का वारन्ट गिरफ्तारी भी साथ लाई थी। सरकार ने पुस्तक को जब्त कर लिया था और लेखक, प्रकाशक और मुद्रक पर मुकदमा चलाने का फैसला किया था। जब्ती का कारण बताते हुए लिखा था—

"इस किताब का मंशा बादशाह सलामत की प्रजा को वर्गों में बांट कर उनमें नफरत फैलाना है।"

पुस्तक एक स्थानीय प्रकाशक ने लिखवाई थी। लेकिन वह अनुभव से जानता था कि इस बारे में सरकार का रवैया क्या होगा। इसलिए पुस्तक पर अपना नाम नहीं दिया था, लेखक और प्रकाशक लेखराम आप ही था। मुद्रक इसलिए कानून की गिरफ्त में नहीं आता था कि मुकदमा प्रान्तीय सरकार ने चलाया था और पुस्तक पंजाब से बाहर मेरठ में छपी थी। पंजाब का प्रेस उसे छापते हुए डरता था और यू० पी० के कांग्रेस मंत्रि-मंडल ने प्रेस की पाबंदियां कुछ ढीली कर दी थीं।

कहानी, जो सयासत की नकाब ओढकर शरीफजादी बनी घूमती है।"

इस दिलचस्प कहानी को जाने कितने लोगो ने मजे लेकर पढा होगा, लेकिन जिन लोगो के लिए यह लिखी गई थी, उन्होने महज बकवास समझ कर इसकी उपेक्षा की। वे सम्पादक की कौवा-वृत्ति से परिचित थे, उसका स्वभाव ही गिलाजत मे चोच मारकर प्रसन्न होना था। लेकिन पद्मा अपने बारे मे यह कहानी पढकर चकित और स्तब्ध रह गई। वह इसे बकवास समझकर टालने के बजाय हकीकत को समझ लेना चाहती थी। शीला से अतीत की कहानी सुनी थी, उसमे कुछ कडिया टूटती थी। पद्मा को यह बात कौंचती रही थी। समय ने इसे भुला दिया था, लेकिन अखबार पढकर वह यही बात फिर से सोचने लगी। कितनी देर अखबार हाथ मे लिए वह सोचती रही और कितनी ही छोटी-बडी घटनायें मस्तिष्क मे उभरती रही।

"किसे एक्सपोज किया जा रहा है?"

'आप को।'

'मेरा तो कोई राज ही नही?"

"जब तक मालूम न हो, लोग ऐसा ही कहते है।"

वाकई पदमा को भी मालूम नही था। लेकिन अब वह मालूम करके ही दम लेगी।

दिसम्बर की सर्द रात थी। शीला अपने कमरे मे अकेली बैठी आग ताप रही थी और मन म अतीत की घटनाओ को दोहरा रही थी। उसे स्वर्गीय पिता की याद आ रही थी मा याद आ रही थी ' भाई याद आ रहा था—और उनसे सम्बन्धित कितनी ही बातें याद आ रही थी ' कि पद्मा ने कमरे मे प्रवेश किया और आते ही बोली, "दीदी, आपने जो बात मुझसे छिपा रखी थी, वह आज प्रकट हो गई। मैं इस बारे मे सच झूठ सब जान लेना चाहती हू।

शीला ने पदमा की ओर देखा। वह दुख और अवसाद की मूर्ति दीख पडती थी। शीला चुप रही और सोचने लगी कि अगर मैं यह बात पद्मा को पहले ही बता देती तो वह कदाचित इतनी परेशान न होती। उसे

"यह घम धमा घम क्या बला है ?" उसने गनी से पूछा ।

"बम !" गनी ने मुंह फुलाकर उत्तर दिया ।

"बम !" अशोक ने दोहराया ।

"जर्मन के हवाई जहाज धूं-धूं·······उड़कर आते हैं और धम धमा धम ·····"

जब "धू-धू" और "धम धमा धम" के शब्द गनी के मुंह से निकले तो उसकी आंखें उल्लास से चमक उठी थी और उसके दोनों हाथ यों हिल रहे थे, जैसे वह खुद गोले फेंक रहा हो ।

अशोक के मस्तिष्क में चित्र उभर आया —हिन्दुस्तान का चित्र, जिसमें हजारों लाखों गनी और पराशर इस जर्मन बमबारी से खुश हो रहे थे। शायद वे सोचते थे कि यह बम चर्चिल और चैम्बरलेन के सीनों पर और क्लाईव और हेस्टिंग्ज की कब्रों पर गिर रहे हैं और इंग्लैंड के उन बैंकों को तबाह और बरबाद कर रहे हैं, जिनमें हिन्दुस्तानियों के खून-पसीने की कमाई का पैसा भरा पड़ा है ।

परिस्थिति तेजी से बदल रही थी, साम्राज्य के प्रति घृणा बढ़ रही थी और बड़ी-बड़ी घटनाओं के घटने की आशा थी । लोग बड़ी-बड़ी घटनाओं के सम्मुख भी जिंदगी की छोटी-छोटी आवश्यक बातें भूल नहीं जाते। पद्‌मा ने बी० ए० की परीक्षा पास कर ली थी और राजेन्द्र से उसके ब्याह की बात पक्की हो चुकी थी । शीला चाहती थी कि उनका ब्याह शीघ्र सम्पन्न हो जाये ताकि वह इस काम से निपट कर सारा ध्यान संघर्ष को सफल बनाने में लगा सके। इसके अतिरिक्त उसे एक विचार और कौंच रहा था । उसने जो रहस्य अपने सीने में छिपा रखा था, उसे अब वह पद्‌मा को बता देना चाहती थी । कई दिन से बताने का बराबर निश्चय करती और फिर कल पर स्थगित कर देती । सहसा उसके बिना बताये ही इस रहस्य का उद्‌घाटन हो गया ।

शिवदयाल ने, जिसे अंग्रेज औरत ने अपमानित किया था, जिसका काम ही ब्लैक-मेलिंग करना, गंदी और सनसनीखेज कहानियां छापना था, अपने साप्ताहिक पत्र में लिखा—"एक वेश्या की लड़की की दिलचस्प

कहानी, जो सयासत की नकाब ओढ़कर शरीफजादी बनी घूमती है।"

इस दिलचस्प कहानी को जाने कितने लोगों ने मजे लेकर पढ़ा होगा; लेकिन जिन लोगों के लिए यह लिखी गई थी, उन्होंने महज बकवास समझ कर इसकी उपेक्षा की। वे सम्पादक की कौवा-वृत्ति से परिचित थे, उसका स्वभाव ही गिलाजत मे चोंच मारकर प्रसन्न होना था। लेकिन पद्मा अपने बारे मे यह कहानी पढ़कर चकित और स्तब्ध रह गई। वह इसे बकवास समझकर टालने के बजाय हकीकत को समझ लेना चाहती थी। शीला से अतीत की कहानी सुनी थी, उसमे कुछ कड़िया टूटती थी। पद्मा को यह बात कोंचती रही थी। समय ने इसे भुला दिया था, लेकिन अखबार पढ़कर वह यही बात फिर से सोचने लगी। कितनी देर अखबार हाथ मे लिए वह सोचती रही और कितनी ही छोटी-बड़ी घटनायें मस्तिष्क में उभरती रहीं।

"किसे एक्सपोज किया जा रहा है?"

'आप को।"

"मेरा तो कोई राज ही नही?"

"जब तक मालूम न हो, लोग ऐसा ही कहते हैं।"

वाकई पद्मा को भी मालूम नही था। लेकिन अब वह मालूम करके ही दम लेगी।

दिसम्बर की सर्द रात थी। शीला अपने कमरे मे अकेली बैठी आग ताप रही थी और मन में अतीत की घटनाओ को दोहरा रही थी। उसे स्वर्गीय पिता की याद आ रही थी मां याद आ रही थी भाई याद आ रहा था—और उनसे सम्बन्धित कितनी ही बातें याद आ रही थी कि पद्मा ने कमरे में प्रवेश किया और आते ही बोली, "दीदी, आपने जो बात मुझसे छिपा रखी थी, वह आज प्रकट हो गई। मैं इस बारे मे सच-झूठ सब जान लेना चाहती हू।"

शीला ने पद्मा की ओर देखा। वह दुख और अवसाद की मूर्ति दीख पड़ती थी। शीला चुप रही और सोचने लगी कि अगर मैं यह बात पद्मा को पहले ही बता देती तो वह कदाचित इतनी परेशान न होती। उसे

पहली बार मालूम हुआ कि लोग किंचित और निरीह घटनाओं को भी भयानक बनाकर पेश कर सकते हैं। शीला पद्मा को बैठने का संकेत करके खुद दूसरे कमरे में गई। लौटकर पिता का अन्तिम पत्र पद्मा के हाथ में थमा दिया। वह उसे खोलकर पढ़ने लगी।

"प्यारी बेटी,

मेरे मन पर जो बात बोझ बनी रही, उसे मैं मरने से पहले तुम्हें बता देना जरूरी समझता हूं। बात यह है कि पद्मा कोई पराई लड़की नहीं, तुम्हारी अपनी छोटी बहन है। उसकी मां एक निर्धन परिवार में पैदा हुई। सत्रह-अठारह साल की उम्र में उसका ब्याह पैसे के लालच में मेरे एक सम्बन्धी से कर दिया गया। वह बड़ी उम्र का दुर्बल व्यक्ति था और ब्याह के दो साल बाद मर गया। बीमार दरअसल वह पहले ही रहता था। पद्मा की मां लीलावती सुन्दर और स्वस्थ थी, अंग-अंग में यौवन का रस था। उसे देख मैं सोचता कि उसका ब्याह इस वृद्ध और रोगी व्यक्ति से क्यों हुआ? एक दिन संयोग से यह बात मैंने लीला से कह दी। सुनते ही आंखों में आंसू उमड़ आए। बेटी! वह आंसू नहीं, उसकी हसरतों और अरमानों का खून था, जिसने मेरे मन को द्रवित कर दिया और फिर हममें अक्सर दुख-सुख की बातें होने लगीं।

उन दिनों तुम्हारी मां मर चुकी थीं। जिंदगी मेरे लिए बोझल हो रही थी। मैं बूढ़ा भी नहीं था, लेकिन समाज में अपनी शान बनाये रखने के लिए दूसरा ब्याह करने से इनकार कर दिया था।

पति की मृत्यु के उपरांत लीला फिर माता-पिता के घर चली गई। पति की सम्पत्ति पर निकट-सम्बन्धियों ने अधिकार जमा लिया और उसके पास नकद पैसा कुछ नहीं था। वह खाली हाथ माता-पिता के घर चली आई, जिनका अपना गुज़ारा ही मुश्किल से चलता था। विधवा जवान बेटी को कैसे सम्भालें। लेकिन थोड़े ही दिनों बाद जब मैंने वहां आना-जाना शुरू किया तो लीला उन्हें बोझ महसूस होने के बजाय सहारा मालूम होने लगी क्योंकि मुझसे उन्हें आर्थिक सहायता मिल जाती थी। हम घंटों बैठे सुख-दुख की बातें करते। हमारा यह मेल-जोल उन्हें किंचित न अखरता।

अखरा तो उस समय जब पद्मा लीला के पेट में सात महीने की हो गई। उन्हें अपनी बदनामी का डर था। विधवा लड़की बच्चा जनेगी!

मैंने उन्हें बदनामी से बचने का उपाय बताया। वे लीला को हरिद्वार ले गये। मैं पहले ही वहां मौजूद था और उनके रहन-सहन की सुव्यवस्था कर दी थी। दस-पन्द्रह दिन वहां रहकर माता-पिता गांव लौट आए और यह प्रसिद्ध कर दिया कि लीला गंगा में स्नान करते समय डूब गई है। वह चार महीने हरिद्वार में ही रही और हमारा वफादार बूढ़ा नौकर दयाराम उसकी देखभाल करता रहा। इस बीच में पद्मा का जन्म हुआ और वह दो महीने की हो गई। हरिद्वार से लौटकर वह हमारे शहर के उस मुहल्ले में, जहां हम पद्मा को देखने जाया करते थे, रहने लगी।

कुछ दिन बाद पद्मा बीमार रहकर मर गई और नौकर उसे दफनाने के लिए ले गया। दरअसल वह मरी नहीं थी। तुम्हें याद होगा एक दिन सैर से लौटते समय मैं एक नन्ही लड़की को घर लाया और कहा कि मुझे वह नहर के किनारे पड़ी मिली है। वह पद्मा थी और हमने उसे लीला को पालने के लिए दे दिया था। तुम सोचोगी कि जब वह उसे पहले ही पाल रही थी तो फिर यह हेर-फेर करने की क्या जरूरत थी? इसके दो कारण थे। एक मुझे लीला के पास आने-जाने का सहज बहाना मिल गया। लोग मुझे वहां देखकर कानाफूसी नहीं कर सकते थे। दूसरे, लोगों को लीला के बारे में संदेह करने की गुंजायश न रही। सबको मालूम था कि पद्मा की परवरिश के लिए मैं उसे सौ रुपये महीना देता हूं, इससे मेरी उदारता और दानशीलता की धूम मच गई। लोग कहते थे कि मैं एक अनाथ कन्या की परवरिश पर इतना खर्च करता हूं और उसे अपनी बेटी के समान समझता हूं।

इसके बाद जो हुआ, वह तुम जानती हो। अब शायद तुम यह सोचो कि अगर मैं तुम्हें यह बात न बताता तो क्या हानि थी। हानि जो हो सकती है वह आगे चलकर तुम्हें खुद मालूम हो जायेगी। आखिर कुछ लोगों को यह भेद मालूम है। मेरे जीवन में वह इसलिए चुप हो रहे कि उन्हें मुझसे लाभ पहुंचता था। लेकिन मैं जानता हूं कि मेरी मृत्यु के

पश्चात् उनके पेट में बात नहीं पचेगी। फिर दूसरों की जबानी तुम यह कहानी सुनोगी। हो सकता है वे इसे तोड़-मरोड़कर और बढ़ा-चढ़ाकर सुनाएं, उस समय तुम मुझसे और पद्मा से नफरत कर सकती हो। मुझे अपने से नफरत की तो कुछ परवा नहीं, लेकिन पद्मा की चिंता है। उसका जीवन कटु और नीरस हो जाने की आशंका है। अब तुमने खुद पिता से यह कहानी सुन ली है। उसके मन का बोझ उतर गया है और वह आशा करता है कि तुम अगर उसे पापी समझती हो तो भी बेटी के नाते क्षमा कर दोगी, और छोटी बहन के भविष्य का ध्यान रखोगी।"

पिता की मृत्यु के साल, डेढ़ साल बाद शीला अपने चचा से मिलने मैके गई तो पड़ोस की एक बुढ़िया ने उसके पिता के गुण वर्णन करते हुए पद्मा की मां का भी उल्लेख किया और थोड़े से हेर-फेर के साथ यह कहानी कह सुनाई। अब वही कहानी अखबार में छपी थी और उसमें पद्मा की मां को विधवा की जगह वेश्या लिखा था। दुनिया का मुंह कौन बन्द कर सकता है?

पद्मा पत्र पढ़कर दो-तीन मिनट चुप बैठी रही। फिर उसने शीला की ओर देखा। उसकी आंखों में दुःख या अवसाद नहीं था, गम्भीरता और निश्चय था। बोली—"क्या यह उन्हें भी पढ़ा दिया है?"

मतलब राजेन्द्र से था। शीला ने दहकते कोयलों से भरी हुई अंगीठी को दोनों हाथों से हिलाते हुए कहा—"नहीं।"

पद्मा ने खत जेब में रख लिया। सुबह जब राजेन्द्र मिलने आया तो वह उसे अलग ले जाकर बोली—

"मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूं।"

"क्या?" स्वर के तीखेपन ने राजेन्द्र को चौंका दिया।

"अखबार में मेरी जो कहानी छपी है, वह पढ़ी?"

"हां, पढ़ी।"

"तुम उसे सच समझते हो?"

"नहीं, झूठ।"

"अगर वह सच हो?"

"जब मैं जानता हूं कि वह सच नहीं हो सकती तो 'अगर' का सवाल ही पैदा नहीं होता।"

"नहीं, तुम नहीं जानते। वह सच है।"

पद्मा ने कहा और खत जेब से निकालकर राजेन्द्र को दे दिया।

जिस कमरे में बैठे थे, उसमें लीडरों और शहीदों के चित्रों के साथ सुरेन्द्र का चित्र भी लगा हुआ था। पद्मा उसकी ओर देख रही थी और उसे वह दिन याद आ रहा था, जब वह उसे 'भाई' कहकर और उन्मत्त होकर नाच उठी थी। "हां, वह मेरा भाई है"। पद्मा ने अपने आप में दोहराया और उसका हृदय स्नेह से भर गया। सुरेन्द्र के होंठ अब भी हिल रहे थे, लेकिन वह जो बात कह रहा था, वह उस दिन से कुछ भिन्न थी। इसका कारण शायद यह हो कि उस दिन से पद्मा भिन्न थी, बहुत कुछ बदल चुकी थी। वह भाई को कहते हुए सुन रही थी—"जिस जालिम हाथ ने मेरी हत्या की है, वही वर्तमान सामाजिक व्यवस्था और उसकी बुराइयों के लिए जिम्मेदार है।"

पद्मा चित्र की ओर देख रही थी और इन शब्दों पर विचार कर रही थी। राजेन्द्र ने खत पढ़कर बिना कुछ कहे उसे लौटा दिया और वह भी चित्र की ओर देखने लगा। लेकिन पद्मा उसे सम्बोधित करते हुए बोली—

"मैं तुमसे पूछना चाहती हूं।"

"क्या?"

'यही' वह कहते-कहते रुक गई, एक क्षण चुप रही, साहस करके फिर बोली—"क्या तुम अब भी मुझे उसी तरह चाहते हो, जैसे यह पत्र पढ़ने से पहले चाहते थे?"

"पद्मा यह भी कोई पूछने की बात है।" राजेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा, "अगर भौंरे को कह दिया जाए कि तुम जिस कमल को चाहते हो, वह कीचड़ से उत्पन्न हुआ है, तो उसके प्यार में कोई अन्तर नहीं आएगा। वह फूल को चाहता है, कीचड़ से उसे कोई सरोकार नहीं।"

"मजाक न करो।" पद्मा ने तीखे स्वर में कहा, "इस प्रकार के

कमजोर और बीमार आदमी से करने पर मजबूर किया। विधवा हो जाने पर दोबारा शादी क्यो नही कर दी ? उन्हें हरिद्वार क्यो जाना पडा ? और पिता ने सचाई को छिपाने की क्यो कोशिश की ? जिस स्त्री से वे प्रेम करते थे, उसे सीधे तौर पर घर मे क्यो नही रखा ? इन सब बातो के लिए कौन जिम्मेदार है ? नाना, मा, पिता ? उनमे से कोई भी नही। वे सब निर्दोष हैं·· "

राजेन्द्र आवेश मे भरा कह रहा था कि बाहर किसी की आहट सुनाई दी। शीला को दरवाज़े पर ठिठकते देख राजेन्द्र ने कहा—

"आजाइए ना भीतर।"

"मेरे आने से तुम्हारी बातों मे हर्ज तो न होगा ?" वह बोली।

"नहीं, नही, आप आइए।" पद्मा बोली और थोडी देर रुककर फिर कहा, "अच्छा हुआ कि आप आ गईं, वरना हम आते और आप से कहते कि हमारे ब्याह की तिथि निश्चित कर दीजिए।"

: 36 :

स्त्री और पुरुष

नववर्ष अर्थात् सन् 1940 के पहले महीने की छब्बीस तारीख को पद्मा और राजेन्द्र का ब्याह हुआ। सीधी-सादी रसम थी। दुल्हा-दुल्हन अदालत के कमरे में खड़े थे। मित्रों की उपस्थिति में उनके नाम सिविल-मैरेज रजिस्टर में लिखे गए और दोनों से उसपर हस्ताक्षर टाककर अनुमति प्रदान की। मित्रों और राजनैतिक कार्यकर्ताओं ने नए जोड़े को बधाई अथवा आशीर्वाद दिया। कुछ लोग अपने सामर्थ्य और रुचि के अनुसार उपहार भी लाये थे। नारायण जो उपहार लाया था, वह उसके स्वभाव और सुरुचि का सूचक था। उस पर स्पष्ट अक्षरों में लिखा हुआ था—

"सुगन्ध और मुस्कराहटें।"

विवाह का वास्तविक उद्देश्य वाकई जीवन को सुगन्ध और मुस्कराहटों से भरना होता है। नारायण ताजा और नव-विकसित कलियों की ज़बानी दूल्हा-दुल्हन के लिए यही संदेश लाया था। पद्मा इन कलियों को देख मुस्कुरा उठी। इस मुस्कुराहट में वह सुगन्ध निहित थी, जिसके कारण स्त्री पुरुष के मन में बास करती है।

"तुम्हें भी कभी सुगन्ध और मुस्कुराहटें नसीब होंगी या बस पतझड़ ही बीतेगी?"

राजेन्द्र ने मजाक किया।

"पतझड़ तो खैर किसे पसंद है; लेकिन बसंत आने की भी कोई आशा नहीं।" नारायण विनोदभाव से अपनी बात कहना चाहता था, लेकिन

कहने के बाद उसे खुद यो महसूस हुआ कि उसने अपने अभाव का शिकवा किया है क्योकि राजेन्द्र और दूसरे साथी उसकी ओर हमदर्दी से देख रहे हैं।

"निराश क्यो होते हो, सुन्दरी से सिफारिश की जा सकती है।" बूटासिंह ने कहा। उर्मिला को अब सब सुन्दरी कहते थे।

"उर्मिला भी शायद मुझे पसद न करे। औरत को पसद का अधिकार तो अब मिलना ही चाहिए।"

"मिलना चाहिए से तुम्हारा क्या मतलब है?" पद्मा तुनककर बोली, "ऐसे देने वाले थे तो अब तक क्यो न दिया। अधिकार लिये जाते हैं, दिये नहीं जाते।"

"माफी चाहता हू—औरत अब यह अधिकार लेगी। अब खुश हो?"

"सिर्फ पद्मा और सुन्दरी ही तो नही, ससार मे और भी बहुत सी लडकिया हैं।" गोपाल बोला। उसने बात बडी देर से मुह मे थूक के सदृश रोक रखी थी।

'हा, लडकियो की तो कमी नही। दुनिया भरी पडी है, पर अपनी-अपनी पहुच होती है।"

"मैं एक बात पूछता हू कि हम सिर्फ हिन्दुस्तानी लडकियो को ही पसद करते हैं, चीनी, जापानी अथवा अमरीकी लडकियो को क्यो पसद नही करते?" प्रह्लाद ने अतर्राष्ट्रीय प्रश्न पूछा।

'फिर वही नारायण वाली बात। पसद कभी पहुच से बाहर नही हो सकती।" अशोक जो अब तक पीछे खडा दूसरो की बातें सुन रहा था, एक कदम आगे बढ़कर बोला—"हम हिन्दुस्तान मे रहते हैं और हिन्दुस्तानी औरतो को पसद करते हैं, बल्कि यो कहिये कि पंजाब में रहते हैं और पजाबी लडकियो को पसंद करते हैं। लेकिन जो लोग लंदन में रहते हैं, उनके यहा अंग्रेज और फ्रांसीसी औरतें भी हैं। थोड़े दिनों में जब हवाई जहाज आम चलेंगे और उनकी रफ्तार भी तेज होगी, एक देश से दूसरे देश मे आना-जाना इतना ही सहज होगा, जितना कि इस समय अमृतसर या दिल्ली जाना है। उस समय अंतर्राष्ट्रीय विवाह आम होंगे।

जाति-भेद मिट जायेगा। रंग और नसल का तास्सुब नहीं रहेगा। अफ्रीका के हबशी और योरुप की सफेद औरत के मेल से जो संतान उत्पन्न होगी, उससे मानव-आकृति में नए रंग-रूप और नए अंग-विधान की रचना होगी। जापानियों के कद लंबे हो जायेंगे और चीनियों की नाक चपटी नहीं रहेगी। सारी दुनिया एक परिवार दिखाई देगी। प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक देश में रहने का अधिकार प्राप्त होगा और वह वहां के जनतन्त्र में पुराने नागरिक की तरह वोट दे सकेगा। गोरे काले का भेद मिट जायेगा।"

सब लोग अशोक की ओर देख रहे थे। एक महान् और विराट कल्पना उसकी आंखों में साकार हो उठी थी। वे मौन थे और इस कल्पना का आनन्द ले रहे थे कि मदन ऊंची आवाज और पूरे जोश के साथ बोल उठा—

"हमने तो प्रण किया है कि सिर्फ आजादी की दुल्हन से शादी करेंगे।"

"जिंदाबाद! जन्म के इनकलाबी ऐसा ही करते हैं।"

नारायण ने कहा और एक कहकहा बुलन्द हुआ। मदन भी हंस रहा था। वह इस प्रकार की बातों का आदी हो चुका था और अब वह व्यंग को भी अपनी प्रशंसा समझकर खुश होता था।

फिर सादा और संक्षिप्त दावत की व्यवस्था थी। भोजन के दौरान में भी दिल्लगी जारी रही। नारायण आज मामूल से ज्यादा बातें कर रहा था और उसके कहकहे सबको सुनाई दे रहे थे। इस उत्सव में दूल्हा-दुल्हन के बाद शायद शीला प्रसन्न थी, क्योंकि बहन का विवाह उसकी इच्छा के अनुसार हुआ था लेकिन वह चुप थी। खुशी के इस शुभ अवसर पर भी उसकी गम्भीर मुद्रा में कोई अंतर नहीं आया था। वह एक सफेद साड़ी पहने मेहमानों के खिलाने-पिलाने की व्यवस्था कर रही थी। लेकिन नारायण की बातें सुनकर और उसे कहकहे लगाते देखकर ऐसा लगता था, जैसे वह शीला और दूल्हा-दुल्हन से भी अधिक प्रसन्न हो। अशोक उसे ध्यान से देख रहा था।

भोजन के उपरांत लोग अपने-अपने घरों को चले। नारायण भी शीला के मकान से निकलकर दफ्तर की ओर चल पड़ा। उसका कदम जल्दी-जल्दी उठ रहा था और वह खोया-खोया सा जान पड़ता था। गली से निकलकर वह सड़क पर जा पहुंचा और थोड़ी देर इधर-उधर देखकर सस्वर बोला—

"बंधन! अशोक! रीजेंट!"

और इन शब्दों पर वह आप ही चौंक पड़ा। विचार करने पर मालूम हुआ कि उसने यह शब्द बिना सोचे अवचेतन रूप से दोहराये हैं और वे सिनेमा के एक इश्तहारी तख्ते पर लिखे हुए हैं, जिसे एक आदमी पहियों पर घुमाता फिर रहा है, और वे शब्द क्रमश —फिल्म, एक्टर और सिनेमा घर का नाम है।

"नारायण!"

किसी ने पुकारा और वह ठिठक गया।

"इस तरह भागे क्यों जा रहे हो?"

जगदीश उसके पीछे पीछे आ रहा था। अब वे दोनों साथ-साथ चलने लगे।

'तुमसे एक बात पूछना चाहता हूं।"

"पूछिये।"

"पार्वती के खर्च की क्या व्यवस्था कर रखी है?"

"खर्च की व्यवस्था!" नारायण जैसे नींद से जगा। वह अभी तक अपने आप में डूबा हुआ था, इसलिए जगदीश के शब्दों को पूरी तरह ग्रहण नहीं कर पाया था।

"परसों राज मेरे पास आया था, उसने घर का दुःख रोते हुए कहा था कि बीस रुपये महीना मामा से मिलते हैं, उनसे खर्च नहीं चलता। यही बात आज पार्वती ने कही थी।"

'लेकिन दस रुपये महीना शीला देती है, दस रघुनाथ वकील देता है और पंद्रह रुपये परिवार सहायक कमेटी की ओर से मिलते हैं। अगर इस पर भी खर्च नहीं चलता तो न चले और क्या हो सकता है?"

"तुम इतने चिढ़े हुए क्यों हो।" जगदीश ने उसके मुख की ओर देखते हुए पूछा।

"नहीं, चिढ़ा हुआ तो नहीं।" नारायण ने उत्तर दिया। लेकिन फिर भी अपने स्वर को स्वाभाविक न बना सका।

"बच्चों का घर है। मुमकिन है इतने में गुजारा न चलता हो। खयाल है कि पन्द्रहेक रुपये का इन्तजाम और कर दिया जाये!"

"कृपा है आपकी।" नारायण बोला और एक मिनट रुककर हठात् कहा, "सोने के बटन बने हैं, फिर चूड़ियां बन जायेंगी।"

जगदीश ने उसके इन शब्दों पर ध्यान नहीं दिया। वे एक मोड़ पर पहुंच गए थे, जहां से उनके रास्ते अलग-अलग होते थे।

"अच्छा मैं इधर चलता हूं।" जगदीश ने कहा और वह बाईं ओर घूम गया।

नारायण का कदम फिर तेज-तेज उठ रहा था। वह परेशान था। और उसके मस्तिष्क में बहुत से विचार उठ रहे थे। इन विचारों में कोई क्रम का सम्बन्ध न था क्योंकि वह सोच नहीं रहा था, सोचना चाहता भी नहीं था। विचार अपने आप आ-जा रहे थे।

सड़क पर लोग चल रहे थे। वह उनकी ओर देख नहीं रहा था, जल्द-जल्द चल रहा था, जैसे उसे किसी से कोई सरोकार न हो।

उसने कमरे में पहुंचकर दम लिया, धम से चारपाई पर लेट गया, जैसे मीलों की यात्रा करके आया हो और थकन से चूर

और निश्चेष्ट लेटा रहना चाहता था; अपने आपको,

प्रत्येक वस्तु को भुला देना चाहता था। मन में

उनपर खीझ उठता था, पर उन्हें रोक नहीं

का और इन्तजाम कर दिया जाये..." "मुझे

उसने जोर से सांस छोड़ी और अपने आपको

का प्रयत्न किया। लेकिन विचारों से [illegible]

से केवल सोचने की दिशा ही बदली।

तुम्हारे जीवन में भी आयेगी या पतझड़

उठा। उसे यह मोड घूमना पसद नही था। फिर उलटे पाव लौट आया और पार्वती के सम्बन्ध मे बहुत-सी बातें सोच गया और उसका वह गौरवमय और स्वाभिमानी रूप मस्तिष्क मे उभर आया—जब उसने कहा था, "दवन्नी की तो कोई बात नही, इस तरह बच्चो की आदतें बिगड जाती हैं।" वह इस वाक्य पर रुके रहना और पार्वती के इसी रूप को मस्तिष्क मे बनाये रखना चाहता था। लेकिन वह रुक नही सका, दूसरे ही क्षण दृश्य बदल गया।··· प्रह्लाद का बटुआ खुला था और पुष्पा के नन्हें हाथ के नीचे पार्वती का हाथ फैला हुआ था। फिर वह फैलता ही चला गया

विचारो का यह साकार रूप था। नारायण उन्हे छू रहा था, उलट-पलट कर देख रहा था। पार्वती उनसे सम्बन्धित होते हुए भी अलग खडी दिखाई दे रही थी। वह एक पत्नी और एक मा थी। वह एक ऐसी पत्नी थी जो पति की पूजा करती थी। जब वह बराबर दृष्टि से ओझल रहा तो बच्चे पूजा का केन्द्र बन गए। वह उनकी उचित और अनुचित मांग को पूरा करने के लिए दूसरो की मोहताज बनती गई। मोहताजी स्वाभिमान की दासु है। पति जेल मे चला गया, पार्वती से उसका आत्म-गौरव और स्वाभिमान छिन गया। नये विचारो मे उसकी आस्था नही थी, पुराने टिक नही पाये। अब उसके भीतर रिक्त था—एकमात्र शून्य था। यह रिक्त, यह शून्य बढता जा रहा था। जो रुपये, कपडे और जेवर से नही भर सकता था। उसने अतृप्त भूख का रूप धारण कर लिया था···

दृश्य फिर बदला। जगदीश कह रहा था—"पंद्रहेक रुपये का और इन्तजाम कर दिया जाए।" नारायण का मन आत्मग्लानि से भर उठा। वह सोच रहा था कि मैंने बटन और चूडियो की बात क्यो कही? अब उसे पार्वती से नही अपने आप से घृणा हो रही थी।

"तुच्छता ही जीवन का अंग बनी रहेगी या कभी उत्कृष्टता भी आयेगी?"

वह ऊंचे स्वर मे यह शब्द कह रहा था, अपने आपसे यह प्रश्न पूछ रहा था और शून्य मे झांक रहा था। उसे अपने भीतर भी शून्य महसूस

"तुम इतने चिढ़े हुए क्यों हो।" जगदीश ने उसके मुख की ओर देखते हुए पूछा।

"नहीं, चिढ़ा हुआ तो नहीं।" नारायण ने उत्तर दिया। लेकिन फिर भी अपने स्वर को स्वाभाविक न बना सका।

"बच्चों का घर है। मुमकिन है इतने में गुजारा न चलता हो। ख्याल है कि पन्द्रहेक रुपये का इन्तज़ाम और कर दिया जाये!"

"खुशी है आपकी।" नारायण बोला और एक मिनट रुककर हठात् कहा, "सोने के बटन बने हैं, फिर चूड़ियां बन जायेंगी।"

जगदीश ने उसके इन शब्दों पर ध्यान नहीं दिया। वे एक मोड़ पर पहुंच गए थे, जहां से उनके रास्ते अलग-अलग होते थे।

"अच्छा मैं इधर चलता हूं।" जगदीश ने कहा और वह बाईं ओर घूम गया।

नारायण का कदम फिर तेज-तेज उठ रहा था। वह परेशान था। और उसके मस्तिष्क में बहुत से विचार उठ रहे थे। इन विचारों में कोई क्रम या सम्बन्ध न था क्योंकि वह सोच नहीं रहा था, सोचना चाहता भी नहीं था। विचार अपने आप आ-जा रहे थे।

सड़क पर लोग चल रहे थे। वह उनकी ओर देख नहीं रहा था, जल्द-जल्द चल रहा था, जैसे उसे किसी से कोई सरोकार न हो।

उसने कमरे में पहुंचकर दम लिया, धम से चारपाई पर लेट गया, जैसे मीलों की यात्रा करके आया हो और थकन से चूर हो। वह स्थिर और निश्चेष्ट लेटा रहना चाहता था; अपने आपको, वातावरण को और प्रत्येक वस्तु को भुला देना चाहता था। मन में विचार उठते थे तो वह उनपर खीझ उठता था, पर उन्हें रोक नहीं सकता था—"पंद्रहेक रुपये का और इन्तज़ाम कर दिया जाये···" "खुशी है आपकी···" सूं···सूं··· उसने जोर से सांस छोड़ी और अपने आपको इन विचारों से मुक्त करने का प्रयत्न किया। लेकिन विचारों से छुटकारा पाना सम्भव नहीं था। इस से केवल सोचने की दिशा ही बदली। "सुगन्ध और मुस्कुराहटें कभी तुम्हारे जीवन में भी आयेंगी या पतझड़ ही रहेगा?" वह परेशान हो

उठा। उसे यह मोड घूमना पसद नही था। फिर उलटे पाव लौट आया और पार्वती के सम्बन्ध मे बहुत-सी बातें सोच गया और उसका वह गौरवमय और स्वाभिमानी रूप मस्तिष्क मे उभर आया—जब उसने कहा था, "दवन्नी की तो कोई बात नही, इस तरह बच्चो की आदतें बिगड जाती हैं।" वह इस वाक्य पर रुके रहना और पार्वती के इसी रूप को मस्तिष्क मे बनाये रखना चाहता था। लेकिन वह रुक नही सका, दूसरे ही क्षण दृश्य बदल गया। प्रह्लाद का बटुआ खुला था और पुष्पा के नन्हें हाथ के नीचे पार्वती का हाथ फैला हुआ था। फिर वह फैलता ही चला गया

विचारो का यह साकार रूप था। नारायण उन्हे छू रहा था, उलट-पलट कर देख रहा था। पार्वती उनसे सम्बन्धित होते हुए भी अलग खडी दिखाई दे रही थी। वह एक पत्नी और एक मां थी। वह एक ऐसी पत्नी थी जो पति की पूजा करती थी। जब वह बराबर दृष्टि से ओझल रहा तो बच्चे पूजा का केन्द्र बन गए। वह उनकी उचित और अनुचित माग को पूरा करने के लिए दूसरो की मोहताज बनती गई। मोहताजी स्वाभिमान की शत्रु है। पति जेल मे क्या गया, पार्वती से उसका आत्म-गौरव और स्वाभिमान छिन गया। नये विचारो मे उसकी आस्था नही थी, पुराने टिक नही पाय। अब उसके भीतर रिक्त था—एकमात्र शून्य था। यह रिक्त, यह शून्य बढता जा रहा था। जो रुपये, कपडे और जेवर से नही भर सकता था। उसने अतृप्त भूख का रूप धारण कर लिया था...

दृश्य फिर बदला। जगदीश कह रहा था—'पद्रहेक रुपये का और इन्तजाम कर दिया जाए।" नारायण का मन आत्मग्लानि से भर उठा। वह सोच रहा था कि मैंने बटन और चूडियो की बात क्यो कही ? अब उसे पार्वती से नही अपने आप से घृणा हो रही थी।

"तुच्छता ही जीवन का अग बनी रहेगी या कभी उत्कृष्टता भी आयेगी ?"

वह ऊचे स्वर मे यह शब्द कह रहा था, अपने आपसे यह प्रश्न पूछ रहा था और शून्य मे झांक रहा था। उसे अपने भीतर भी शून्य महसूस

हो रहा था, जैसे उसने सब कुछ खो दिया हो, वह एक किंचित प्राणी हो —गुबारे के सदृश हीन और तुच्छ !

पांव की चाप सुनकर वह हठात् उठ बैठा। अशोक ने कमरे में प्रवेश किया और उसके पास चारपाई पर आ बैठा। कुछ क्षण मौन के बीते। ख्याल था कि नारायण बात शुरू करेगा, लेकिन उसे चुप देख अशोक बोला, "बहुत परेशान नज़र आते हो ?"

नारायण चुप रहा और अशोक की ओर देखने के बजाय दीवार पर एक मकड़ी को सरकते हुए देखने लगा।

"तुम मुस्कराने का यत्न कर रहे हो; पर मुस्करा नहीं सकते। आखिर तुम्हें किस बात का रंज है ?

"रंज कुछ नहीं" नारायण ने उत्तर दिया, "मैं सिर्फ सोच रहा हूं कि मनुष्य जो चाहता है, कर नहीं सकता। अच्छा बनना चाहे तो बन नहीं सकता।......"

"अपने आपको धोखा देने की कोशिश न करो।" अशोक ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं देख रहा हूं कि तुम्हें आघात लगा है और इसीलिए तुम भाग कर यहां आ लेटे हो और अब ऊटपटांग हांक रहे हो।" अशोक रुका और प्यार से उसके कंधे पर हाथ रखकर फिर बोला—"बात यह है कि तुम पद्मा से प्रेम करते हो......"

नारायण ने करुण दृष्टि से अशोक की ओर देखा और फिर आंखें झुका लीं। वह जिस मोड़ से बचना चाहता था, बरबस उसी पर घूमना पड़ा।

"हां, मुझे पद्मा से मुहब्बत थी।" कुछ देर चुप रह कर नारायण ने स्वीकार किया और अशोक की ओर देखते हुए कहना जारी रखा, "अब भी है। वह सुन्दर, शालीन और समझदार है। कौन आदमी है, जो उससे मुहब्बत नहीं करेगा। मुझे वाकई इस बात का रंज है कि मैं उसे हासिल नहीं कर सका। लेकिन मुझे राजेन्द्र से किसी प्रकार की ईर्ष्या नहीं, द्वेष नहीं और पद्मा से कोई गिला नहीं, मैं हृदय से उन्हें बधाई देता......"

नारायण चुप हो गया और अशोक की ओर देखते हुए मुस्कराने लगा।

अशोक ने इस व्यक्ति को भली प्रकार समझ लिया था। वह उनकी कटुता, उद्दण्डता और मन की उलझनों को इसी प्रकार प्यार से और स्पष्ट विश्लेषण से दूर करता आया था। इसी से उनमें गूढ सम्पर्क आत्मीयता स्थापित हो गई थी। नारायण उसका आभार मानता था और जरा सी हमदर्दी पाकर खुल जाता था। अब भी कृतज्ञता मे भीगा हुआ सा वह उसकी ओर देखता रहा। उसके मन मे स्त्री और पुरुष सम्बन्धी बहुत से विचार उठ रहे थे। लेकिन वह सभल चुका था और जब वह अपने आप मे होता था, तो उसे अधिक बोलना पसन्द नही था। इसलिए सोच-सोच-कर सक्षेप मे कहा—

"हर मर्द के दिल मे एक औरत बसती है।"

अब अशोक की बारी थी कि वह अपनी पडताल करे और देखे कि क्या उसके हृदय मे भी नारी के लिए कोई स्थान सुरक्षित है।

उसे अपनी जीवन की दो घटनायें याद थी, जो कभी नही भूलती थी। एक बार शीला और वह रात गये किसी मुहिम से लौटे थे। अशोक उसे घर तक पहुचाने जा रहा था। अलग होने से पहले उस दिन शीला ने कहा था—"मैं कई बार सोचती हूँ कि मेरा विवाह होना ही था तो···"

शीला जो बात सारा रास्ता सोचती आई थी, उसे जबान पर न ला सकी, लेकिन इस "तो" का मतलब अशोक बिना कहे ही समझ गया था।

इसी प्रकार एक दिन वह सुबह-सुबह किसी मीटिंग से लौट रहे थे। अजायबघर के पास पुलिस की नजर से बचने के लिए वे गुलाब के बूटों की ओट में छिप गये। शीला ने एक ताजा खिला हुआ फूल तोड कर अशोक को दिया और मुस्करा उठी।

ये दोनो घटनायें कई बार एक साथ स्मरण हो आतीं और अशोक सब कुछ भूल कर उनमें डूब जाता। एक दिन वह पुस्तक पढते-पढ़ते ऊब गया और चाकू उठाकर अनमना-सा मेज कुरेदने लगा। वह काफी देर अपने आप मे डूबा योंही कुरेदता रहा और जब होश मे आया तो देखा कि

बाईं ओर बिल्कुल दिल के सामने मेज पर "धोखा" शब्द खुदा हुआ है। यह वहां अब तक इसी प्रकार खुदा हुआ था।

"ठीक है।" अशोक ने कहा, "हर औरत के दिल में मर्द और हर मर्द के दिल में एक औरत बसती है। हमें उनके बीच के विघ्नों और बाधाओं को दूर करना है। इस समाज में पति पत्नी से मांग की जाती है कि वे एक दूसरे को प्रेम करें। और हम यह चाहते हैं कि जो पुरुष और स्त्री एक दूसरे से प्रेम करते हैं, उन्हें पति-पत्नी बनने का अधिकार प्राप्त हो।"

गनी बाल्शेविक सिपाही की वर्दी पहने और बिगुल हाथ में लिए कमरे में दाखिल हुआ। वह विवाह-उत्सव में भी यही वर्दी पहन कर गया था और अब तक पहने हुए था।

"चलो, जुलूस!" उसने आते ही कहा—

नीचे बहुत से लोग जमा थे, और जुलूस की तैयारियां हो रही थीं, जो 26 जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस के सिलसिले में हर साल निकलता था।

· 37 ·

चर्खा और अहिंसा

बसन्त अब के भी आई। लेकिन इस बार सुगन्ध और उल्लास के स्थान पर रक्त और चीत्कार का उपहार लाई। सर्दी खत्म होते ही जर्मनी ने हवाई बमबारी के अलावा स्थल-युद्ध भी तेज कर दिया। उसके बिजली के सदृश तेज हमले देखकर दुनिया दंग रह गई। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जो भौगोलिक सीमायें कायम की गई थी, वे नाज़ीवाद के आगे टूटने लगी। देखते ही देखते जर्मन सेना नारवे, हालैंड और डेनमार्क को रौंदती हुई बेलजियम मे घुस आई। किसी से कुछ करते न बन पड़ा।

जर्मन सेना जिस तेजी से बढ रही थी, हमारी राजनीति उतनी ही उग्र होती जा रही थी। ब्रिटिश सरकार ने देश को युद्ध मे शामिल कर लिया था, बल्कि चालीस करोड इंसानो की आज़ादी की माग की उपेक्षा की थी। मुट्ठी भर राजाओ और नवाबो के अतिरिक्त बच्चा-बच्चा अंग्रेज की इस घोषणा का मजाक उडा रहा था कि युद्ध जनतन्त्र, स्वतन्त्रता और स्वाधीनता की रक्षा के लिये लडा जा रहा है। जिस सरकार के दावे इतने थोथे हो, उसे जनता का सहयोग कैसे प्राप्त हो सकता है ?

कांग्रेस देश की प्रतिनिधि संस्था थी जिसकी बागडोर गाधी के हाथ मे थी। वह अंग्रेज की आपत्ति से लाभ उठाना नही चाहता था। इंग्लैंड के गिरजाघरो पर बम गिरते देख उनकी धर्म-परायण आत्मा आहत हो उठती थी, और अपनी इस मनोगत भावना को वह अखबारो द्वारा कई बार

घोषित कर चुका था। लेकिन कांग्रेस इधर कुछ सालों से मजदूरों और किसानों का दम भरती आ रही थी, गर्म दल वाले काफी संगठित थे, उनकी आवाज भी कुछ महत्व रखती थी, और वे देश को आजाद कराने के लिए विद्रोह पर तुले हुए थे। बम्बई मे नब्बे हजार मजदूरों की हड़ताल हुई और उन्होंने देश को जबर्दस्ती युद्ध मे शामिल करने का विरोध किया। इस प्रकार के प्रदर्शन हर जगह हो रहे थे। जन-सागर मे तूफान आया और तरंगें ऊंची उठ रही थी।

गांधी भी इन तरगो को उठते देख रहा था और चिंतित था कि कहीं यह काबू से बाहर होकर तूफान न बन जायें। इसलिए उन्होने सत्याग्रह करने का निश्चय किया। लेकिन वह कब होगा और कैसे होगा? यह किसी को कुछ मालूम नही था। प्रत्येक प्रान्त में सत्याग्रही कैम्प खोले गये, जिसमें आगामी सत्याग्रह के लिए लोगों को ट्रेनिंग दी जाने लगी। गांधी को आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए ऐसे सत्याग्रही दरकार थे, जो न जीत से खुश हों और न हार से मायूस, वैयक्तिक कीर्ति और सांसारिक लाभ से निर्लिप्त हों और जो शत्रु को भी अपना मित्र समझें। ऐसे लोग वही हो सकते थे, जो खद्दर पहनते और चर्खा कातते हों।

अप्रैल के महीने में इसी प्रकार का सत्याग्रही कैम्प शालामार बाग के सामने लाहौर में भी खोला गया, जो पन्द्रह दिन तक जारी रहा और जिसमें प्रान्त के प्रमुख कांग्रेसी नेताओं और कार्यकर्ताओं ने चर्खा कातने और अपने हाथ से बर्तन साफ करने की ट्रेनिंग हासिल की। एक जनप्रिय आल इण्डिया लीडर इन कैम्पों का इंचार्ज था। वह इस कैम्प का उद्घाटन करने लाहौर आया और यहां उसने कैम्प की देख-भाल के अतिरिक्त हर ख्याल के लोगों को मुलाकात का समय भी दिया। वामपक्षी इस प्रोग्राम से सहमत नही थे। अशोक के नेतृत्व में उनका एक वफद इस आल इण्डिया लीडर से मिलने आया। देश की राजनीतिक परिस्थिति पर कोई घंटा भर बात-चीत हुई। अशोक और उसके साथियों ने इस कैम्प-नीति की कड़ी आलोचना की। उनका कहना था कि देश की आजादी के लिए तत्क्षण क्रांतिकारी जनांदोलन शुरू करने की जरूरत है, इस कैम्पबाजी में व्यर्थ समय

नष्ट हो रहा है। जिस व्यक्ति को आजादी के लिए लडना है, उस पर चर्खा कातने और खद्दर पहनने की कैद क्यो हो? आजादी की लडाई जनता की लडाई है, उसे सफल बनाने के लिए हमे जनता को साथ लेना होगा। गाधी बीस वर्ष से खद्दर, अहिंसा और सत्य का राग अलाप रहा है। अगर इतने अरसे मे सच्चे सत्याग्रही तैयार नही हुए तो इन कैम्पो से भी नही होगे।

आल इण्डिया कैम्प इन्चार्ज ने इन सब एतराजो को मुस्कराते हुए स्वीकार किया और स्पष्ट शब्दो मे कहा—

"आप लोग जानते हैं कि मैं भी गाधी जी की अकसर बातो से सहमत नही हू। पर मुश्किल यह है कि इस समय वे देश के अवाम पर इतने छाये हुए हैं कि अगर उनकी लीडरशिप से इनकार किया जाय, तो नई लीडरशिप कायम करने मे दस साल लगेंगे। दस साल मे दुनिया कही से कही निकल जायेगी। इसलिए बेहतर यही है कि हम गाधी जी को ही अपना प्रोग्राम तेज करने के लिए कहे। जब हमे उनकी कमान मे लडना है, तो उन्ही के प्रोग्राम पर चलना भी होगा।"

"माफ कीजियेगा इस सिलसिले मे मैं आपसे सहमत नही हू।" अशोक ने विनम्र भाव से कहा, "यही बात यो भी कही जा सकती है कि अगर हमे सिर्फ इसी प्रोग्राम पर चलना पडा तो हमने 1930 से 1940 तक पिछले दस साल बेकार खोये हैं। अगर दस साल और गाधी हमारा नेता बना रहा, तो अगले दस साल भी हम बेकार खोयेंगे।"

आल इण्डिया लीडर मुस्कराया और कोई उत्तर देने के बजाय घडी पर नजर डाली।

"आप लोगो का समय खत्म हो गया। मुझे अब दूसरे लोगो से मिलना है।" उसने विनम्र घोषणा की।

जब आलइण्डिया लीडर वहा से उठकर दूसरे खेमे की ओर चला, तो मदन भी उसके पीछे-पीछे हो लिया और यो बातें करने लगा; जैसे उससे चिर-परिचित हो, जसे किसी विशेष समस्या पर परामर्श करना हो। लेकिन चन्द कदम चलकर आल इण्डिया लीडर हठात् रुक। और झुंझला

कर बोला—"तुम लोग पता नहीं क्या सोचते रहते हो।" उसके ये तेवर देखकर मदन लौट आया।

"क्या बात थी?" गोपाल ने दरियाफ्त किया।

"मैं कह रहा था कि कांग्रेस ने वजारतें छोड़कर गलती की है। हमें चाहिए था कि गवर्नरों को गिरफ्तार करके आजादी का ऐलान कर देते।" मदन ने मुट्ठियां भींचकर जोश से कहा।

"उन्होंने क्या उत्तर दिया?"

"उत्तर क्या देते तेज होकर बोले—साहब हमारी कौन सुनता है, वहां बस गांधी जी की चलती है, मैं खुद गवर्नरों को गिरफ्तार करने की बात कह रहा था।"

"इसका मतलब है कि वे भी आपकी राय से सहमत हैं?"

"बिलकुल" मदन ने सगर्व कहा और मुस्करा कर बोला, "दुनिया भर के बड़े आदमी हमेशा एक ही बात सोचते हैं।"

कैंप का मैदान लम्बा-चौड़ा था। एक बाग में तम्बू लगाये गये थे, जिसमें रहन-सहन और मीटिंगें करने की व्यवस्था थी। हर शाम को पांच बजे चर्खा काता जाता था और इस मतलब के लिए आमों की घनी छाया में विशेष आयोजन से चौरस जगह बनाई गई थी, जिसमें लोग पंक्ति दर पंक्ति बैठकर चर्खा कात सकते थे। पांच बजने में दस-पन्द्रह मिनट बाकी थे, काफी लोग जमा हो गये थे और चर्खों को तेल दे रहे थे। जो लोग इस क्षेत्र में एकदम नये थे, लाला देसराज उन्हें चर्खे के साथ तिरछा बैठने का ढंग सिखा रहे थे। इतने में अशोक और उसके साथी तम्बू से बाहर निकले, लाला जी ने चुटकी ली।

"कभी कुछ रचनात्मक कार्य भी कर लिया करो, देश सिर्फ बातों से तो आजाद नहीं होगा?"

वे लोग ठहर गये और प्रह्लाद आगे बढ़कर बोला—"हम बे-अमल ही अच्छे। लेकिन आप यह बताइये कि आजादी के लिए आप लोग चर्खा ही क्यों कातते हैं, माला क्यों नहीं जपते?"

"छाज तो बोले छलनी क्यों बोले? कल तक कातते रहे और आज

व्यग करते हो।" लाला जी ने आँखें झपकाईं और मुह बिगाड कर कहा, "आईने मे जरा शक्ल तो देखो, जब से बहादुर बने हो चेहरा काला पड गया है।"

"शायद मेरा चेहरा आपके लिए आईने का काम दे रहा है।" प्रह्लाद मुस्कराया।

"मजाक की बात नही प्रह्लाद जी, मैं सच कहता हू। कोई बीमारी हो तो इलाज कराइये।

"लाला जी बीमारी और क्या होगी?" एक दूसरे चर्खा-भक्त ने कहा, "गाधी के अध्यात्मवाद को छोडकर भौतिकवाद की दलदल मे जा फसा है। और अब पछता रहा है।"

"नही, अभी वह समय नही आया।" लाला जी ने विद्रूप भाव से मुस्कराते हुए कहा, "जब समझ आयेगी तो पछतायेगा जरूर।"

"समझ आयेगी नही, आ गई है।" प्रह्लाद ने कहा और बात जारी रखी, "इस समय मुझे उन लोगो पर दया आ रही है, जो चर्खा कात कर आजादी चाहते हैं, जो यह नही सोचते कि अग्रेजो के आने से पहले जब मशीनें नही थी, हम सिर्फ चर्खा ही कातते थे, फिर गुलाम क्यो बने?"

"देखा लाला जी, यह वही प्रह्लाद है, जो कल तक हमारे साथ झगडा करता था और आज उसे चर्खा कातना मूर्खता जान पडती है।" नारायण बोला।

"बेचारा भटक गया। उसे चर्खे के फायदे मालूम नही।" लालाजी आखें मूद कर झूमने लगे, जैसे वे सचमुच चर्खे के फायदो की कल्पना कर रहे हों।

"लालाजी म···माफ कीजियेगा। मुझे बीच मे बोलने का मरज है।" पराशर ने धुआं ऊपर छोडने के बाद कहा, "वह इतना अरसा आप लागों के साथ रहा, उसे यह फायदे क्यो न···नही बताये? बुद्धूमल बधाऊमल क्यो रहने द···दिया?"

"बताये क्यो नही! गाधी जी हरिजन मे बराबर लिख रहे हैं, न पढ़े तो यह उसका कसूर है."

"आप बजा फरमाते हैं। सोलह आने इसी का कसूर है।" नारायण ने लाला जी की बात का समर्थन किया और प्रह्लाद से पूछा, "बताइये साहब आपने क्यों नहीं पढ़ा हरिजन?"

नारायण की बात पर प्रह्लाद मुस्कराया और बोला—"मैं तो हरिजन बराबर पढ़ता हूं और चर्खे के फायदे भी जानता हूं। सुन लीजिए जबानी याद हैं।" और उसने उंगुलियों पर गिनना शुरू किया, "1-स्वराज लेना हो तो चर्खा कातो; 2—मुक्ति प्राप्त करनी है तो चर्खा कातो 3—ब्रह्मचारी बनना है तो चर्खा कातो; 4—बंगाल के कैदी रिहा कराने हों तो चर्खा कातो और 5—सिपाही भरती होकर पिस्तौल-बन्दूक चलाना हो तो चर्खा कातो…"

"वाह! मुझे तो यह आज ही मालूम हुआ", ताया चेतसिंह दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोला, "जब कभी मेंह नहीं बरसेगा तो मैं किसानों से कहूंगा—भाइयो, चर्खा कातो!"

सब ठहाका मार कर हंसे। ताया ने बात कुछ ऐसे स्वर में कही थी कि लाला जी के अपने साथी भी हंसने लगे।

"इन बातों को समझने के लिए श्रद्धा चाहिये, श्रद्धा के बिना काम नहीं चलता।" लाला जी ने अत्यन्त गम्भीर होकर कहा।

"और चर्खा भी नहीं चलता"

ताया फिर बोला और लोग फिर हंसे।

"जिस तरह करोड़ों हिन्दू पत्थर को सालिगराम बनाकर पूजते हैं और अपनी श्रद्धा से उसमें भगवान् देखते हैं, मैं चर्खे में भगवान् देखता हूं।" प्रह्लाद ने गांधी के शब्द दोहराये।

एक मोटर उनके सामने आकर रुकी। उसमें से पंडित बदरीनाथ अपने प्राइवेट सेक्रेटरी के साथ उतरे। वे निहायत उमदा, महीन और कीमती खद्दर पहने हुए थे। बायें हाथ में चर्खा थाम रखा था और कलाई पर सोने की घड़ी बंधी हुई थी, जो शायद स्विटजरलैंड से बनकर आई थी। चर्खा शुरू होने में अभी दो-चार मिनट बाकी थे। उन्होंने मोटर से उतर कर घड़ी पर नजर डाली और आल इण्डिया लीडर के तम्बू की ओर

चल दिये। जब वे करीब से गुजरे तो पराशर ने बीड़ी का कश लगाते हुए उनकी ओर देखा।

"कांग्रेस में एक वक्त वह था कि मुझसा गरीब आदमी ट···टके की ट· ·टोपी सिर पर रख कर लीडर बन सकता था। पर अब त·· तो सात रुपये का चर्खा पास होना जरूरी है। हम सात रुपये कहां से लायें ?"

पराशर अपनी बात ऊंचे स्वर में कह रहा था, मगर पंडित जी को सुनने की फुरसत नहीं थी। उन्हें प्रोग्राम ठीक समय पर शुरू कराना था। वे आल इण्डिया लीडर के साथ उलटे पांव तम्बू से निकले और चर्खा कातने के अहाते में पधारे। लाला देसराज ने सबके बीच में उनके लिए जो जगह बना रखी थी, दोनों नेता वहां बैठ गये। दूसरे लोगों ने भी अपने-अपने चर्खे संभाले और ठीक पांच बजे चर्खे का प्रोग्राम शुरू हुआ।

कोई पांच मिनट बीते थे कि अंग्रेजी में सबसे अधिक छपने वाले अख़बार "ट्रीब्यून" का फोटोग्राफर फोटो लेने आ पहुंचा। तेज-तेज चलते हुए हाथ सहसा रुक गये और लोग यह सोचने लगे कि किस पहलू बैठने से पोज अच्छा आयेगा। जो सत्याग्रही तनिक दूर बैठे थे, वे सरक कर आल इंडिया लीडर के करीब आने लगे ताकि उनके चेहरे भी फोकस की जद में आ जाएं। तस्वीर में जितने अधिक चेहरे होंगे, लोगों पर उतना ही अधिक प्रभाव पड़ेगा, और जितना अधिक प्रभाव पड़ेगा स्वराज्य उतना ही निकट आयेगा। ख्वाजा नूरुद्दीन तकली हाथ में लिए आल इण्डिया लीडर के दाईं ओर विराजमान थे।

दो दिन बाद आल इण्डिया लीडर पण्डित बदरी नाथ को इस प्रान्तीय कैम्प का इन्चार्ज बना कर चला गया और प्रोग्राम बाकायदा जारी रहा। चर्खे के अतिरिक्त और बहुत सी सरगर्मियां थीं। ट्रेनिंग के लिए जितने सत्याग्रही आये थे, वे अपना भोजन अपने हाथ से तैयार करते, रात को वहीं सोते, बारी-बारी पहरा देते, दिन भर रचनात्मक-कार्य, खद्दर और अहिंसा पर भाषण सुनते थे।

देहात और छोटे शहरों से भी कुछ नौजवान आये हुए थे, एक रात उन्हें नाटक खेलने की सूझी। जब सब लोग अपने-अपने तम्बुओं में सो रहे थे, चंद नौजवान डाकू बनकर आ गए और उनके दो वालंटियर साथियों ने जो पहरा दे रहे थे, शोर मचा दिया—

"जागो, जागो ! चोर, चोर ! डाकू, डाकू !"

और उधर डाकुओं ने एक खाली तम्बू को लाठियों से पीटना शुरू किया। सारे कैम्प में भगदड़ मच गई।

"वालंटियर ! वालंटियर !"

"वालंटियर क्या करेंगे ? डाकुओं की तादाद ज्यादा है और वे हथियारबंद हैं।"

"पुलिस को बुलाओ।"

"पुलिस कैसे आ सकती थी, कैम्प और शहर में तीन-चार मील का फासला और टेलीफोन का कोई प्रबंध नहीं।"

लोग इधर-उधर भागने और छिपने की कोशिश करने लगे।

नाटक की इस सफलता पर छद्मवेषी डाकू खिलखिला कर हंसने लगे। उन्हें हंसते देख भागने वालों पर भेद खुला और जान में जान आई।

"क्यों जी, हम डाकुओं का मुकाबिला अहिंसा से नहीं कर सकते थे ?" खूब हंस लेने के बाद एक वालंटियर ने पूछा।

दिन में पंडित बदरी नाथ का अहिंसा पर भाषण हुआ था और उन्होंने कहा था कि अहिंसा कायरों का नहीं वीरों का हथियार है। हम अहिंसा द्वारा बड़ी से बड़ी शक्ति पर विजय पा सकते हैं, बशर्ते कि हमारे अपने मन में किसी प्रकार का भय उत्पन्न न हो।

पंडित बदरी नाथ तो चुप रहे, उत्तर दिया लाला देसराज ने—

"क्यों नहीं, अहिंसा द्वारा डाकू तो क्या बड़ी से बड़ी शक्ति का

मुकाबला किया जा सकता है; बशर्ते कि हम सच्चे सत्याग्रही हों।"

जब लाला देसराज यह बात कह रहे थे, पंडित बदरी नाथ की नज़र अपनी कलाई पर जा पड़ी, उनकी सांस अभी तक ठिकाने नहीं आई थी, उखड़े स्वर में बोले—

"ज़रा ··लालटेन जलाना, मेरी घड़ी···जाने कहां गिर पड़ी ?"

: 38 :

कंकर

हालात तेजी से बदल रहे थे। अंग्रेजों की साढ़े तीन लाख सेना फ्लैंडर्ज के युद्ध-क्षेत्र से पिट-पिटाकर भागी और युद्ध-सामग्री पीछे छोड़ आई। फ्रांस की सिगफ्रेड पंक्ति सहज में टूट गई और योरुप की इस एक नम्बर शक्ति ने दो सप्ताह में हथियार डाल दिए। साम्राज्य के पांव उखड़ गए थे। वह हर जगह पिट रहा था, भाग रहा था, नाजी आक्रमण के आगे वह अपने आपको दुर्बल चूहे के सदृश विवश और लाचार महसूस कर रहा था; प्राण-रक्षा के लिए बिल ढूंढ रहा था।

लेकिन हिन्दुस्तान में यही चूहा हिंसक दरिंदा बना हुआ था। ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि वायसराय नित्य नए जंगी कानून और आर्डीनेंस लागू कर रहा था। आजादी की मांग करने वालों की जबान-बन्दी हो रही थी। क्रांतिकारी शक्तियों के दमन के लिए बर्बर शक्ति हरकत में आ चुकी थी। कांग्रेस ने बार-बार सहयोग का हाथ बढ़ाया, लेकिन दम्भी शासक ने इसकी तनिक भी परवा नहीं की। गर्म दल वाले यह सब कुछ सहन करने को तैयार नहीं थे, वे चाहते थे कि समझौते और सहयोग की बातें छोड़कर क्रांति का पथ अपनाया जाय।

पर गांधी। निराश नहीं था वह सोचता था कि जाने कब शत्रु का हृदय-परिवर्तन हो जाय, कब वह अपने आप स्वराज दे दे और सत्य और अहिंसा की विजय का डंका संसार में बज उठे। फ्रांस की हार के बाद ब्रिटिश सरकार को अपनी सेवायें अर्पित करते हुए उसने लिखा था कि यदि वे हथियार छोड़ कर अहिंसा से हिटलर का मुकाबला करना चाहें, तो मैं नेतृत्व करने को तैयार हूं।

अग्रेज ने न हथियार डाले और न गाधी को युद्ध का नेतृत्व सौंपा, पर उसे यह विश्वास हो गया कि देश की आजादी की समस्या चाहे कितनी ही महत्व पूर्ण क्यो न हो, गाधी अहिंसा के सिद्धात का परित्याग नही करेगा और इस सकट मे हमे परेशान भी नही करेगा। चुनाचे उसे गर्मदल वालो और क्रांतिकारी नौजवानो पर हमला करने का अवसर मिल गया। जुलाई के आरम्भ मे पुलिस ने विभिन्न शहरो और कस्बो मे एक साथ छापे मारे और हजारो नौजवानो को गिरफ्तार कर के जगी नजरबन्दो के कैम्प मे भेज दिया।

उस दिन जो लोग गिरफ्तार हुए, उनमे राजेन्द्र, पराशर, तारा सिंह और रजाक शामिल थे, अशोक, तिलक की तरह रूपोश हो गया, और वह हाथ नही लगा।

ब्रिटिश सरकार का हमला एक बार शुरू होकर जारी ही रहा, जिसे जबान खोलते देखा, झट गिरफ्तार कर लिया। लेखराम और बलवन्त की अवधि खत्म हो चुकी थी, लेकिन उन्हें रिहा करने के बजाय जेल ही से जगी कैदी बनाकर नजरबन्दो के कैम्प मे भेज दिया। तीन-चार दिन बाद मदन भी गिरफ्तार हो गया।

लोगो को जेल जाते देख गनी को आश्चर्य होता था कि उसे क्यो गिरफ्तार नही किया जाता? जब उसकी अपनी समझ मे कुछ न आया तो नारायण से दरियाफ्त करने पर मालूम हुआ कि सरकार जिन लोगो को ज्यादा खतरनाक समझती है, सिर्फ उन्ही को गिरफ्तार कर रही है।

अब गनी के लिए यह बात असह्य थी कि वह सरकार के लिए खतर-नाक नही है। इसके बाद उसने नियम बना लिया कि वह हर रोज बालशेविक सिपाही की वर्दी पहनकर दफ्तर से निकलता और सारा-सारा दिन सडकों पर घूमता रहता और मुट्ठी भीचकर हवा मे हिलाते हुए प्राणो की समस्त शक्ति से कहता—"मैं सरकार के लिए खतरनाक हू।"

फिर भी दो महीने बीत गये, उसे किसी ने गिरफ्तार नही किया।

अगर सरकार हरेक खतरनाक आदमी को गिरफ्तार करने लगती तो उसे हिन्दुस्तान के अस्सी फीसदी लोग जंगी कैदी बनाकर जेलों में भेजने पड़ते। इस समय कौन देश-भक्त अंग्रेज के लिए खतरनाक सिद्ध होना नहीं चाहता था ?

कल की ही बात है कि नारायण एक मरम्मत की दूकान पर साईकिल को पंक्चर लगवा रहा था। मिस्तरी ने उसे खद्दर पहने देख उसके कांग्रेसी होने का अनुभव लगाया और पूछा—

"कहो जी, अब कांग्रेस क्या कर रही है ? हम तो इन्तजार करते-करते थक गये। कुछ-न-कुछ जरूर होना चाहिए।"

एक फल बेचने वाला खोमचा सिर पर उठाये पास से गुजर रहा था, मिस्तरी की बात सुनकर ठिठक गया और उसका समर्थन करते हुए बोला—

"यही तो मौका है, कांग्रेस को जरूर कुछ करना चाहिए।"

प्रत्येक देशवासी के दिल से यही ध्वनि निकल रही थी, जो प्रतिक्षण दृढ़ और ऊंची होती जा रही थी। यहां तक कि गांधी ने भी महसूस किया कि यदि इस समय कोई कार्रवाई न की गई तो सम्भव है कि लोग काबू से बाहर हो जायें और अंग्रेज के प्रति उनके मन में जो तीव्र घृणा है, वह विद्रोह का रूप धारण कर ले।

सत्याग्रही तैयार हो चुके थे। बड़े दिनों से आंदोलन की बातें चल रही थी। आखिर सितम्बर के मध्य में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन बम्बई में हुआ और उसमें गांधी के विचार प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत हुए।

प्रस्ताव यह था। सरकार से तकरीर की आजादी की मांग की जाय। मांग स्वीकार न हो तो सत्याग्रह किया जायेगा और सत्याग्रह सामूहिक नही, व्यक्तिगत होगा। हर एक आदमी को सत्याग्रह करने से पहले गांधी से आज्ञा लेनी होगी। और आज्ञा सिर्फ उसी को मिलेगी, जो कांग्रेस का सदस्य हो, चर्खा कातता हो और अहिंसा के सिद्धान्त को शुद्ध हृदय से मानता हो।

वामपक्षियों ने संशोधन पेश किया कि चर्खा कातने और कांग्रेस का सदस्य होने की शर्त व्यर्थ है और व्यक्तिगत सत्याग्रह के बजाये सविनय भंग का सामूहिक आंदोलन शुरू किया जाये। उनके एक प्रतिनिधि ने मूल प्रस्ताव के विरोध में भाषण करते हुए कहा 'यह व्यक्तिगत सत्याग्रह क्रांतिकारी शक्तियों को काबू में रखने की एक सोची समझी चाल है। अगर हम अब भी चूक गये तो आने वाली पीढ़ियां हमें कभी माफ नहीं करेंगी और इतिहास में इसे इनकलाब के साथ गद्दारी लिखा जायेगा।"

यह प्रतिनिधि अशोक था, जो गुप्त रूप से वहां पहुंचा था। वह अपनी बात कहकर मंच से उतरा और जाने कहां गायब हो गया।

लेकिन संशोधन गिर गया। गांधी का मूल प्रस्ताव बहुमत से पास हुआ। एक अलग प्रस्ताव द्वारा सत्याग्रह कब और कैसे शुरू हो, यह काम सर्वाधिकार सहित, गांधी को सौंप दिया गया।

अगले दिन सुबह सवेरे नारायण और प्रह्लाद बरामदे में बैठे थे। गनी भीतर चाय बना रहा था। इतने में अखबार आ गया। नारायण और प्रह्लाद ने कांग्रेस अधिवेशन की कार्रवाई बड़ी उत्सुकता से पढ़ी और पढ़ कर एक दूसरे का मुंह ताकने लगे।

"आखिर इससे बनेगा क्या?"

'कुछ नहीं, वजारतें छोड़ने की तरह यह भी एक प्रोटेस्ट है। सरकार के कान पर जूं तक नहीं रेंगेगी।" प्रह्लाद बोला और कटुता का एक घूंट भर कर दोबारा कहा "अशोक के कथानुसार हमने यह दस साल व्यर्थ खोये हैं।'

इतने में गनी बाहर आया और अखबार देखकर पूछा--

"क्या खबर है?"

"कांग्रेस ने पास कर दिया है कि गांधी जी सत्याग्रह शुरू करेंगे।"

गनी ने नारायण के होठों पर विद्रूप और कटुता भरी मुस्कराहट नहीं देखी और यह भी नहीं सोचा कि उसने सत्याग्रह शब्द पर खास जोर क्यों दिया है। वह खबर सुन कर प्रसन्न हुआ और अपने मनोगत उद्‌गारों को व्यक्त करने के लिए भीतर से बिगुल उठा लाया।

"कामरेड गनी खुश तो हो रहा है, लेकिन उसे शायद जेल जाने की भी इजाजत न मिले।" प्रह्लाद ने उसके जोश को देखते हुए कहा।

गनी बिगुल बजाने के लिए फेफड़ों का सारा जोर लगा रहा था; लेकिन उसमें से आवाज नहीं निकलती थी। उसने बिगुल को उलटा-पलटा, जोर से हिलाया, झटका और दोबारा फूंक मारी; लेकिन आवाज फिर भी नहीं निकली।

"कामरेड। कल शाम महेंदी इससे खेल रहा था, उसने कंकर न डाल दिया हो?" उसे परेशान होते देख नारायण बोला।

"कंकर!"

गनी बिगुल के आर-पार झांकते हुए चिल्लाया।

(1943)

□□□